प्रकाशक
श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर, बीकानेर

प्रकाशन सौजन्य
श्रीमान् शातिलालजी साखला

मूल्य पचास रुपये मात्र

मुद्रक
कल्याणी प्रिन्टर्स
अलख सागर रोड, बीकानेर
दूरमाष २५२६८६०

प्रकाशकीय

साधुमार्गी जैन परम्परा मे महान् क्रियोद्धारक आचार्यश्री हुक्मीचदजी म सा की पाट–परम्परा मे षष्ठ युगप्रधान आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा विश्व–विभूतियों मे एक उच्चकोटि की विभूति थे, अपने युग के क्रातदर्शी, सत्यनिष्ठ तपोपूत सत थे। उनका स्वतन्त्र चिन्तन वैराग्य से ओत–प्रोत साधुत्व प्रतिभा–सम्पन्न वक्तृत्वशक्ति एव भक्तियोग से समन्वित व्यक्तित्व स्व–पर–कल्याणकर था।

आचार्यश्री का चिन्तन सार्वजनिक सार्वभौम और मानव मात्र के लिए उपादेय था। उन्होने जो कुछ कहा वह तत्काल के लिए नहीं, अपितु सर्वकाल के लिए प्रेरणापुज बन गया। उन्होने व्यक्ति समाज ग्राम नगर एव राष्ट्र के सुव्यवस्थित विकास के लिए अनेक ऐसे तत्त्वो को उजागर किया जो प्रत्येक मानव के लिए आकाशदीप की भाँति दिशाबोधक बन गये।

आचार्यश्री के अन्तरग में मानवता का सागर लहरा रहा था। उन्होने मानवोचित जीवनयापन का सम्यक धरातल प्रस्तुत कर कर्तव्यबुद्धि को जाग्रत करने का सम्यक प्रयास अपने प्रेरणादायी उदबोधनो के माध्यम से किया।

आगम के अनमोल रहस्यो को सरल भाषा मे आबद्ध कर जन–जन तक जिनेश्वर देवो की वाणी को पहुचाने का भगीरथ प्रयत्न किया। साथ ही प्रेरणादायी दिव्य महापुरुषो एव महासतियो के जीवन–वृत्तान्तो को सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया। इस प्रकार व्यक्ति से लेकर विश्व तक को अपने अमूल्य साहित्य के माध्यम से सजाने–सवारने का काम पूज्यश्रीजी ने किया है। अस्तु! आज भी समग्र मानवजाति उनके उदबोधन से लाभान्वित हो रही है। इसी क्रम मे सती वसुमति किरणावली का यह अक पाठको के लिए प्रस्तुत है। सुज्ञ पाठक इससे सम्यक लाभ प्राप्त करेगे।

युगद्रष्टा युगप्रवर्तक ज्योतिर्धर आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा का महाप्रयाण भीनासर मे हुआ। आपकी स्मृति को अक्षुण्ण रखने और आपके कालजयी प्रवचन–साहित्य को युग–युग मे जन–जन को सुलभ कराने हेतु समाजभूषण कर्मनिष्ठ आदर्श समाजसेवी स्व सेठ चम्पालालजी बाठिया का चिरस्मरणीय श्लाघनीय योगदान रहा। आपके अथक प्रयासो और समाज के उदार सहयोग से श्री जवाहर विद्यापीठ भीनासर की स्थापना हुई। सस्था जवाहर–साहित्य को लागत

मूल्य पर जन–जन को सुलभ करा रही हे ओर पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल के सम्पादकत्व मे सेठजी ने 33 जवाहर किरणावलियो का प्रकाशन कर एक उल्लेखनीय कार्य किया हे। वाद मे सस्था की स्वर्णजयन्ती के पावन अवसर पर श्री वालचन्दजी सेठिया व श्री खेमचन्दजी छल्लाणी के अथक प्रयासो से किरणावलियो की सख्या वढाकर 53 कर दी गई। आज यह सेट प्राय विक जाने पर श्री जवाहर विद्यापीठ मे यह निर्णय किया गया कि किरणावलियो को नया रूप दिया जावे। इसके लिए सस्था के सहमत्री श्री तोलाराम वोथरा ने परिश्रम करके विषय–अनुसार कई किरणावलियो को एक साथ समाहित किया ओर पुन सभी किरणावलियो को 32 किरणो मे प्रकाशित करने का निर्णय किया गया।

ज्योतिर्धर श्री जवाहराचार्यजी म सा के साहित्य के प्रचार–प्रसार मे जवाहर विद्यापीठ भीनासर की पहल को सार्थक ओर भारत तथा विश्वव्यापी बनाने मे श्री अ भा साधुमार्गी जेन सघ, बीकानेर की महती भूमिका रही। सघ ने अपने राष्ट्रव्यापी प्रभावी सगठन और कार्यकर्ताओ के बल पर जवाहर किरणावलियो के प्रचार–प्रसार ओर विक्रय–प्रबन्धन मे अप्रतिम योगदान प्रदान किया हे। आज सघ के प्रयासो से यह जीवन–निर्माणकारी साहित्य जेन–जैनेतर ही नही अपितु विश्व–धरोहर बन चुका हे। सघ के इस योगदान के प्रति हम आभारी हैं।

धर्मनिष्ठ सुश्राविका श्रीमती राजकुवर बाई मालू धर्मपत्नी स्व डालचन्दजी मालू द्वारा आरम्भ मे समस्त जवाहर–साहित्य–प्रकाशन के लिए 60 000 रु एक साथ प्रदान किये गये थे जिससे पूर्व मे लगभग सभी किरणावलियाँ उनके सोजन्य से प्रकाशित की गई थी। सत्साहित्य–प्रकाशन के लिए बहिनश्री की अनन्य निष्ठा चिरस्मरणीय रहेगी।

प्रस्तुत किरणावली का पिछला सस्करण श्री साधुमार्गी जेन महिला समिति भीनासर एव श्रीमती घीसीबाई लालचन्दजी मेहता अहमदाबाद के सोजन्य से प्रकाशित किया गया और प्रस्तुत किरण 27 (सती वसुमति) के अर्थ सहयोगी श्रीमान शान्तिलालजी साखला हैं। सस्था सभी अर्थ–सहयोगियो के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हे।

निवेदक

चम्पालाल डागा
अध्यक्ष

सुमतिलाल बांठिया
मत्री

आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

जीवन तथ्य

जन्म स्थान	थादला, मध्यप्रदेश
जन्म तिथि	वि स 1932, कार्तिक शुक्ला चतुर्थी
पिता	श्री जीवराजजी कवाड
माता	श्रीमती नाथीबाई
दीक्षा स्थान	लिमडी (म प्र)
दीक्षा तिथि	वि स 1948 माघ शुक्ला द्वितीया
युवाचार्य पद स्थान	रतलाम (म प्र)
युवाचार्य पद तिथि	वि स 1976 चैत्र कृष्णा नवमी
आचार्य पद स्थान	जैतारण (राजस्थान)
आचार्य पद तिथि	वि स 1976, आषाढ शुक्ला तृतीया
स्वर्गवास स्थान	भीनासर (राज)
स्वर्गवास तिथि	वि स 2000 आषाढ शुक्ला अष्टमी

आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा.

1 देश मालवा गल गम्भीर उपने वीर जवाहर धीर
2 प्रभु चरणो की नौका मे
3 तृतीयाचार्य का आशीर्वाद एव ज्ञानाभ्यास प्रारम्भ
4 नई शैली
5 मैं उदयपुर के लिए जवाहरात की पेटी भेज दूगा
6 जोधपुर का उत्साही चातुर्मास, दयादान के प्रचार का शखनाद
7 जनकल्याण की गगा बहाते चले
8 कामधेनु की तरह वरदायिनी बने कॉन्फ्रेस
9 धर्म का आधार— समाज—सुधार
10 महत्त्व पदार्थ का नहीं, भावना का है
11 दक्षिण प्रवास मे राष्ट्रीय जागरण की क्रातिकारी धारा
12 वैतनिक पण्डितो द्वारा अध्ययन प्रारम्भ
13 युवाचार्य पद महोत्सव मे सहज विनम्रता के दर्शन
14 आपश्री का आचार्यकाल अज्ञान—निवारण के अभियान से आरम्भ
15 लोहे से सोना बनाने के बाद पारसमणि बिछुड ही जाती है
16 रोग का आक्रमण
17 राष्ट्रीय विचारो का प्रबल पोषण एव धर्म—सिद्धातो का नव विश्लेषण
18 थली प्रदेश की ओर प्रस्थान तथा 'सद्धर्ममडन' एव 'अनुकम्पाविचार' की रचना
19 देश की राजधानी दिल्ली मे अहिसात्मक स्वातत्र्य आदोलन को सम्बल
20 अजमेर के जैन साधु सम्मेलन मे आचार्यश्री के मौलिक सुझाव
21 उत्तराधिकारी का चयन—मिश्री के कूजे की तरह बनने की सीख
22 रूढ विचारो पर सचोट प्रहार और आध्यात्मिक नव—जागृति
23 महात्मा गाधी एव सरदार पटेल का आगमन
24 काठियावाड—प्रवास मे आचार्यश्री की प्राभाविकता शिखर पर
25 अस्वस्थता के वर्ष, दिव्य सहनशीलता और भीनासर मे स्वर्गवास
26 सारा देश शोक—सागर मे डूब गया और अर्पित हुए अपार श्रद्धा—सुमन परिशिष्ट स 1, 2, 3 4 5 6 7

आचार्यश्री जवाहर–ज्योतिकण

+ विपत्तियो के तमिस्र गुफाओ के पार जिसने सयम–साधना का राजमार्ग स्वीकार किया था।
+ ज्ञानार्जन की अतृप्त लालसा ने जिनके भीतर ज्ञान का अभिनव आलोक निरतर अभिवर्द्धित किया।
+ सयमीय साधना के साथ वैचारिक क्राति का शखनाद कर जिसने भू–मण्डल को चमत्कृत कर दिया।
+ उत्सूत्र सिद्धातो का उन्मूलन करने, आगम–सम्मत सिद्धातो की प्रतिष्ठापना करने के लिए जिसने शास्त्रार्थो मे विजयश्री प्राप्त की।
+ परतत्र भारत को स्वतत्र बनाने के लिए जिसने गाव–गाव, नगर–नगर पाद–विहार कर अपने तेजस्वी प्रवचनो द्वारा जन–जन के मन को जागृत किया।
+ शुद्ध खादी के परिवेश मे खादी–अभियान चलाकर जिसने जन–मानस मे खादी–धारण करने की भावना उत्पन्न कर दी।
+ अल्पारभ–महारभ जैसी अनेको पेचीदी समस्याओ का जिसने अपनी प्रखर प्रतिभा द्वारा आगम–सम्मत सचोट समाधान प्रस्तुत किया।
+ स्थानकवासी समाज के लिये जिसने अजमेर सम्मेलन मे गहरे चितन–मनन के साथ प्रभावशाली योजना प्रस्तुत की।
+ महात्मा गाधी, विनोबा भावे, लोकमान्य तिलक, सरदार वल्लभ भाई पटेल प श्री जवाहर लाल नेहरू आदि राष्ट्रीय नेताओ ने जिनके सचोट प्रवचनो का समय–समय पर लाभ उठाया।
+ जैन व जैनेतर समाज जिसे श्रद्धा से अपना पूजनीय स्वीकार करता था।
+ सत्य सिद्धातो की सुरक्षा के लिये जो निडरता एव निर्भीकता के साथ भू–मडल पर विचरण करते थे।

"हुक्म संघ के आचार्य"

1 आचार्य श्री हुक्मीचदजी म सा – दीक्षा वि स 1870, स्वर्गवास वि स 1917
ज्ञान-सम्मत क्रियोद्धारक साधुमार्गी परम्परा के आसन्न उपकारी।

2. आचार्य श्री शिवलालजी म सा – दीक्षा वि स 1891, स्वर्गवास वि स 1933
प्रतिभा–सम्पन्न प्रकाण्ड विद्वान, परम तपस्वी महान शिवपथानुयायी।

3 आचार्य श्री उदय सागरजी म सा – दीक्षा 1918 स्वर्गवास वि स 1954
विलक्षण प्रतिभा के धनी, वादी–मान–मर्दक, विरक्तो के आदर्श विलक्षण।

4 आचार्य श्री चौथमलजी म सा – दीक्षा 1909, स्वर्गवास वि स 1957
महान क्रियावान, सागर सम गभीर, सयम के सशक्त पालक, शात–दात, निरहकारी, निर्ग्रन्थ शिरोमणि।

5 आचार्य श्री श्रीलालजी म सा – दीक्षा 1944, स्वर्गवास वि स 1977
सुरा–सुरेन्द्र–दुर्जय कामविजेता अदभुत स्मृति के धारक जीव–दया के प्राण।

6 आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा – दीक्षा 1947, स्वर्गवास वि स 2000
ज्योतिर्धर, महान क्रातिकारी क्रातदृष्टा, युगपुरुष।

7 आचार्य श्री गणेशीलालजी म सा – दीक्षा 1962 स्वर्गवास वि स 2019
शात क्राति के जन्मदाता, सरलता की सजीव मूर्ति।

8 आचार्य श्री नानालालजी म सा – दीक्षा 1996, स्वर्गवास वि स 2056
समता–विभूति, विद्वदशिरोमणि जिनशासन–प्रद्योतक धर्मपाल–प्रतिबोधक, समीक्षण ध्यानयोगी।

9 आचार्य श्री रामलालजी म सा – दीक्षा 2031, आचार्य वि स 2056 से
आगमज्ञ तरुण तपस्वी तपोमूर्ति उग्रविहारी सिरीवाल–प्रतिबोधक व्यसनमुक्ति के प्रबल प्रेरक बालब्रह्मचारी प्रशातमना।

अर्थ–सहयोगी परिचय

श्रेष्ठीवर्य समतासाधक, युवा समाजसेवी, सुश्रावकरत्न श्रीमान् शांतिलालजी सांखला

स्वनाम धन्य श्रेष्ठीवर्य उदारमना, सुश्रावक श्रीमान् माणकचन्दजी साखला तथा उनकी धर्मपत्नी सुषाविका श्रीमती भवरकवर देवी साखला के अगज हैं युवा समाजसेवी, दानवीर, सुश्रावकरत्न श्रीमान् शातिलालजी साखला। जेठाना जिला अजमेर की मातृभूमि मे जन्मे हुक्मसघ के सुषावकरत्न श्रीमान् शातिलालजी साखला शासननिष्ठ, अनन्य गुरुभक्त, सघ समर्पित ऐसे पसिद्ध युवारत्न व्यावसायियो मे पमुख व अग्रपक्तियो मे से एक हैं कि जिन्होने अपनी दूरदर्शिता, कार्यकुशलता त्वरित निर्णय क्षमता तथा प्रतिभा के बल पर रत्न व्यवसाय मे स्वल्पावधि मे ही कीर्तिमान स्थापित कर लिया है।

सरलता सहजता मिलनसारिता विनम्रता एव मधुस्मिता गुणो से समन्वित श्री शान्तिलालजी साखला का व्यक्तित्व प्रदर्शन आडम्बर एव विज्ञापन से सर्वथा दूर सादगी सेवा तथा उदारता का प्रतीक है।

आपने अहता ममता और जगत के पदार्थो की आसक्ति से ऊपर उठकर कि उक्ति के इस मत्र को मिशन बना लिया है जिसमे परहित बस जिनके मन माही। विनकह जग कछु दुर्लभ नाही।" क्षमा सोच अस्तेय जितेन्द्रिया परदु:ख कातरता आदि शील के अन्तर्गत के ये सब दैवीय गुण उन्ही को प्राप्त होते है, जो अपने मन मे सदा परहित की भावना को सजोए रखते हैं।

आपकी सहधर्मिणी पत्नी सुश्राविकारत्न श्रीमती कमलादेवी साखला भी उन्ही के गुणो का पदानुसरण करती हुई इसी प्रकार अपने कुल वश की कीर्ति मे चार चाद लगा रही हैं।

आपके तीन सुपुत्र एक सुपुत्री हैं। प्रथम श्री सजयजी साखला [illegible] धर्मपत्नी काजल साखला है जो प्रख्यात उधोगपति दानवीर [illegible] कमलचन्दजी सिपानी बैंगलोर की सुपुत्री है। द्वितीय

श्री अमितजी साखला जिनकी धर्मपत्नी श्रीमती दर्शना है जो कि सुश्रावकरत्न श्री भवरलालजी नाहर, अहमदाबाद की सुपुत्री है। तृतीय श्री मनीषजी साखला है। आपकी एक सुपुत्री श्रीमती सगीता है, जिनके पति श्री पकजकुमारजी बलिया, जयपुर है। आपका आदर्श भरा–पूरा परिवार है। शासनदेव से प्रार्थना हे कि आप चिरायु हो ओर जिनशासन की अनवरत् सेवा करते रहे।

युगद्रष्टा युगपुरुष आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा के प्रवचनो की शृखला जवाहर किरणावली के उक्त भाग के सहयोगी के रूप मे आपने जो सहयोग प्रदान किया है, यह आपकी उदार दृष्टि एव सघनिष्ठा का अनुपम उदाहरण है।

अनुक्रम

कथारम्भ	०१
विवाह या ब्रह्मचर्य?	०७
विवाह ऋण है	१७
स्वप्न	२७
चम्पा पर चढाई	३५
लूट	४७
उपदेश-शान्ति-समर	५७
बलिदान	७१
परिवर्तन	९०
कसौटी पर	१००
बाजार में	११५
सती वसुमति भाग-२	
आत्म-बल	१२७
धनावा सेठ के घर	१४२
भोंयरे में	१५३
अभिग्रह	१६५
दान	१७१
सम्मेलन	१८१
पश्चात्ताप	१९६
महल को	२०६
शत्रु से मित्र	२१५
उच्च ध्येय	२२५
दीक्षा और केवलज्ञान	२३६
उपसहार	२४२

रीति से पुत्र का पालन पिता और शरीर का पालन मुख करता है। प्रजा दधिवाहन के शासन से सुरक्षित ओर प्रसन्न थी। जिस प्रकार आजकल राजा–प्रजा मे विरोध रहा करता हे, प्रजा के लिए राजा अर्थ–शोषक एव दु खदायी बन रहे हैं और राजा से प्रजा अपना पल्ला छुडाने के लिए प्रयत्न करती है–इस प्रकार का कोई विरोघ दधिवाहन ओर उसकी प्रजा मे न था। प्रजा सब तरह समृद्ध और राज–भक्त थी। सब लोग प्रसन्नतापूर्वक दधिवाहन का कुशलक्षेम मनाया करते थे। दधिवाहन भी प्रजाहित के कार्यों मे सदा दत्तचित्त रहता था। वह स्वय तो कष्ट भोग लेता था परन्तु प्रजा को कष्ट न हो, इसके लिए अधिक से अधिक प्रयत्नशील रहता था। उसका शासनकौशलय शासक का भेद उत्पन्न ही न होने देता था। प्रजा उसकी रक्षा के लिये दधिवाहन का होना आवश्यक समझती थी और कहती थी कि जिस दिन यह नरेश न होगा उस दिन हमारी सुख, समृद्धि का अस्तित्व रहेगा या नही?

राजा दधिवाहन बहुत ही सादगी–पसन्द था। अपने सुख के लिए वह भूलकर भी प्रजा का धन व्यय न करता था। उसकी सादगी इस सीमा तक बढी हुई थी कि वह कर द्वारा प्रजा स प्राप्त कोष का धन, अपने पास धरोहर समझता था ओर प्रजा की सम्मति के बिना स्वय को उसमे से व्यय करने का अधिकारी नही मानता था। उसकी इस न्याय–निष्ठा और सादगी के कारण चम्पापुरी के राज्यकोष मे अत्यधिक द्रव्य सचित था।

राजा दधिवाहन के ❁धारिणी नाम की एक रानी थी। दधिवाहन की तरह रानी धारिणी भी सद्‌गुणधारिणी थी। एक राजरानी मे जितने उत्तम गुण होने चाहिए, धारिणी मे वे सब विद्यमान थे। वह पति परायणा थी। पति–सेवा मे सदा तल्लीन रहती थी और इसे अपना परम कर्त्तव्य मानती थी। गृहकार्य द्वारा पति–सेवा से निवृत्त होकर वह राज–कार्य मे भी पति की सहायता किया करती थी। साथ ही पति को इस बात के लिये सदा सावधान करती रहती थी कि प्रजा अपनी सन्तान है अल्प बुद्धि वाली प्रजा–रूपा सन्तान को दु ख से बचाना, उसके अधिकारो की रक्षा करना और उसके साथ न्यायपूर्ण

❁इतिहास से पता चलता है कि चम्पापति–महाराजा दधिवाहन के तीन रानिया थी। यथा–अभया, पद्मावती और धारिणी परन्तु जिस समय का यह वर्णन है उस समय केवल एक ही रानी धारिणी थी। अभया मारी गई थी और पद्मावती दीक्षा ले चुकी थी।

व्यवहार करना अपना कर्त्तव्य है। अपन विषय-भोग मे पडकर इस कर्त्तव्य से पतित न हो जावे, अन्यथा अपने लिए घोर नरक तैयार है। अपने को जो अधिकार प्राप्त हैं उसे अपने पर भार समझकर बहुत सावधानी से वहन करना चाहिए। ऐसा न हो कि अधिकार के विषय मे किसी कवि की यह उक्ति अपने लिए चरितार्थ हो जावे कि-

अधिकार पद प्राप्य नोपकार करोति य ।
अकारो लोपमात्रेण ककारद्विवात्वताव्रजेत्।।

अर्थात्-अधिकार का पद पाकर भी उपकार न करने पर अधिकार शब्द का अ लुप्त होकर 'क' द्वित्वता को प्राप्त होता है और फिर अधिकार पद धिक्कार' हो जाता है। यानि सब ओर से धिक्कार ही मिलता है।

धारिणी अपने पति से इसी प्रकार कहा करती थी और स्वय का व्यवहार भी इस कथन के अनुसार ही रखती थी। यद्यपि वह बहुत सुन्दरी थी, उसकी सुन्दरता की जितनी भी प्रशसा की जावे, कम है, फिर भी वह सब गृहकार्य स्वय ही करती थी ओर अपने को पति की दासी ही समझा करती थी। अहकार अभिमान, ईर्ष्या अमर्ष और आलस्य से वह सदा बची रहती थी। धेर्य साहस तथा गम्भीर्य की तो वह प्रतिमा ही थी।

ससार-व्यवहार मे रहने वाले स्त्री-पुरुषो मे से, ऐसे स्त्री-पुरुष शायद ही निकले जो सन्तान की चाह न रखते हो। प्रत्येक गृहस्थ सतान का अभिलाषी रहता है। वहा जिनका नैतिक पतन है जो कर्त्तव्यच्युत हैं, वे लोग चाहे सन्तान-निरोध का कृत्रिम उपाय करते हो, अन्यथा ब्रह्मचर्य न पालने वाले नीतिमान गृहस्थ ऐसा उपाय कदापि नही करते जिससे सन्तति का निरोध हो। उनके हृदय मे यही भावना रहती है कि हमारे सन्तान हो और हम उस पर प्रेम तथा करुणा की वृष्टि करे। किसी नीतिमान् गृहस्थ के सन्तति बढ भी जाती है तब भी वह सन्तति-निरोध के लिए कृत्रिम उपायो का अवलम्बन नही लेता किन्तु ब्रह्मचर्य का पालन करके ही सन्तति-निरोध करता है। इस प्रकार ससार-व्यवहार मे रहने वाले प्राय सभी स्त्री-पुरुष सन्तान की चाह रखते है लेकिन आजकल कन्या और पुत्र के भेद के कारण सन्तान-प्रेम मे भी भेद देखा-सुना जाता है। बहुत से माता-पिता, पुत्र से तो अधिक प्रेम करते है परन्तु कन्या से वैसा प्रेम नहीं करते। बल्कि कई माता-पिता कन्या से द्वेष करते हैं उसका जन्मना बुरा समझते हैं उसे अनचाही दृष्टि से देखते है ओर कई माता-पिता तो अपनी कन्या को मार भी डालते हैं। राजपूतो के विषय मे अब तक भी यह प्रसिद्ध है कि कई राजपूतो के यहा

लडकी को जन्मते ही मार डाला जाता हे। इस प्रकार पुत्र से कन्या को न्यून समझना, पुत्र के जन्मने पर सुख ओर कन्या के जन्मने पर दु ख मानना, कन्या को द्वेष–भरी दृष्टि से देखना, तथा उसकी हत्या कर डालना यह घोर अन्याय हे। लोगो ने अज्ञानवश कन्या ओर पुत्र मे इस प्रकार का भेद कर रखा हे परन्तु भली प्रकार विचारा जावे तो पुत्र ओर कन्या दोनो ही सन्तान हे। अत माता–पिता के लिए दोनो ही समान हें। कन्या को न्यून ओर पुत्र को अधिक मानने का कोई कारण नही हे। ससार–व्यवहार को अकेला पुत्र भी नही चला सकता, न अकेली कन्या ही चला सकती हे। दोनो के मिलने पर ही ससार–व्यवहार चलता है। लोकिक ओर लोकोत्तर–दोनो ही प्रकार के कार्य करने का अधिकार जैसा पुत्र को हे, वेसा ही कन्या को भी। छोटा ओर बडा ऐसा कोई कार्य नहीं हे जिसे दोनो समान रूप से न कर सकते हो। ऐसा होते हुए भी लोग कन्या और पुत्र से प्रेम करने मे भेद क्यो करते हें? इसका कारण अज्ञान एव स्वार्थ–बुद्धि के सिवा ओर कुछ नही कहा जा सकता। ऐसा करने वाले वास्तव मे कन्या का महत्व नही जानते। उनको जेसे यह मालूम ही नही हे कि हम लोगो को जन्म देने वाली माता भी कभी कन्या ही थी। यदि कन्या न होती तो हम भी नहीं हो सकते थे, हम कन्या का अपमान करके अपनी माता का ओर स्वय अपना ही अपमान कर रहे हैं– आदि बाते जेसे वे लोग समझते ही नही हैं। जो माताए कन्या को नही चाहती कन्या का न जन्मना या जन्मी हुई का मर जाना अच्छा मानती हैं–उनमे सन्तान के प्रति रहने वाली स्वाभाविक दया की कमी है। वे अपनी जाति का पक्ष भी भूल रही हें। उनको यह मालूम नही है कि सन्तान के प्रति हमारा क्या कर्त्तव्य हे? यदि सभी माताए कन्या से द्वेष करती होती तो ससार मे एक भी महापुरुष का जन्म नही हो सकता था। जब उन महापुरुष की माताए ही न होती तब उनका जन्म केस हो सकता था?

सासारिक लोगो के स्वभावानुसार महाराजा दधिवाहन ओर महारानी धारणी को भी सन्तान की चाह अवश्य थी लेकिन ओर लोगा की तरह उनक हृदय मे पुत्र–पुत्री मे भेद मानकर केवल पुत्र की ही चाह न थी। किन्तु सतान के नाते वे पुत्र ओर पुत्री दोनो को समान समझत थे। कुछ ही दिनो म उनकी सतान–विषयक कामना पूर्ण हुई। उनक यहा एक कन्या का जन्म हुआ। कन्या भी महान सुन्दरी थी। उसकी आकृति ही उसक पूर्व सुकृत का परिचय देती थी।

अच्छी, सुन्दर और पुण्यवान सतान तो सब माता–पिता चाहते हैं, लेकिन यह नही देखते कि ऐसी सतान किस प्रकार और किसके यहा हो सकती हे? जो वृक्ष जैसा होता है उसमे वैसा ही फल लगता हे। नीम के वृक्ष मे आम नहीं लग सकते और जो आम का वृक्ष हे, उसमे नीम का फल नही लग सकता। इसी प्रकार जो माता–पिता पुण्यहीन हैं, बुरे हैं–उनके यहा पुण्यवान् ओर अच्छी सतान कहा से होगी? और जो माता–पिता पुण्यवान हें उनके यहा पुण्यहीन तथा बुरी सतान क्यो होगी? धारिणी–दधिवाहन पुण्यवान थे इसलिये उनके यहा कन्या भी पुण्यवान ही हुई।

कन्या के जन्मने से माता–पिता को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होने कन्या के जन्मने पर भी उसी प्रकार का उत्सव किया जिस प्रकार का उत्सव पुत्र के जन्मने पर किया जाता है। माता–पिता ने उस कन्या का नाम 'वसुमति रखा। वसुमति अट्ठारह देश की धाइयो की सरक्षता मे वृद्धि पाने लगी। उसे देख–देखकर धारिणी यह भावना करने लगी कि में इस कन्या को ऐसी शिक्षा देना–दिलाना चाहती हू और ऐसे साचे मे ढालना चाहती हू, कि जिससे इसके द्वारा मानव–समाज का कुछ हित हो, यह मानव–समाज के सामने कोई उच्च आदर्श रख सके और स्वय भी अपना कल्याण कर सके। इस भावना की प्रेरणा से धारिणी वसुमति को यही लक्ष्य सामने रखकर शिक्षा देने–दिलाने लगी। उसने नम्रता सरलता और निरभिमानता वसुमति की रग–रग मे भर दी। वसुमति को कला की भी ऐसी शिक्षा मिली कि जेसे वह कला की प्रतिमा ही हो। जब वह वीणा लेकर गाने लगती तब जैसे राग–रागिनी स्वय ही अपना रूप दिखा रहे हों– ऐसा ज्ञात होने लगता। उसका कर्णमधुर स्वर श्रोता को बरबस अपनी ओर खींच लेता था। क्रमश पढने–लिखने, सीने–पिरोने, भोजन बनाने गृह सवारने आदि मे वह पूर्ण निपुण हो गई। वह जब भाषण देने लगती तब सभा के लोग चित्रलिखित से हो जाते थे। उसका स्वभाव भी सर्वप्रिय था। सखियो और गृहजनो को वह बहुत प्रिय थी। जो भी उससे एक बार मिलता वह पुन–पुन मिलने की इच्छा रखता। सभी लोग उसकी प्रशसा करते। इस प्रकार वसुमति अपने गुणो के कारण सबको प्रिय लगती थी। यद्यपि वसुमति मे प्रकृतिदत्त सौन्दर्य और कन्योचित सब गुण विद्यमान थे फिर भी वह स्वय मे किसी प्रकार की विशेषता नही मानती थी। वह यही समझती थी कि यह सौन्दर्य ओर ये गुण मेरे नही है। ऐसा समझने के कारण उसे कभी अभिमान नही होता था। उसकी निरभिमानता और सरलता उसे सर्वप्रिय बनाने की सहायता करती थी। उसकी सखिया उसे देखकर यही

कहती थी कि यह मानवी रूप मे कोई शक्ति हे। धारिणी भी वसुमति को देख–देखकर प्रसन्न होती थी ओर उसे साहस तथा धेर्य देती हुई यह विचारा करती थी कि इसके द्वारा कब कोई अलोकिक कार्य हो तथा मेरा मातृ–पद सफल हो।

सब को सुख देती हुई वसुमति बडी हुई। अब उसके सुन्दर कोमल शरीर पर तरुणाई के चिन्ह प्रकट होने लगे। उसका रूप–सोदर्य युवावस्था की सहायता पाकर विकसित होने लगा। इस प्रकार वह विवाह–योग्य हो गई। उसकी सखी–सहेलिया आपस मे उसके विवाह की बाते और इस विषय मे अनेक प्रकार की भावनाए तथा कल्पनाए करने लगी, लेकिन वसुमति के हृदय मे विवाह–विषयक कभी कोई विचार ही नही होता था। यह तो एक शुद्ध हृदय बालिका की तरह सदेव प्रसन्न ही रहती थी इस ओर ध्यान भी नही देती थी।

विवाह या ब्रह्मचर्य ?

ससार मे पुत्र या कन्या को सुखी बनाने का उपाय उनका विवाह कर देना ही माना जाता है। आजकल माता, पिता, मित्र और सबधी, पुत्र या पुत्री का विवाह कर देना अपना अन्तिम और आवश्यक कर्त्तव्य मानते हैं। वे समझते हैं कि विवाह कर देने से जीवन सुखी हो जाता है। इसलिये वे सदा इसी प्रयत्न मे रहते हैं कि हमारे पुत्र या पुत्री अथवा सखी या सहेली का विवाह किसी योग्य कन्या या वर के साथ हो। वे इसी के लिए चितित भी रहते हैं और यही शुभ कामना भी किया करते हैं।

वसुमति की सखिया भी वसुमति के विषय मे यही शुभ कामना किया करती थी कि हमारी सखी का विवाह किसी ऐसे ही योग्य पुरुष के साथ हो। उनकी भावना भी यही रहा करती थी। इसलिए एक दिन वे विनोदार्थ वसुमति से कहने लगी कि बहिन वसुमति अब हमारा–तुम्हारा साथ कुछ ही दिनो का है। थोडे ही दिनो मे तुम्हारे लिए सब नया ही बनाव होगा। तुम किसी राजा की महारानी बनोगी तब नया महल होगा नया उपवन होगा नया साज–शृगार होगा नया सखा होगा और सहेलिया भी नई होगी। हम सबको तो यही छोड़ जाओगी। फिर तो हमारी याद भी न आवेगी और हम आपकी प्रिय मधुर वाणी तथा आपके द्वारा किया गया श्रवणामृत–वीणानाद सुनने से और आपके साथ रहने के आनन्द से वचित रह जावेगी। इस प्रकार हमारी हानि ही होगी फिर भी हम उस शुभ दिन की प्रतीक्षा करती हैं जब आपका पाणिग्रहण–आपके अनुरूप किसी राजा या राजकुमार के साथ हो और आप चन्द्र के साथ रोहिणी तथा वृक्ष के साथ लता की तरह अपने पति के साथ शोभा पावे। हम सदा यही शुभकामना करती हैं कि हमारी सखी को ऐसा योग्य पति प्राप्त हो जो गुण और सौन्दर्य का परीक्षक तथा आपका आदर करने वाला हो। हमारे सद्भाग्य से ऐसा अवसर शीघ्र ही आवेगा।

सखियो की वाते सुनकर वसुमति न प्रसन्न हुई, न दु खी। उसने स्वाभाविक सरलतापूर्वक सखियो को उत्तर दिया—प्यारी सखियो, क्या तुम लोग यह चाहती हो कि मैं विशाल प्रेम—सवध को सकुचित बना डालू, सबकी रहने के बदले एक की हो जाऊ तथा सबको अपना मानने के वदले एक को ही अपना मानू? अव तक जिनसे प्रेम हे उसने प्रेम तोडकर एक ही से प्रेम करू? सखियो, मुझसे तो ऐसा कदापि न होगा। मे एक से प्रेम—सवध जोडकर सबसे तोडने की भावना नही रखती किन्तु यह भावना रखती हू कि जिनसे मेने प्रेम—सबध जोडा है उनसे तो यावज्जीवन प्रेम—सवध बना ही रहे, साथ ही और नूतन प्रेम—सबध स्थापित करू। आप लोग इस ओर से निश्चिन्त रहिये। मेरा ओर आप लोगो का प्रेम प्राणो से सबध रखता हे, अत जब तक प्राण हैं तब तक तो यह सबध इसी तरह रहेगा। हा, वृद्धि चाहे होवे कम होने की तो आशका ही नही हे।

वसुमति का उत्तर सुनकर उसकी सखिया आश्चर्य करने लगी। वे सोचने लगी कि वसुमति यह क्या कह रही हे? इसके स्वभाव को देखते हुए वह जो कुछ कह रही हे उसे पूर्ण कर दिखावे तो इसमे किसी प्रकार का आश्चर्य भी नहीं हे। यह हमारी सखी राजकुमारी होती हुई भी केसी सरल और विनम्र हैं? दूसरी राजकुमारी तो स्वभावत अभिमानिनी होती हे ओर युवावस्था मे पहुचने पर तो उनकी दशा कुछ दूसरी ही हो जाती हे। लकिन यह हमारी सखी ऐसा नहीं हे। यह बहुत ही सरल पवित्रहृदय ओर निरभिमानिनी हे। जिसका जन्म महारानी धारिणी से हुआ है वह कन्या ऐसी ही होनी चाहिए।

इस प्रकार विचारती हुई वसुमति की सखिया वसुमति से कहने लगी—सखी, आपने जो कुछ कहा हे उसकी यथार्थता का पता तो समय पर ही लगेगा। परन्तु आपने कहा हे कि में विशाल प्रेम—सवध को सकुचित नही करना चाहती इसलिए हम पूछती हें कि क्या आप अपना विवाह न करेंगी? अविवाहित रहेगी?

वसुमति—में क्या करूगी ओर क्या नही करूगी यह वात आज ता नही कह सकती। लेकिन यह अवश्य कहती हू कि विशाल प्रेम—सवध का सकुचित बनाने की इच्छा नही रखती।

वसुमति की सखिया वसुमति की प्रशसा करन लगी। व कहन लगी कि आपके इस विचार की तो हम प्रशसा करती हैं। परन्तु यह ससार हे अत

इसमे एक से प्रेम–सबध तोडकर दूसरे से जोडना ही पडता है। ऐसा किये बिना काम ही नही चल सकता।

सखियो के इस कथन के उत्तर मे वसुमति ने कहा कि यह तो समय पर ही मालूम हो सकेगा। अवसर आने पर ही यह बताया जा सकता है कि एक से प्रेम तोडने ओर फिर दूसरे से प्रेम जोडने की आवश्यकता नही है।

वसुमति ओर उसकी सखियो मे इस प्रकार की बाते हुई। वसुमति की सखियो ने प्रसगवश वसुमति के विचार धारिणी को सुनाये। वसुमति के विचार सुनकर धारिणी बहुत प्रसन्न हुई। वह अपने मन मे कहने लगी कि जिस पुत्री के ऐसे उदार विचार हैं उसकी माता 'मैं' धन्य हू। मैं विचार ही रही थी कि मेरी पुत्री के द्वारा मानव–समाज का कुछ हित हो और वह मानव–समाज के सामने नूतन तथा उच्च आदर्श रख सके। जान पडता है कि मेरी यह भावना पूर्ण होगी। आजकल ससार मे स्त्री–पुरुष–विषयक उलझने बहुत बढ रही हैं। यद्यपि स्त्री–पुरुष का सहयोग–सबध, सासारिक जीवन सुखपूर्वक बिताने के लिए होता है लेकिन आजकल जैसे यह उद्देश्य विस्मृत सा हो गया है ओर सासारिक जीवन सुखपूर्वक बिताने के बदले उलझनदार बना लिया गया हे। वसुमति के विचारो से जान पडता हे कि वह इस प्रकार की उलझनो को मिटायेगी। लेकिन क्या पता है कि वह केसे पुरुष के साथ विवाही जावेगी ओर उसको स्वय की भावना कार्य रूप मे परिणत करने का अवसर भी मिलेगा या नही? कोई ऐसा मार्ग हो तो अच्छा है जिससे वसुमति की भावना भी कार्यान्वित हो उसका जीवन भी सुखपूर्वक बीते और मेरा माता बनना भी सफल हो।

रात के समय महाराज दधिवाहन धारिणी के महल मे आये। उस समय तक धारिणी वसुमति के ही विषय मे अनेक प्रकार के विचार कर रही थी। दधिवाहन के आने पर धारिणी ने उनके सामने यही प्रसग छेडा। वह दधिवाहन से कहने लगी–प्रभो! वसुमति अब सयानी हुई है। मेरा अनुमान है कि उसके विषय मे आप कुछ विचार करते ही होगे।

दधिवाहन–हा वसुमति अवश्य ही सयानी हुई हे। वह अवस्था मे ही सयानी नही हुई है किन्तु गुणकला मे भी बढकर हे। वसुमति मे तुमने अपनी समस्त कला भर दी है जो उसमे ओर वृद्धिगत हुई हे। गुणो की दृष्टि से तो [illegible] से भी बढकर है। उसका स्वभाव भी बहुत अच्छा हे। वसुमति जैसी सुपुत्री की माता होने के कारण तुम भी धन्य मानी जाती हो ओर तुम्हारे साथ मैं भी।

धारिणी—महाराज, क्षमा कीजिये, निष्कारण मेरी प्रशसा करके मुझ पर भार मत चढाइये। वसुमति मे जो विशेषता है वह आप ही के प्रताप से। में तो आपकी सेविका हू। आपसे मुझे जो कुछ प्राप्त हुआ वह यदि मैंने वसुमति को दिया तो इसमे मेरी कोई प्रशसा नही हे। ऐसा होते हुए भी आप मेरी प्रशसा कर रहे हे, यह आपकी ओर भी विशेषता है। सज्जनो का स्वभाव ही होता है कि वे बडाई के कार्य करके यश के समय स्वय पीछे हट जाते हैं और उसका श्रेय दूसरे को देते हैं। अस्तु, इस समय यह विवाद नहीं करना है किन्तु इस समय तो यह विचार करना हे कि वसुमति को सुखी केसे बनाया जावे। इस विषय मे आप विचार कर ही रहे होगे तथापि में भी आपसे कुछ निवेदन करना उचित समझती हू जिसमे आप मेरी प्रार्थना भी दृष्टि मे रख सके।

दधिवाहन—हा, हा, अवश्य कहो। वसुमति के विषय मे जो अधिकार मुझे प्राप्त है, वहा तुम्हे भी है। बल्कि पुत्री पर पिता की अपेक्षा माता का अधिकार कुछ बढ कर होता है। इस कारण पुत्री को सुखी बनाने की चिन्ता भी माता को अधिक होनी चाहिए।

धारिणी—स्वामी, आपके होते हुए वसुमति के विषय मे मुझे किसी प्रकार की चिन्ता की आवश्यकता नहीं है। मैं तो केवल यह विचार कर निवेदन करना चाहती हू कि कही आप एक ही पक्ष पर विचार न कर डाले ओर वसुमति को सुखी बनाने की भावना होने पर भी उसे दु खी बनाने का काम न हो जावे। 'स्त्री होने के कारण मुझे जो अनुभव हुआ हे उस अनुभव का लाभ वसुमति को मिले, यही मेरी भावना हे।

दधिवाहन—तुम्हे यह विचार रहना ही चाहिए। वसुमति के विषय म किस बात को विशेष रूप से ध्यान मे रखने की आवश्यकता हे ओर तुम क्या कहना चाहती हो कहो।

धारिणी—आजकल ससार मे कन्या को सुखी बनाने का उपाय उसका विवाह कर देना ओर उसे किसी पुरुष की पत्नी बना दना माना जाता हे। इसके अनुसार में भी सोचती हू कि वसुमति का विवाह कर दू ओर उस सुखी बना दू। लेकिन दूसरी ओर जब पुरुषो के स्वभाव पर ध्यान दती हू तब ऐसा करने मे हिचकिचाहट होती हे। आजकल अधिकाश पुरुषो की दृष्टि म स्त्रिया तुच्छ ओर पतित हैं। वे स्त्रियो को केवल अपनी काम-पिपासा शात

करने का एक साधन मात्र मानते हैं। उनकी दृष्टि मे स्त्रियो का इससे अधिक कोई महत्व नही है। कई पुरुष स्त्रियो को पाव के जूते के समान मानकर उनकी अवहेलना करते हैं, उनका तिरस्कार करते हैं और उनके साथ अमानुषिक पशूतापूर्ण व्यवहार करते हैं। उसमे भी साधारण पुरुषो की अपेक्षा राज-परिवार के पुरुषो का स्त्रियो के प्रति दुर्व्यवहार और भी ज्यादा बढा हुआ है। इस दोष के साथ ही उनमे बहुविवाह, मद्यपान, मृगया आदि दोष भी है। कई राजपुरुष नवीन विवाह होने पर पहले की स्त्री से बोलते तक भी नही। यद्यपि मुझे यह चिन्ता नही है कि पुरुषो की इन आदतो के कारण वसुमति को कष्ट होगा-क्योकि वसुमति अपने मार्ग को अपने सद्गुणो द्वारा सरल बना सकती है-फिर भी उसमे जो सस्कार डाले गये हैं उनका विकास होने के लिए उसे उपयुक्त क्षेत्र भी चाहिए और वैसा ही सहायक भी चाहिए। मैंने वसुमति के जो विचार सुने हैं तथा जैसी मेरी भावना हे उसके अनुसार वसुमति के द्वारा मानव-समाज के सन्मुख एक नवीन आदर्श की सृष्टि होनी चाहिए, लेकिन यह तभी सम्भव हे जब वसुमति को पति भी ऐसा ही मिले। ऐसा पति न मिलने पर दाम्पत्य-जीवन भी सुखपूर्वक न बीतेगा और मेरी तथा वसुमति की भावना भी कार्यान्वित न होगी। मैंने वसुमति को जन्म दिया हे, उसका पालन-पोषण किया है कला सिखाई है और उसमे अच्छे सस्कार डाले हैं। अब मै उसका विवाह किसी पुरुष के साथ करू उस पुरुष को वसुमति के साथ ही धन-सपति भी दू, वसुमति उस पुरुष की दासी बन कर भी रहे और फिर भी यदि वह पुरुष वसुमति की सेवा न ले, वसुमति के साथ नीचतापूर्ण तथा अमानुषिक व्यवहार करे तो उस समय वसुमति को कैसा दुःख होगा तथा मुझे-और आपको भी कितना खेद एव पश्चात्ताप रहेगा? इतना ही नही ऐसी दशा मे वसुमति की और मेरी भावना भी अपूर्ण रहेगी। इन सब बातो को दृष्टि मे रख कर ही मेरी यह प्रार्थना हे कि वसुमति को सुखी बनाने के लिए केवल एक ही पक्ष का विचार न किया जावे किन्तु इन सब बातो को भी दृष्टि मे रखा जावे। आजकल कन्या का विवाह करने मे विशेषत घर-वर ही देखते है। यद्यपि घर-वर देखने मे इन मेरी कही हुई बातो का देखना भी आ जाता है लेकिन आजकल कठिनाई के भय से इन सब बातो को पूर्णत देखा भी नही जाता। केवल धन-धान्य-पूरित घर देख लिया जाता है और सुन्दर

युवक वर देख लिया जाता है। फिर चाहे उस घर–वर से कन्या को कैसा भी कष्ट क्यो न हो? वसुमति के लिए भी ऐसा ही न हो, यही मेरी प्रार्थना है।

धारिणी की बात के उत्तर मे दधिवाहन बोले–प्रिये मेरी दृष्टि मे वसुमति अप्रतिम कन्या है। ऐसी सुन्दरी तथा गुणवती कन्या और कही न मैंने देखी ही है, न सुनी ही है। राजाओ के यहा भ्रमण करने वाले लोग भी वसुमति की प्रशसा करते हैं और कहते हैं कि इस समय वसुमति की समता करने वाली दूसरी कोई राजकन्या नही है। मैं वसुमति के लिए वर भी ऐसा ही खोज रहा हू जो सब प्रकार से योग्य हो। रही पुरुषो की उद्दण्डता की बात, लेकिन यह कहना ठीक नही है कि सभी पुरुष ऐसे उद्दण्ड हैं। योग्य और पति–कर्त्तव्य को जानने वाला पुरुष है ही नहीं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। ससार मे कन्या और पुरुष दोनो ही योग्य भी होते है और अयोग्य भी। विवाह–समय की गई प्रतिज्ञा से अनेक पुरुष भी विमुख हो जाते हैं और अनेक स्त्रिया भी विमुख हो जाती हैं। केवल पुरुष ही बुरे है, स्त्रिया सब अच्छी ही होती है यह कैसे कहा जा सकता है? मैं वसुमति के लिए वर की योग्यता–अयोग्यता की जाच भली प्रकार कर लूगा और योग्य होने पर ही किसी के साथ वसुमति का विवाह करना तय करूगा। योग्यता का विश्वास किये बिना मैं किसी पुरुष के साथ वसुमति का विवाह कदापि नहीं कर सकता। यह बात दूसरी है कि मेरी परीक्षा के समय तो वह पुरुष योग्य ठहरे और विवाह के पश्चात् अयोग्य हो जावे। लेकिन इस प्रकार की भावी घटना को जानने या रोकने का न तो कोई उपाय ही है और न अभी इस प्रकार की चिता या ऐसे सदेह को स्थान देना ही ठीक है। इसके सिवा अपने को वसुमति की योग्यता देखकर यह विश्वास रखना चाहिए कि वसुमति के ससर्ग मे आया हुआ योग्य पुरुष फिर अयोग्य क्यो बनेगा? वसुमति अपने गुणो से अयोग्य को भी योग्य बना सकती है तो जो योग्य होगा उसे अयोग्य न बनने देना क्या कठिन है? इस पर भी यदि वसुमति का पति अयोग्य हो जावे तो इसे वसुमति की ही कमी माननी होगी। अच्छी स्त्री अपने पतित से पतित पति को भी श्रेष्ठ बना लेती है। इसके अनेको उदाहरण भी हैं। अनेक स्त्रियो ने अपने दुराचारी और अयोग्य पति को सदाचारी और योग्य बनाकर उच्चता को प्राप्त कराया है। उन्होने स्वय के धर्म की तो रक्षा की ही साथ ही पति को भी धर्म पर आरूढ किया। जो स्त्री ऐसा

नहीं कर सकती उसमे सदगुणो की न्यूनता समझनी चाहिए ओर इसका दोष उसकी माता पर भी हो सकता है जिसने अपनी पुत्री को पूर्ण रूप से सदगुणी नही बनाया। यदि तुम्हे वसुमति के सदगुणो पर विश्वास है तो फिर उसके विषय मे इस पकार की चिन्ता अनावश्यक है। फिर तो उसका पाला कैसे भी पति से पड जावे वह अपने पति को सदगुणानुकूल ही बना लेगी।

पति के कथन के प्रत्युत्तर मे धारिणी कहने लगी—स्वामिन्, यद्यपि आपका कथन यथार्थ है। स्त्रिया पुरुषो को सुधार भी लेती हैं और वसुमति मे ऐसे गुण भी हें लेकिन पुरुष को सुधारना कोई सरल काम नही है। ऐसा करने के लिए स्त्रियो को अपने सुखो का ही नही अपितु प्राणो तक का वलिदान करना होता हे। जिनमे ऐसा करने की समता है उनके द्वारा ही पुरुष सुधर सकते हैं। वसुमति भी ऐसा करने मे समर्थ है परन्तु फिर अपने जिस सुख की आशा से उसका विवाह करना चाहते हैं उसको उस सुख से वचित रहना पडेगा। फिर तो एक सुधारक की तरह वसुमति को भी समस्त कष्ट सघर्ष सहने होगे। फिर जिस सुख की अभिलाषा से विवाह किया जाता है वह सुख नही मिल सकता। एक बात और है जब वसुमति मे पुरुषो को सुधारने की क्षमता है तब उसको विवाह—बधन मे क्यो बाधा जावे? ब्रह्मचारिणी ही क्यो न रहे? विवाह—बधन मे बाधने पर तो वह एक ही पुरुष को सुधार सकेगी लेकिन अविवाहित रह कर तो अनेको को सुधार सकती है। विवाह होने पर उसका सुधार—क्षेत्र सकुचित होगा परन्तु ब्रह्मचारिणी रहने पर उसका सुधार—क्षेत्र भी विशाल होगा। वसुमति ने अपनी सखियो से जो विचार प्रकट किये है उनसे उसका विचार विवाह न करने का ही जान पडा है। उसने कहा है कि मै एक से प्रेम—सबध तोडना ओर दूसरे से जोडना ठीक नहीं समझती। अपितु ऐसा विशाल प्रेम—सबध जोडना चाहती हू कि जिसमे फिर टूटने का भय नही है। उसका यह कथन तभी पूरा हो सकता हे जब वह अखण्ड ब्रह्मचारिणी रहे। मेरी भी भावना यही हे कि वसुमति के द्वारा मानव—समाज का कोई हित हो मानव—समाज के सन्मुख कोई उत्कृष्ट आदर्श रखा जावे और साथ ही वह स्वय को भी उच्च ध्येय पर पहुचावे। मेरी यह भावना तभी पूर्ण हो सकती हे जब वसुमति विवाह—बधन मे न बधे। इन सब बातो को दृष्टि मे रखकर मै तो यही ठीक समझती हू कि वसुमति को विवाह—बधन मे न बाधा जावे किन्तु ब्रह्मचारिणी ही रहने दी जावे।

दधिवाहन—रानी, तुम्हारा यह कथन ठीक है कि पुरुषो को सुधारने के लिए स्त्रियो को कष्ट सहने होते हें ओर सुखो का त्याग करना होता हे लेकिन ऐसा किये बिना काम भी तो नही चल सकता। एक धर्मपरायणा स्त्री के लिए अपने पति को सुमार्ग पर लाने के वास्ते ऐसा करना आवश्यक भी है। जो स्त्री विलासप्रिय हे जो पति से केवल भोग—विलास की ही काक्षिणी है, पति के हित की चिता जिसे नही हे, वह स्त्री पति को सुधार भी नही सकती ओर ऐसी विलास—काक्षिणी को कष्ट होना भी स्वाभाविक हे। किन्तु जो स्त्री स्वय को पति की सहधर्मिणी मानती है, निरन्तर पति का हित चाहती है और जिसका लक्ष्य केवल विलास ही नही हे, वह स्त्री पति को सुधारने के लिए कष्ट सहे बिना भी नहीं रह सकती। ऐसी स्त्रियो ने अपने सुखो के लिये विलासिता का त्याग किया हे ओर अनेक कष्टो को सहर्ष सहा हे। फिर क्या वसुमति ऐसा न कर सकेगी? सुख, सुख की आकाक्षा से नही मिलता किन्तु दु ख सहने से ही सुख मिलता हे। पति को सुधारने मे वसुमति को कष्ट होगा इस भय से उसे अविवाहिता रखना कदापि उचित नही हे।

धारिणी—महाराज, आपने मुझे मेरा ही उदाहरण देकर निरुत्तर करने का प्रयत्न किया है लेकिन में भी जो कुछ निवेदन कर रही हू उसे भी में अपना ही उदाहरण देकर पुष्ट करना चाहती हू। यद्यपि आपने मेरे लिए जो प्रशसाभरी बात कही हे उसे में अपने पर बोझ रूप समझती हू फिर भी में कुछ देर के लिए आपका कथन ठीक मानकर पूछती हू कि आपको सुमार्ग पर स्थिर रखने के लिए मेंने जो कष्ट सहे, जो त्याग किया वही कष्ट—सहन ओर त्याग यदि मेंने ब्रह्मचर्य—पूर्वक किया होता, विवाह—बधन मे न पडी होती तो कितने पुरुषो का सुधार कर सकती? प्रत्येक मनुष्य को कार्यक्षेत्र मे पडने पर ही अनुभव होता हे। इसी के अनुसार मेने भी कार्यक्षेत्र मे उतर कर जो अनुभव किया हे उस पर से में इसी निर्णय पर पहुची हू कि क्षमता होते हुए ब्रह्मचर्य का पालन न करना—विवाह—वधन म पडना—अपने सुधार—क्षेत्र का सकुचित बनाना हे। मे कष्टो के भय से वसुमति को ब्रह्मचारिणी नही रखना चाहती अपितु अधिकाधिक कष्टो का आह्वान करने ओर उन्ह सहन करन के लिए ही उसे विवाह—वधन से बचाना चाहती हू। में चाहती हू कि आपकी सेवा करते हुए मुझे जो अनुभव हुआ है उसका लाभ वसुमति ल आर मेरा अनुभवा

द्वारा स्वय को योग्य कार्य मे लगा सके। विवाह करने की अपेक्षा ब्रह्मचर्य का पालन करना बुरा नही है किन्तु अच्छा ही है। इसलिए मेरी तो इच्छा यही है कि वसुमति का विवाह न किया जावे अपितु उसे ब्रह्मचारिणी रखी जावे। ऐसा होने पर ही वह पूर्ण सुखी भी बन सकती है, उसके गुणो का विकास भी हो सकता हे, तथा मेरी भावना भी पूर्ण हो सकती हे।

धारिणी की बात सुनकर दधिवाहन आश्चर्यचकित हो गये। वे कहने लगे–रानी, मैं नही जानता था कि तुम्हारी त्याग भावना ऐसी है। आज तुम्हारे विचार सुनकर प्रसन्नता भी हुई ओर आश्चर्य भी। मै ब्रह्मचर्य को कदापि बुरा नही मानता। साथ ही यह भी स्वीकार करता हू कि तुमने एक मेरे को सुधारने के लिए जो कष्ट सहे हैं वे ही कष्ट विवाह–बधन मे न पडकर ब्रह्मचर्यपूर्वक मानव–समाज को सुधारने के लिए सहे होते तो अवश्य ही अनेक पुरुषो का सुधार कर सकती। जब तुम जैसी राजकन्या ब्रह्मचारिणी रहकर उपदेश दे तब अनेक पुरुषो का सुधार हो यह कोई आश्चर्य की बात नही है। वसुमति भी ब्रह्मचारिणी रह कर अनेक पुरुषो का सुधार कर सकती हे लेकिन रानी ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन व्यतीत करना कोई सरल कार्य नहीं हे। काम के वेग को दबाना मस्त हाथी को रोकने से भी कठिन है। प्रारम्भ मे कोई आवेश मे आकर ब्रह्मचर्य पालने को तैयार भी हो जावे लेकिन जीवनभर ब्रह्मचर्य का पालन करना बहुत कठिन है। अनेक ऐसे लोग भी देखे–सुने जाते हैं जो पहले तो आवेश मे आकर ब्रह्मचर्य पालने लगते हैं लेकिन आगे चलकर अपने निश्चय पर दृढ नही रहते। काम का आवेग न रोक सकने पर ब्रह्मचर्य से पतित भी हो जाते हैं। वसुमति को भी ब्रह्मचर्य की उत्कृष्टता का विचार करके ब्रह्मचारिणी रखा जावे परन्तु आगे चलकर यदि वह ब्रह्मचर्य का पालन न कर सकी तब उसका स्वय का पतन तो होगा ही, साथ ही अपना कुल–वश भी कलकित होगा। इसके सिवा एक बात ओर है। सासारिक प्रथा के अनुसार कन्या का विवाह करने की योजना करना अपना कर्त्तव्य है। हा, विवाह तय करने के समय कन्या से स्वीकृति लेना आवश्यक है। लेकिन कन्या को ब्रह्मचारिणी तो तभी रखा जा सकता है उसका विवाह तभी नही [illegible] रुकता जब कन्या स्वय ही ऐसी इच्छा प्रकट करे। माता पिता न तो विवाह ही कर सकते है न उसे ब्रह्मचारिणी रख सकते हैं।

बाते कन्या की इच्छा पर निर्भर हे। कन्या की इच्छा के प्रतिकूल उसका विवाह करना भी अनुचित हे ओर उसे ब्रह्मचारिणी रखना भी अनुचित हे।

धारिणी–आपका यह कथन उचित हे। मैं भी यह नही कहती कि वसुमति को बलात् ब्रह्मचरिणी रखा जावे लेकिन में उसके विचारो को जहा तक जान पाई हू वह स्वय ही ब्रह्मचारिणी रहना चाहती हे विवाह नही करना चाहती।

दधिवाहन–किसी बात का अनुमान करके उस अनुमान के आधार पर ही काम कर डालना ठीक नही है।

धारिणी–तो यह उचित होगा कि वसुमति के विवाह की योजना विचारने से पहले उसकी स्पष्ट सम्मति ले ली जावे ओर फिर जेसा कहे वेसा किया जावे। यदि वह विवाह करना चाहे तो योग्य वर देख कर उसका विवाह कर दिया जावे ओर ब्रह्मचारिणी रहना चाहे तो उसका विवाह बलात् न किया जावे।

दधिवाहन–तुम्हारा यह कथन सगत हे। इस विषय मे तुम वसुमति का विचार जानकर मुझसे कहो जिससे कोई मार्ग निश्चित किया जा सके।

दधिवाहन ओर धारिणी की बातचीत का निर्णय वसुमति के विचारो पर रहा। दोनो की बातचीत बन्द हुई और दोनो यथास्थान सो गये।

विवाह ऋण है

क्वचिज्झिल्लीनाद क्वचिदतुलकाकोलकलह
क्वचित्ककाराव क्वचिदपि कपीना कलकल
क्वचिद्धोर फेरुध्वनिरयमहो दैवघटना–
त्कथकार तार रसति चकित कोकिलयुवा।।

अर्थात्–सुन्दर वसन्त ऋतु का समय है आम्रवृक्षो पर मजरिया खिल रही हैं जिन पर भौरे मडरा रहे हैं और जिनका रस पीकर, कोयल जवान बन गई है। इस ऋतु के होने से और आम्रमजरी का रस पिया है इसलिए कोयल को अवश्य बोलना चाहिए था फिर भी वह चुप क्यो है? अरे–अरे, समझ गया, कि कोयल क्यो नही बोलती है। वह एक गम्भीर विचार मे पडी हुई है। वह सोचती है कि इस समय मैं केसे गाऊ? एक ओर तो झीगुर अपनी तान से गा रहा है और दूसरी ओर कौए कर्कश स्वर मे काव–काव कर रहे हैं। एक ओर कक–पक्षी कटु शब्द मे बोल रहा है, और दूसरी ओर वृक्ष पर बेठे हुए बन्दर हा–हू कर रहे हे वही सियार भी रो रहे हे। इस प्रकार की विषमता देखकर ही कोयल चुप हे और अनुकूल ऋतु होने पर भी उक्त कारणो से नही बोलती।

ससार का यह नियम ही हे कि एक ओर अच्छाई हे तो दूसरी ओर बुराई है। कही राग–रग हो रहा है और कही रोना–पीटना हो रहा हे। कही सज्जन गण दूसरो को सुख देने के लिए दु ख उठा रहे हे और कही दुर्जन लोग पराये अपशकुन के लिए नाक कटाने की तरह के कार्य कर रहे हैं। ससार की यह विषमता एक विचारक के लिए बडे विचार का कारण बन जाती है और इसीलिए वे ऐसा मार्ग निकालते हें इस प्रकार जहा वेषम्य को स्थान ही है।

कवि की कल्पनानुसार जेसा वेषम्य कोयल के सामने था वेसा ही राजा दधिवाहन के सामने था। एक ओर तो महल मे बेठे हुए राजा–रानी

वसुमति का विवाह करने, न करने के विषय मे विचार कर रहे थे, ओर दूसरी ओर अपने महल मे बैठी हुई वसुमति कुछ ओर ही सोच रही थी। वह विचार रही थी कि जिस स्त्री जाति मे में उत्पन्न हुई हू आज उसकी केसी दुर्दशा है? स्वय की मूर्खता ओर उसके कारण उत्पन्न पुरुषो के अत्याचार से वे किस प्रकार पीडित हैं? आज पुरुषो के समीप स्त्रियो की गणना अन्य भोग्य पदार्थो के ही समान हे, इससे अधिक स्त्रियो का कोई महत्व नहीं हे। मेरी स्त्री बहने भी एक ही बहाव मे बही जा रही हैं। उन्हे अपने पतन और अपनी दुर्दशा का ध्यान नही हे। यदि स्त्री जाति मे से एक भी स्त्री त्याग ओर साहस पूर्वक कार्य करे, तो सारी जाति का उद्धार कर सकती हे। लेकिन उनका पतन इस सीमा तक हो चुका हे, कि वे अपनी स्थिति को समझ ही नही पाती। ऐसी दशा मे स्वय के उद्धार का प्रयत्न केसे कर सकती हैं? हे प्रभो! क्या में अपनी बहनो की कुछ सेवा कर सकूगी? क्या मेरे द्वारा उनका उद्धार हो सकेगा? ओर क्या मेरे इस तुच्छ शरीर द्वारा अपनी दु खित बहनो का कुछ उपकार होगा?

इस प्रकार विचार करती हुई वसुमति सो गई। प्रात काल होते-होते उसने एक विचित्र स्वप्न देखा। स्वप्न देखकर वह आश्चर्यपूर्वक जाग उठी और सोचने लगी कि मैं इस स्वप्न का क्या अर्थ लगाऊ? इस स्वप्न को अच्छा कहू या बुरा कहूं?

वसुमति असमजस मे पड गई। असमजस के खेद के कारण उस पसीना हो आया। उसने असमजस मिटाने का बहुत पयत्न किया परन्तु सफलता न मिली। अन्त मे वह शेया पर से उठकर समीप की अशोक-वाटिका मे गई और वहा एक वृक्ष के नीचे बेठ कर गले पर हाथ रख स्वप्न के विषय मे विचार करने लगी।

प्रात काल होते ही वसुमति की सखिया वसुमति को जगाने के लिए उसके शयनागार मे गईं। लेकिन वहा उन्होने देखा कि वसुमति की शेया खाली पडी है, वसुमति नही है। यह देखकर उन्हे बडा आश्चर्य हुआ ओर साथ ही चिन्ता भी हुई। वे सोचने लगी कि आज अनायास ही वसुमति कहा चली गई? वह राजकुमारी है और युवती हे। कही काई एसी दुर्घटना ता नही घटी, जिसके कारण इस निर्मल राजवश पर किसी प्रकार का कलक लगे। इस प्रकार चिन्ता करती हुई वे वसुमति को ढूढने लगीं। ढूढती-ढूढती वे उसी स्थान पर आईं जहा गाढ विचार म निमग्न वसुमति बेठी हुई थी। वसुमति को विचारमग्न देखकर उसकी सखिया कहने लगी-राजकुमारी आज आप

अनायास ही शैया से उठ कर चुपचाप यहा कैसे चली आई? आपने किसी को सूचित तक नही किया? हम लोग आपको ढूढती फिर रही हैं। अच्छा हुआ कि शयनागार मे आपके न होने की खबर हमने महाराज महारानी या ओर किसीको नही दी नहीं तो कैसा बुरा होता। लोग क्या कहते? आप राजकुमारी हे युवती हे अत आपका इस तरह अकेली चली आना ठीक नही हे। हम मे से किसी को साथ लेकर ही घर से निकलना चाहिये था। खैर जो हुआ सो हुआ लेकिन अब यह बताओ कि आप चिंतित क्यो हैं? आपको आज तक कभी भी चिंतित नही देखा गया, परन्तु आज तो आप बहुत ही चिंतित हैं।

सखियो की बातो से वसुमति की विचार–मग्नता भग हुई। उसने एक बार अपनी सखियो की ओर देखा, और सखियो की बात समाप्त होते ही वह फिर उसी तरह विचारमग्न हो गई। वसुमति को फिर विचारमग्न देखकर तथा अपनी बात का कोई उत्तर न पाकर वसुमति की सखियो का आश्चर्य बढ़ गया। उनमे से एक सखी वसुमति से कहने लगी–बहन वसुमति, आपने तो हमारी बात सुनकर भी अनसुनी कर दी। हम तो आपकी चिन्ता का कारण पूछ रही हैं ओर आप बोलती भी नही।

एक सखी के यह कहने पर भी जब वसुमति कुछ न बोली, तब दूसरी सखि अपनी सखियो से कहने लगी–राजकुमारी की चिन्ता का कारण राजकुमारी से क्या पूछती हो? क्या राजकुमारी निर्लज्ज हैं, जो स्पष्ट रूप से चिन्ता का कारण कह सुनावें? ऐसा तो कोई साधारण कन्या भी नही कर सकती है तो राजकुमारी कैसे कर सकती हैं? राजकुमारी की चिन्ता का कारण उनसे पूछने की आवश्यकता भी तो नहीं है। क्या तुम नहीं जानती, कि राजकुमारी को किस बात की चिन्ता हो सकती है? क्या तुम्हारे नेत्र फूटे हुए है? देखती नही हो कि राजकुमारी की कितनी आयु हो गई है और यौवन के प्रभाव से इनका रूप–रग केसा विकसित हो रहा है। इस समय ये आम्र वृक्ष से लिपटने के लिए आतुर मालती की तरह हो रही हैं फिर भी इनका विवाह नही हुआ यह क्या चिन्ता की बात नही हे? इसी कारण के सिवा राजकुमारी की चिन्ता का दूसरा कारण हो ही क्या सकता है? यह बात तो अपन अपनी साधारण बुद्धि से ही जान सकती हैं इसमे राजकुमारी से क्या पूछना?

तीसरी–बात तो ठीक ही है। यौवन का प्रारम्भ होने पर भी विवाह न होना एक बुद्धिमान कन्या के लिए अवश्य चिन्ता की बात है।

चौथी–लेकिन चिन्ता करके शरीर क्षीण करने से क्या लाभ है? महाराज और महारानी अपनी प्रिय पुत्री के विवाह के लिए स्वय ही चिंतित

हैं। वे राजकुमारी के योग्य वर की खोज मे ही हैं। हा, इस विषय मे वे शीघ्रता नही कर रहे हैं सो आज में उनसे निवेदन करूगी कि राजकुमारी का विवाह शीघ्र ही कर देवे। बहन वसुमति, चलो, चिन्ता छोडो। अब आप शीघ्र ही किसी राजा की रानी बनोगी।

वसुमति चुपचाप अपनी सखियो की वाते सुन रही थी ओर सोच रही थी कि मेरी बहनो का केसा पतन है? इनकी दृष्टि मे विषयो को प्राप्त न होना ही चिता या विचार का कारण हे, इनके सिवा चिन्ता या विचार की कोई वात ही नही हे। में सोचती थी कि पुरुष ही विषयो के दास हो रहे हैं, लेकिन सखियो की बातो से जान पडता हे कि स्त्रिया उनसे भी वढकर विषयो की दासी हो रही हैं। मे स्वप्न की समस्या को तो सुलझा ही नहीं सकी थी इतने ही मे सखियो ने मेरे सामने यह दूसरी उलझन खडी कर दी। इस समय में क्या करू? एक समस्या को सुलझाये बिना दूसरी समस्या हाथ मे केसे लू? परन्तु सखियो की बाते सुनकर भी यदि मै चुप रहती हू, तो ये सखिया यही समझेगी कि वसुमति को हमारे अनुमानानुसार ही चिन्ता हे ओर स्वय का अनुमान ठीक समझ कर उसके आधार पर माता-पिता से न मालूम क्या कहेगी तथा उनको ओर चिन्ता मे डालेगी। इसलिए पहले इनके अनुमान का निराकरण कर देना ही ठीक हे।

इस प्रकार विचार कर वसुमति अपना स्वप्न-विषयक विचार दवाकर सखियो से कहने लगी-सखियो यद्यपि जन्म से ही मेरा ओर तुम्हारा सवध हे, फिर भी तुमलोग मुझे अब तक नही समझ पाई। तुमने स्वय की तरह मुझे भी तुच्छ विचारो वाली समझ रखी है। इसीसे किसी दूसरे विचार मे बेठी हुई होने पर भी मेरे लिए इस तरह की बाते कह रही हो जेसे में विषयभोग के लिए ही जन्मी हू ओर उनके मिलने पर ही अपना जीवन सफल मान सकती हू। लेकिन सखियो तुम्हारा ऐसा समझना नितान्त भूलभरा हे। में उन विचारो की नही हू जेसे कि तुमने अनुमान किया हे। में केसे विचारो की हू, यह मुझसे सुनो। मैं अपने पर माता-पिता ओर धर्माचार्य का ऋण समझती हू। प्रत्यक स्त्री-पुरुष पर ये तीन ऋण हे। जीवन के लिए ये तीन ऋण अवश्य ही हाते हैं। ऋण तो सासू, श्वसुर पति आदि की सहायता लना भी हे, लेकिन ऐसा ऋण करना-न करना अपनी इच्छा पर निर्भर हे। जीवन क लिए इन आर ऋणो का लेना आवश्यक भी नही हे। हा अपनी कमजारी क कारण एसा करना पडे तो यह वात दूसरी हे। लकिन मनुष्य को उचित ह कि वह अपन पर किसी प्रकार का नया ऋण लादने से पहले पूर्व के तीन ऋण स मुक्त हान

का प्रयत्न करे। पहले का ऋण न चुका कर नया ऋण करना ईमानदारी का काम नही कहा जा सकता। ईमानदारी तो यह है कि पहले के ऋण से मुक्त हो और फिर बिना आवश्यक कारण के नया ऋण न करे। मुझ पर माता, पिता और धर्माचार्य का जो ऋण है मैं उसे ही उतारना चाहती हू, नया ऋण कदापि नही करना चाहती। ऐसी दशा मे मेरे लिए तुम्हारा यह अनुमान कि मै विवाह की ही चिन्ता कर रही हू कैसे ठीक है? मैं अपने पर माता–पिता का अत्यधिक ऋण समझती हू। अनेक जन्म तक उनकी सेवा करने पर भी उनके ऋण से मुक्त नही हो सकती। फिर उनकी सेवा के समय मे ससुराल जाने की कृतघ्नता कैसे कर सकती हूँ? ऋण चुकाने के लिए सेवा करने के समय किसी प्रकार का बहाना करना अनुचित है। मैं ऐसा कदापि नहीं कर सकती ओर तुम लोगो से भी यही कहती हू कि आगे से मेरे लिए न तो ऐसा अनुमान ही करना ओर न ऐसी बात ही करना।

वसुमति की बाते सुनकर उसकी सखिया दग रह गईं। वे वसुमति से कहने लगी–सखी तुम तो ऐसी बात कह रही हो जैसे ससार से बिल्कुल निराली हो। तुम कुछ भी कहो, लेकिन कोई भी व्यक्ति यह कैसे मान सकता है कि तुम ऐसी सुन्दरी और युवती को पति की इच्छा ओर तद् विषयक चिन्ता न हो।

वसुमति–हा सखियो आज की प्रथा तो यही हो रही है लेकिन जिनको इस प्रकार की चिन्ता होती है उन कन्याओ ने किसी और ही प्रकार की शिक्षा पाई है। मेरी माता ने मुझे वह गन्दी शिक्षा नही दी जिसके पाने पर विषय–भोग की लालसा उत्पन्न हो या वृद्धि पावे। दूसरी माताए तो अपनी कन्या को विषय–भोग मे प्रवृत्त होने की शिक्षा देती है, परन्तु मेरी माता ने मुझे विषय–भोग से बचने की शिक्षा दी है। मेरी माता ने मुझे बताया है कि मनुष्य–जन्म बार–बार नहीं मिलता इसलिए इसका उद्देश्य पूर्ण ब्रह्मचर्य–पालन होना चाहिए। विषय–भोग मे इस जन्म को लगाना इसका दुरुपयोग करना है। इस प्रकार मेरी माता ने मुझे ब्रह्मचर्य–पालन की ही शिक्षा दी है लेकिन साथ ही यह शिक्षा भी दी है कि पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति न होने पर दुराचार मत करना किन्तु उस दशा मे स्थूल ब्रह्मचर्य का पालन करना। अर्थात् विवाह करके मर्यादापूर्वक जीवन व्यतीत करना। यह मार्ग बताकर माता ने मुझे कन्याधर्म पत्नीधर्म मातृधर्म ओर विधवा धर्म की भी शिक्षा दी है। पूर्ण ब्रह्मचर्य न पाल सकने पर मर्यादित गार्हस्थ्य जीवन विताने मे किस–किस अवस्था का सामना करना पडता है इस बात को दृष्टि मे रख मेरी माता

ने मुझे चारो प्रकार की शिक्षा दी हें। जो कन्या पूर्ण ब्रह्मचर्य नहीं पाल सकती, किन्तु विवाह करती है, उसे विवाह करने के पश्चात् तीन भिन्न–भिन्न जीवन मे प्रवेश करना पडता है। विवाह होते ही तो उसे वधू बनना पडता हे। वधू बनने पर, पति, सासू, श्वसुर, पतिभगिनी (ननद), देवर, जेठ ओर उनकी पत्नियो आदि के साथ, केसा व्यवहार रखने पर जीवन सुखपूर्वक बीत सकता है, तथा उस समय का कर्त्तव्य क्या हे, यह बात माता ने मुझे पत्नीधर्म की शिक्षा देकर बता दी है। जब विवाह होता हे तब सतान भी होती हे ओर माता भी बनना पडता हे। उस समय क्या धर्म हे, यह माता ने मुझे मातृधर्म की शिक्षा देकर बताया है। विवाह होने के पश्चात् किसी का पति सदा ही जीवित नही रहता, किन्तु विधवा भी होना पडता हे ओर कभी–कभी तो कई कन्याए विवाह होते ही विधवा हो जाती हें। उस समय का कर्त्तव्य भी माता ने वैधव्य–धर्म की शिक्षा देकर मुझे भली प्रकार बता दिया है। अर्थात् माता ने पहले तो मुझे पूर्ण ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी हे परन्तु पूर्ण ब्रह्मचर्य न पाल सकने पर नीति पूर्ण, सुखमय ओर धार्मिकता से जीवन बिताने के लिए माता ने मुझको चार प्रकार के धर्म की शिक्षा देकर कहा है कि यदि तुझ मे शक्ति हो तब तो तू पूर्ण ब्रह्मचर्य ही पालना। अपने पर ससुराल का ऋण मत करना लेकिन पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति न होने पर, ससुराल का ऋण करके इन चार धर्म के पालन द्वारा, उस ऋण को उतारने की चेष्टा करना ओर विवाह को अपनी अशक्तता का कारण तथा अपने पर ऋण मानना विवाह करने का उद्देश्य विषय–सुख भोगना ही मत समझ लेना। इस प्रकार मेरी माता ने मुझे ब्रह्मचर्य पालने की शिक्षा दी है और विवाह असमर्थ अवस्था के लिए बताया है। ऐसी दशा मे मेरे हृदय मे विवाह–विषयक चिन्ता हो तो केसे? मैं तो यही भावना करती हू कि माता–पिता आदि की सेवा करके उनके ऋण से मुक्त होऊ, स्वय पर नया ऋण न होने दू ओर नये ऋण से बचने के लिये ब्रह्मचर्य–पूर्ण जीवन व्यतीत करू। जिस कन्या को माता–पिता आदि के ऋण की उपेक्षा करने की शिक्षा मिली हो जिसका लालन–पालन उसके माता–पिता ने विषय–भोग के लिये ही किया हो ओर जिसने ब्रह्मचर्य की शिक्षा न पाई हो वही कन्या विवाह–विषयक चिन्ता करे, लेकिन जिसको ब्रह्मचर्य की शिक्षा मिली है जिसका लालन–पालन ब्रह्मचर्य का आदर्श सामने रखकर हुआ है वह कन्या कितनी भी वडी हो जावे उसे विवाह की चिन्ता या इच्छा नहीं हो सकती। हा यदि वह अपने ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति न दखगी तो स्पष्ट ही अपना विवाह करने का प्रस्ताव कर देगी चिन्ता न करेगी।

सखी—बहन वसुमति, तुमने माता से शिक्षा पाई है, लेकिन उस शिक्षा का मनन नहीं किया है न उस पर भली प्रकार विचार किया है। यह ठीक है कि महारानी ने तुम्हे ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी है लेकिन महारानी की शिक्षा का उद्देश्य यह नही हो सकता कि आप अपना विवाह ही न करे। ब्रह्मचर्य को अच्छा तो सभी कहते हैं, बुरा कोई नही कहता, परन्तु यह कथन स्वय के लिए नही होता। कोई दूसरी ब्रह्मचर्य का पालन करती हो तो उसकी प्रशसा करने के लिए ही ब्रह्मचर्य को अच्छा कहा जाता है, न कि स्वय अविवाहित रहने के लिए। आपकी बातो से यह भी जान पडता है कि आप स्त्री—धर्म से अनभिज्ञ हैं। कन्या पर माता—पिता आदि का जो ऋण होता है, उसे वह विवाह से पहले ही उनकी सेवा करके उतार देती है। विवाह—योग्य होने पर विवाह करके पति की सेवा करना कन्या का कर्त्तव्य हो जाता है। यदि ऐसा न हो ओर सभी कन्याए ब्रह्मचर्य पालती तथा माता की सेवा करती रहे विवाह न करे तब तो थोडे ही दिनो मे मानव—समाज की इतिश्री हो जावे। ससार मे कोई मनुष्य ही न रहे। इसके सिवा जिस कन्या का विवाह नही हुआ, जिसे पति की सेवा प्राप्त नहीं हुई उस कन्या का जीवन जगल मे खिलकर सूख जाने वाले पुष्प के समान व्यर्थ है। जो कन्या अपने विवाह की भी चिन्ता नही रखती मै तो उसे अपना लाभ—हानि न समझने वाले पशु के ही समान समझती हू। इसलिये इस समय चाहे तुम अपने विवाह की चिन्ता न भी कर रही हो तब भी मैं तो यही कहूगी कि तुमको भी ऐसी चिन्ता होनी तो चाहिए।

वसुमति—सखी तू ने नारी धर्म, मानव—समाज की रक्षा और कन्या के कर्त्तव्य आदि की दुहाई देकर जो कुछ कहा है, वह ठीक नहीं है। जो ब्रह्मचर्य केवल दूसरे के लिये अच्छा समझा जावे स्वय के लिए अच्छा न समझना मिथ्याचार है। वह अपने लिए पाल्य न समझा जावे यह कैसे उचित है? इस प्रकार के मिथ्याचार की शिक्षा न तो मेरी माता ने दी हे, न मैंने पाई है। मैने जो भी शिक्षा पाई है वह स्वय के आचरण के लिए और मेरी माता ने भी मुझे जो शिक्षा दी है वह भी इसीलिए है। वे कपटी लोग कोई ओर ही होगे जो हृदय मे तो कुछ रखे और बाहर कुछ दिखावे, दूसरे से कुछ कहे, स्वय कुछ करे दूसरे के लिए तो ब्रह्मचर्य की प्रशसा करे ओर स्वय पालन करने के लिए यह समझे कि अब्रह्मचर्य ही अच्छा है। ब्रह्मचर्य को अच्छा तो केवल दूसरे के लिए कहना है। बहन मैंने ऐसी शिक्षा नहीं पाई है न मुझसे इस प्रकार का पाखड ही होगा। इसी कारण तुम कहती हो कि ससार की [illegible] पालने लगे तो ससार ही शून्य हो जावे। पहले तो ससार की

सब कन्याओ का ब्रह्मचर्य पालन ही असम्भव हे ओर दूसरे इस अनादि ससार का अन्त होना भी असम्भव है। ससार मे अनेक कन्याए पति न मिलने के कारण अविवाहित रहती हें, अनेको ब्रह्मचर्य–पालन के उद्देश्य से विवाह नही करती और अनेको विवाह होते ही या कुछ दिन पश्चात् विधवा हो जाती हें, फिर भी ससार मे किसी प्रकार की कमी नही होती। ऐसी दशा मे ब्रह्मचर्य–पालन के लिए विवाह न करने पर ही ससार का अन्त क्यो हो जावेगा? इस पर भी यदि ब्रह्मचर्य के कारण ससार का अन्त हो जावे, तो इसमे बुराई की बात क्या होगी? यह तो ओर अच्छा होगा। तू ने कहा हे कि कन्याए विवाह से पूर्व ही माता–पिता की सेवा करके ऋण से मुक्त हो जाती हे, लेकिन तेरा यह कथन भूलभरा ओर शास्त्र–विरुद्ध हे। शास्त्र मे स्पष्ट कहा हे कि अनेक जन्म तक माता–पिता की सेवा करने पर भी, उनके महान् ऋण से सन्तान मुक्त नही हो सकती, तो कन्याए विवाह ओर युवावस्था से पहले ही माता–पिता के ऋण से मुक्त हो जावे, यह केसे सम्भव हे। उस समय तक तो वे स्वय ही सम्हाल करने के योग्य नहीं होती हैं, माता पिता को ही उनकी सेवा–सम्हाल करनी होती हे– फिर वे माता–पिता की सेवा करके ऋण–मुक्त होने मे समर्थ कैसे हो सकती हैं? सखी, यह अपना विषय–लालसा न रुकने पर इस प्रकार का बहाना बनाना है। मै इस प्रकार का बहाना करना ओर माता–पिता के प्रति कृतघ्न बनना कदापि ठीक नही समझती। अन्त मे तूने विवाह न करने वाली कन्या का जीवन वनपुष्प के समान बताकर विवाह की चिन्ता न होने के कारण उन्हे पशुवत् बताया हे जिसे तेरी उद्दण्डता के सिवा ओर कुछ नही कहा जा सकता। जब तेरे को दूसरा मार्ग नही मिला, तब तूने यह उल्टा मार्ग पकडा है ओर पशुओ की तरह प्रवृत्ति करने वाली को अच्छा तथा विवाह की चिन्ता न करने वाली को पशु के समान बताया हे। तूने यह भी नही सोचा, कि विवाह की चिन्ता तो पशु भी करते हे लेकिन ब्रह्मचर्य का पालन केवल मनुष्य ही कर सकते हे ओर कोई नही कर सकता। फिर में ब्रह्मचर्य पालने वाली ओर विवाह की चिता न करने वाली को पशु क समान केसे बताऊ? सखी ब्रह्मचर्य की महिमा अनन्त हे। ब्रह्मचर्य पालन वाल स्त्री–पुरुषो के चरण वन्दने के लिए दव भी लालायित रहत ह। एसा करन वाल का महत्व देवो से भी बढकर हे। क्याकि ब्रह्मचर्य का पालन दव भी नहीं कर सकते। इसलिए तू ब्रह्मचर्य को विवाह से कम मत बता। यह बात दूसरी ह कि ब्रह्मचर्य के न पलने पर विवाह किया जावे लकिन इस अपनी कमजोरी समझना चाहिए। यह तो मरी माता न भी कह दिया ह कि यदि ब्रह्मचर्य न

पले तो उस दशा मे विवाह करके ससुराल का ऋण कर लेना, जबरदस्ती ब्रह्मचर्य मत पालना लेकिन उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य को ही समझना विवाह को उत्कृष्ट मत समझना। इस प्रकार मेरी माता ने दोनो ही मार्ग बता दिये हे, परन्तु में विवाह नही करना चाहती ब्रह्मचर्य ही पालना चाहती हू। मै उन स्त्रियो की निन्दा भी नही करती जिन्होने ब्रह्मचर्य न पलने के कारण विवाह किया है। मे उन स्त्रियो का अपनी माता के ही समान आदर करती हू। मेरी माता ने भी स्वय पर ससुराल का ऋण किया है इसलिए ससुराल का ऋण करने वाली की निन्दा करना अपनी माता की निन्दा करना है।

सखी–हा तो आपका अभिपाय यह हे कि सब कन्याओ को ब्रह्मचर्य ही पालना चाहिए विवाह का ऋण समझ कर उससे बचना चाहिए।

वसुमति–हा जब तक हो सके तब तक तो ऐसा ही करना चाहिये, लेकिन मे सबको ब्रह्मचर्य पालने की सलाह नही देती किन्तु यह कहती हू कि जब तक हो सके तब तक तो ससुराल के ऋण से बचना चाहिए, लेकिन ब्रह्मचर्य न पलने पर ससुराल का ऋण न करके दुराचार भी न करना चाहिए। वेसे तो ऋण लेना बुरा है लेकिन जब बिना ऋण लिये काम न चलता हो, उस समय ऋण न लेना अनाचार का कारण होता है। इसलिए ऐसे समय पर तो ऋण लेना ही अच्छा है। इसी प्रकार जब तक ब्रह्मचर्य पले तब तक तो ससुराल का ऋण न करना ही अच्छा है लेकिन ब्रह्मचर्य–पालन की शक्ति न होने पर पति की सहायता लेकर स्वय ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति बढाना भी अच्छा है। परन्तु इस प्रकार की अशक्त बहनो को यह अभिमान न करना चाहिए कि हमने विवाह करके कोई बडा काम किया है अथवा जिनने विवाह नही किया है वे दु खी या मुझसे न्यून हें। क्योकि इच्छा होने पर भी जिनका विवाह नही हुआ हे वे चाहे दु खी हो लेकिन जो विवाह की भावना ही नही रखती वे दु खी नही किन्तु महान सुखी है। किसी भले आदकी को यदि कभी ऋण लेना पडता है तो वह अभिमान नहीं करता। इसी प्रकार विवाह का ऋण करने वाली बहन को भी अभिमान न करना चाहिए। जो बहन पूर्ण ब्रह्मचर्य पालती हुई अपना शरीर ईश्वर को सौप देती है उसकी तो जितनी भी प्रशसा की जावे कम ही है लेकिन जो अपने पर विवाह का ऋण करके भी पतिव्रता रहती है और धार्मिक जीवन बिताती है वह भी निन्दा योग्य नही हे किन्तु प्रशसा के योग्य ही है। निन्दा के योग्य तो वह है जो पूर्ण ब्रह्मचर्य भी नही पालती और अपने पर विवाह का ऋण भी नही करती किन्तु दुराचार करती है ऐसी स्त्रिया अवश्य ही धिक्कार के योग्य हें।

वसुमति की बाते सुनकर सखी कहने लगी–राजकुमारी आज तो आपने हमे अपूर्व बाते सुनाई। आपने हमे जो शिक्षा दी, उसके लिए हम आपका आभार मानती हैं ओर आपकी प्रशसा करती हें। जिनमे ऐसी बुद्धि हे, वे आप साधारण कन्या नही हें। इस प्रकार के विचार किसी साधारण कन्या मे उत्पन्न ही नही हो सकते। हम तो यही समझती थी कि आप विवाह–विषयक चिन्ता कर रही हें, लेकिन यह हमारा भ्रम था। आपकी बातो से हमको मालूम हो गया कि आपको इस प्रकार की चिन्ता हो ही नही सकती। आपके लिए मैंने जो कुछ कहा उसके लिए में क्षमा चाहती हू लेकिन साथ ही यह प्रश्न होता हे कि फिर आप किस चिन्ता मे बेठी थीं? आप ऐसी कन्या को कोई साधारण चिन्ता तो हो नही सकती।

वसुमति–तुम मेरे विचार करने को चिन्ता समझ रही हो, यह तुम्हारी भूल है। में किसी प्रकार की चिन्ता मे नही थी किन्तु एक गम्भीर बात का विचार कर रही थी।

सखी–वह बात क्या थी?

वसुमति–हा, यह बात मुझसे जान सकती हो। तुम लोग मेरी सहचरी हो, अत मैं कोई बात तुमसे छिपाना नहीं चाहती।

स्वप्न

अवस्था चार हैं जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। जिस समय इन्द्रिय ओर मन अपना–अपना काम करते रहते हैं, उसे जाग्रतावस्था कहते है। जब इन्द्रिया काम नहीं करती हैं–सो जाती हैं–लेकिन मन नही सोता है किन्तु कल्पना किया ही करता है–अपनी कल्पना–सृष्टि मे विचरण करता है, उस सृष्टि–निर्माण एव उसमे विचरण करने का नाम स्वप्न है और उस दशा का नाम स्वप्नावस्था है। जब इन्द्रियो के साथ ही मन भी सो जाता हे कल्पना नही करता ओर व्यवहार मे जिसे स्वप्न–रहित प्रगाढ निद्रा कहते है–उसका नाम सुषुप्ति अवस्था है। चोथी तुरीयावस्था है। महात्माओ की ध्यानावस्था का नाम तुरीयावस्था है। यहा स्वप्न के विषय मे ही कुछ कहना है यह अवस्था वर्णन तो प्रसगवश किया गया है।

इन्द्रियो के सोने पर स्वप्नावस्था मे मन अपने सस्कारो के अनुसार कल्पना करता रहता है। फिर वे सस्कार चाहे इस जन्म के हो, या पूर्वजन्म के ओर अनुभव मे आये हुए हो अथवा केवल सुने हुए हो। जो बात सस्कार मे है वही छोटे या बडे रूप से स्वप्न मे भी आती है। हा सस्कारो के साथ मन की विकृति भी अवश्य रहती है फिर भी जो बात सस्कार मे ही नही हे वह स्वप्न मे भी नही आती। अदृष्टवश कभी–कभी स्वप्न की कल्पना भविष्य मे सत्य भी होती जाती हे। या यह भी कहा जा सकता हे कि कभी–कभी भविष्य मे होने वाली घटना की सूचना स्वप्न मे मिल जाती है। ऐसा होने के कारण अदृष्ट – पूर्व के पुण्य–पाप का सस्कार ही कहा जा सकता हे, ओर कोई कारण नही कहा जा सकता।

वसुमति ने भी एक ऐसा स्वप्न देखा था जो आगे चलकर सत्य हुआ। वह उस स्वप्न के विषय मे ही विचार कर रही थी परन्तु उस विचार–धारा का अन्त उसकी सखियो ने विवाह विषयक चिन्ता लगाया। फिर जब

वसुमति ने अपनी सखियो को समझाया तब उसकी सखिया उससे यह पूछने लगी कि आप क्या विचार कर रही थीं? उनके इस प्रश्न के उत्तर मे वसुमति कहने लगी—सखी, आज रात को मेंने एक विचित्र स्वप्न देखा। मे उस स्वप्न के विषय मे ही विचार कर रही थी।

सखी—वह स्वप्न क्या था?

वसुमति—मेंने देखा कि सारी चम्पापुरी एक महान दु ख मे डूब रही है। पिता, तथा प्रजा पर एक घोर विपत्ति छाई हुई हे। उस समय मॅने चम्पापुरी पर छाई हुई विपत्ति को नष्ट करके दु ख—सागर से चम्पापुरी का उद्धार किया। यह स्वप्न देखकर में जाग उठी ओर तभी से बेठी हुई यह विचार कर रही हू, कि इस स्वप्न का क्या अर्थ लगाऊ? इसे अच्छा समझू या बुरा समझू। मैं जब दु ख—सागर मे चम्पापुरी के डूबने पर विचार करती हू, तब तो दु ख होता हे, लेकिन जब स्वय के द्वारा चम्पापुरी के उद्धार पर विचार करती हू, तब प्रसन्नता होती हे। मैंने स्वप्न मे पहले तो चम्पापुरी पर सकट देखा है, ओर फिर सकट से मुक्त भी देखा है। इसलिए मे यह सोच रही हू कि इस स्वप्न को कैसा समझू ओर इस स्वप्न के लिए प्रसन्नता मानू या दु ख करू।

एक सखि—मै स्वप्न का कारण समझ गई।

वसुमति—तू क्या समझी? मुझे भी बता।

सखी—बहन वसुमति आपकी अवस्था विवाह योग्य हो गई हे, फिर भी आपका विवाह नही हुआ हे ओर आप अकेली रहती हैं। इस अवस्था म साधारण कन्या का भी अकेली रहना बुरा हे तो आप तो राज—कन्या हे। जिस प्रकार के सुख मे आपका जीवन बीत रहा हे वेसे सुख मे रहने वाली कन्या साधारण कन्या की अपेक्षा शीघ्र ही युवती होती हे। इस कारण ऐसी कन्या का विवाह साधारण कन्या के विवाह से जल्दी होना आवश्यक हे ओर विवाह न होने पर उन्हे आपकी तरह के विचित्र स्वप्न दिखाई देते हैं। इस स्वप्न क विषय मे आप कोई चिन्ता मत करिये। हम महारानी से कहकर शीघ्र ही आपका विवाह करा देगी, जिसमे न तो आप अकेली रह न आपका स्वप्न ही हो ओर न आपके स्वप्न मे चम्पापुरी को दु खसागर म ही पडना पड।

वसुमति—सखी तुझ ऐसी के कारण ही स्त्रियो की बुद्धि की निन्दा होती हे। मैंने अभी ही यह समझाया हे कि मरको विवाह नही करना है फिर भी तू कहती हे कि महारानी से कहकर तुम्हारा विवाह जल्दी करा दगी। तर इस कथन से मे यह भी समझ गई कि अव तुम लोगा का कुछ आर कहना

तथा समझाना व्यर्थ है। इसलिये तुम माता से चाहे जो कहो, लेकिन मैंने स्वय के जो विचार प्रकट किये हैं, वे भी माता को अवश्य सुना देना।

जो कुछ हमारी इच्छा होगी, हम महारानी से वही कहेगी कहती हुई वसुमति की सखिया वसुमति के पास से चली गई। वसुमति भी वहा से उठकर नित्य के कार्य मे लगी। स्वप्न के विषय मे उसने यह निश्चय किया कि मेरे मन वचन ओर काय मे किसी प्रकार का विकार नही है, अत मुझे जो स्वप्न आया हे वह अवश्य ही सत्य होगा। निश्चय ही चम्पापुरी दु खसागर मे डूबेगी और मेरे हाथ से दु खसागर मे डूबी हुई चम्पापुरी का उद्धार होगा। यह स्वप्न सम्भवत मुझे आने वाले भार की सूचना देने के लिए ही आया है, अत मुझे सावधान होकर चम्पापुरी के उद्धार की शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। मै जहा तक समझ पाई हू, चम्पापुरी का उद्धार शस्त्रबल से नही किन्तु आत्मबल से होगा। शस्त्रबल से ही चम्पापुरी का उद्धार सम्भव होता तो यह भार मेरे पर न आता। क्योकि शस्त्रबल मे किंचित् भी अधिकार नही रखती और दूसरी ओर शस्त्रबल के बडे-बडे धुरन्धर विद्यमान हैं जो शस्त्रबल के सामने और किसी बल को कुछ नही समझते। शस्त्रबल के आधार पर होने वाले काम के विषय मे उनके होते मुझे चम्पापुरी के उद्धार का स्वप्न आवे यह सम्भव नही। मुझे स्वप्न आया है इससे यह निश्चय है कि चम्पापुरी का उद्धार शस्त्रबल से नही किन्तु आत्मबल से ही होगा। इसलिये अब मेरे को वही उपाय करना चाहिये जिसमे मेरा आध्यात्मिक बल बढे।

उधर सवेरा होने पर धारिणी यह विचारने लगी कि विवाह करने या ब्रह्मचर्य पालने के विषय मे वसुमति से पूछने का भार पति ने मुझ पर रखा है अत मै स्वय ही वसुमति के पास जाऊ अथवा उसे यहा बुलाऊ। इस प्रकार के विचार के साथ ही धारिणी को यह विचार भी होता था कि विवाह और ब्रह्मचर्य मे से वसुमति किसे पसन्द करेगी? यदि उस पर सामयिक प्रभाव होगा तब तो विवाह करना ही पसन्द करेगी लेकिन यदि मेरी शिक्षा मानेगी तो ब्रह्मचारिणी रहना ही पसन्द करेगी विवाह न करेगी। धारिणी इस प्रकार विचार कर रही थी इतने ही मे वसुमति की सखिया भी उसके पास पहुच गई। जब वे धारिणी का उचित अभिवादन कर चुकी तब धारिणी ने उनसे पूछा कि कुशल तो है?

सखी-आपके ओर महाराजा के पुण्य-प्रताप से सदा ही कुशल हे।

धारिणी-तुम्हारी सखी वसुमति तो प्रसन्न है?

सखी—राजकुमारी तो स्वय ही प्रसन्नता रूप हैं। हा, आज रात को उनने एक स्वप्न अवश्य देखा था।

धारिणी—क्या स्वप्न देखा था?

सखी—स्वप्न मे उनने सारी चम्पापुरी को घोर दु खसागर मे निमग्न ओर स्वय के द्वारा उसका उद्धार देखा।

धारिणी—यह स्वप्न तो अच्छा हे। पुत्री के द्वारा ऐसा महान् कार्य सम्पन्न हो, इससे अधिक प्रसन्नता की बात क्या होगी?

सखी—लेकिन साथ ही स्वप्न मे चम्पापुरी को दु खसागर मे डूबती हुई को भी तो देखा।

धारिणी—चम्पापुरी का भविष्य जैसा होगा वैसा कार्य तो होगा ही लेकिन साथ ही उस बुरे समय मे हमारे द्वारा क्या कार्य होगा यह भी देखना चाहिए। किसी अच्छे कार्य का निमित्त बनना क्या कम प्रसन्नता की बात हे? दु खसागर मे डूबी हुई चम्पापुरी का वसुमति उद्धार करेगी यह जानकर मेरे को बहुत प्रसन्नता हुई। मेरी भावना भी यही है कि वसुमति के द्वारा कोई विशेष कार्य हो। वसुमति ने जो स्वप्न देखा हे उससे यह विश्वास होता हे कि मानव—समाज के सन्मुख वसुमति कोई उच्च आदर्श रखेगी।

सखी—लेकिन महारानीजी स्वप्न की बात सत्य तो होती नही हे।

धारिणी—जिनका मन, वचन और शरीर प्रपचो मे उलझा रहता हे ओर अपवित्र होता है, उनके तो अधिकाश स्वप्न मिथ्या ही होते हे लेकिन जिनका मन, वचन, काया पवित्र हे उनके अधिकाश स्वप्न सत्य ही होते हैं। कोई ही स्वप्न चाहे मिथ्या निकले वसुमति मन वचन ओर काय से पवित्र हे इसलिये उसको जो स्वप्न आया हे, वह कदापि मिथ्या नही हो सकता। मेरा विश्वास हे कि चम्पापुरी पर अवश्य ही आपत्ति आवेगी, तथा वसुमति द्वारा उस आपत्ति से चम्पापुरी का उद्धार होगा।

सखी—महारानीजी, क्षमा करिये मैं तो राजकुमारी के स्वप्न का दूसरा ही कारण समझती हू।

धारिणी—क्या कारण समझती हो?

सखी—राजकुमारी पूर्ण युवती हो गई हे फिर भी अब तक व कुमारी ही हैं, इसी कारण उन्हे इस प्रकार का स्वप्न हुआ हे। इस आयु तक भी विवाह न होने पर शारीरिक उष्णता के कारण कन्याओ का इस प्रकार के स्वप्न आया ही करते हे। इसलिए कन्याओ का अधिक आयु तक कुमारी रहना निषिद्ध बताया गया हे।

धारिणी—प्रत्येक व्यक्ति बात का अर्थ अपनी भावना के अनुसार लगाता है। यह स्वाभाविक ही है, आश्चर्य की बात नही है। तुमने अपनी भावना के अनुसार वसुमति के स्वप्न का अर्थ लगाया है, लेकिन यह बात तुमने वसुमति से क्यो नही कही?

सखी—कही थी।

धारिणी—फिर वसुमति ने क्या उत्तर दिया?

सखी—उनने तो कहा कि मे विवाह ही न करूगी, किन्तु ब्रह्मचर्य पालती हुई माता—पिता की सेवा करके, उनके ऋण से मुक्त होऊगी। अपने पर ससुराल का ऋण न करूगी।

वसुमति की सखी द्वारा वसुमति का उत्तर सुनकर धारिणी बहुत प्रसन्न हुई। वह सोचने लगी कि—मे वसुमति से जिस बात की आशा करती थी वह आशा पूर्ण होने का समाचार तो इन दासियो से मिल ही चुका है। मेरी भावना है कि वसुमति ब्रह्मचर्य—पालन करे और मानव—समाज के सामने, एक नवीन आदर्श रखे। स्वप्न और इन सखियो की बातो से मेरी भावना पूर्ण होती जान पडती है। वसुमति के हृदय के भाव तो इन दासियो द्वारा मेरे को मालूम हो ही चुके हैं। फिर भी मुझे वसुमति से मिलकर प्रत्यक्ष मे उसके विचार जान लेना चाहये और तभी पति से कुछ कहना चाहिये।

इस प्रकार निश्चय करके धारिणी ने वसुमति की सखियो से कहा कि—जब वसुमति विवाह करना ही नही चाहती, तब उसके स्वप्न का कारण विवाह न होना समझना कैसे उचित है? अच्छा तुम लोग जाओ अभी थोडी देर मे मै वसुमति से मिलूगी और फिर जैसा ठीक होगा वैसा करूगी।

वसुमति की सखिया चली गई। सखियो को विदा करके धारिणी, वसुमति के पास आई। उस समय वसुमति वीणा बजा कर गा रही थी। धारिणी को देखकर उसने वीणा रख दी और सामने जाकर धारिणी को प्रणाम करके उससे आशीर्वाद प्राप्त किया। फिर उसने सम्मान पूर्वक लाकर आसन पर बैठाया और हाथ जोडकर उससे कहने लगी कि—आज मेरा अहो भाग्य है कि जो आपने यहा पधार कर मुझे दर्शन दिया।

धारिणी—अभी तेरी सखियो से ज्ञात हुआ कि आज रात को तूने एक स्वप्न देखा है। उस स्वप्न के विषय मे तेरी कुशल पूछने के साथ ही एक आवश्यक विषय मे तेरी सम्मति जानने के लिए मै आई हू।

वसुमति—हा माता आज रात को मैंने स्वप्न मे देखा कि चम्पापुरी पर सागर मे डूब रही है और मैंने चम्पापुरी का उद्धार किया। यह स्वप्न

देखकर में असमजस मे पड गई कि इस स्वप्न को केसा समझू? अच्छा समझू या बुरा?

धारिणी–में तो, इस स्वप्न को अच्छा समझती हू ओर यह मानती हू कि इस स्वप्न के अनुसार मेरी भावना पूर्ण होगी। यद्यपि इस स्वप्न से चम्पापुरी को अवश्य ही दु ख मे पडना होगा लेकिन साथ ही तेरे हाथ से इसका उद्धार होगा, यह प्रसन्नता की बात हे। मेरे हृदय मे यह भावना प्रारम्भ से ही हे कि तेरे द्वारा कोई महान् कार्य हो। आज रात को महाराज से मेरी इस विषय पर बातचीत भी हुई थी कि तेरे को किस प्रकार सुखी बनाया जावे। महाराज की इच्छा है कि अच्छा घर–वर देख कर तेरा विवाह कर दिया जावे। इस सबध मे तेरी इच्छा जानने के लिए महाराज ने मुझे आज्ञा दी हे। महाराज की आज्ञा का पालन करने के लिए में तेरे पास आना ही चाहती थी इतने ही मे तेरी सखियो ने मुझे तेरे स्वप्न का समाचार सुनाया जिसे सुनकर मुझे प्रसन्नता हुई, ओर महाराज की आज्ञानुसार तेरी इच्छा जानने के साथ ही स्वप्न के विषय मे तेरे से यह कहने आई हू कि स्वप्नानुसार भविष्य मे तेरे हाथ से कोई श्रेष्ठ कार्य होना है अत इसके लिए वल प्राप्त कर। अच्छा तो अब यह बता कि महाराज ने जो कुछ जानना चाहा हे उसके विषय मे तू क्या कहती है?

वसुमति–पूजनीय माताजी भविष्य मे यदि मेरे हाथ से कोई श्रेष्ठ कार्य हुआ तो उसका श्रेय आपही को हो सकता हे। क्योकि मेरे मे जो भी शक्ति होगी मे जो भी कार्य कर सकूगी वह आप ही के प्रताप से। लेकिन आपका यह प्रश्न सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा हे जो प्रश्न आपने पिताजी की आज्ञानुसार मेरे से किया हे। एक ओर तो आप मेरे द्वारा कोई विशेप कार्य होने की इच्छा रखे ओर दूसरी ओर मुझे विवाह–बन्धन म वाधने की इच्छा करे तो ये दोनो ही वाते केसे हो सकती हे? ये दानो वात तो परस्पर विराध रखती हें। माताजी आपने मुझे ब्रह्मचर्य पालन की शिक्षा देकर वताया ह कि मनुष्य का कर्त्तव्य ब्रह्मचर्य पालना ही हें विवाह ता तभी किया जाता ह जव ब्रह्मचर्य पालने की क्षमता न हो। यदि आपने मर म इस प्रकार की क्षमता न देखी हो तव तो आपको मेर विवाह क विपय म विचार करना ठीक ह अन्यथा ऐसा विचार न होना चाहिए। क्या आपका यह ज्ञात हुआ ह कि मर म ब्रह्मचर्य पालने की शक्ति नही है इसलिए मरा विवाह कर दना आवश्यक ह?

धारिणी–नही।

वसुमति–फिर पिताजी को मेरे विवाह का विचार क्यो हुआ? ओर यदि हुआ भी था तो आपने उसी समय समाधान क्यो नही कर दिया?

धारिणी–पुत्री तेरा यह कथन ठीक है, लेकिन माता–पिता को अपने कर्त्तव्य का पालन करना भी आवश्यक हे। हमारा कर्त्तव्य है कि हम जैसी तेरी इच्छा देखे वैसा ही करे। बलात् न तो विवाह ही कर सकते हे, न ब्रह्मचर्य ही पलवा सकते हैं। यदि तू कहे कि फिर मेरी इच्छा जानने के लिए आपने विवाह का ही विचार क्यो किया, ब्रह्मचर्य का विचार क्यो नही किया, तो इसका भी कारण सुन। ब्रह्मचर्य का पालन करना उत्तम है, फिर भी सरल नही है किन्तु खड्ग–धार पर चलने के समान कठिन है। इसकी उत्तमता एव शक्ति को देखकर अनेक लोग ब्रह्मचर्य पालने की प्रतिज्ञा तो कर लेते हैं, लेकिन फिर इसकी कठिनाई के कारण प्रतिज्ञा–भ्रष्ट हो जाते हैं ओर तब किसी भी ओर के नही रहते। इसके सिवा लोगो की दृष्टि मे ब्रह्मचर्य पालना कठिन कार्य है ओर विवाह करना सरल कार्य है। इसी प्रकार लोग ब्रह्मचर्य मे दु ख तथा विवाह मे सुख मानते हैं। इन्ही कारणो से ब्रह्मचर्य का विचार न करके विवाह का विचार किया परन्तु तू विवाह कर या ब्रह्मचर्य पाल, यह तेरी इच्छा पर निर्भर है। हमारा अनुरोध न तो विवाह करने का ही है, न ब्रह्मचर्य पालने का ही। तू जो भी चाहे उत्तर दे सकती है।

वसुमति–यह तो ठीक हे, लेकिन यदि मैं अभी इन दोनो मे से किसी भी एक बात का निश्चय न करू तो क्या कोई हानि होगी?

धारिणी–कोई हानि नही है।

वसुमति–फिर अभी मैं किसी भी प्रतिज्ञा मे क्यो बध जाऊ। कुछ दिन ओर अनुभव करके दो मे से किसी एक बात का निर्णय क्यो न करूं? मैं उत्तम तो ब्रह्मचर्य को ही समझती हू, परन्तु अपनी शक्ति का पूरी तरह विश्वास करने के पश्चात ही मे आपसे स्पष्टतया यह कह सकती हू कि विवाह करूगी या ब्रह्मचर्य पालूगी।

धारिणी–ठीक है ऐसा ही कर। मैं भी तेरे लिए यही शुभ कामना करती हू कि तू पूर्ण ब्रह्मचर्य पालने मे समर्थ हो। मै तेरे द्वारा भविष्य मे कोई श्रेष्ठ कार्य होने की जो भावना करती हू, उस भावना की सफलता भी ब्रह्मचर्य पर ही निर्भर है। अच्छा अब मै जाती हू और महाराजा से भी यह कहे देती

हू कि वसुमति की इच्छा तो ब्रह्मचर्य पालने की ही है, फिर भी वह अभी किसी बात का निश्चय नहीं करती। यह कहकर धारिणी वहाँ से चल दी। जाती हुई धारिणी को वसुमति ने प्रणाम किया। वसुमति के विचार सुनने से धारिणी को बहुत प्रसन्नता थी।

रात के समय महाराज दधिवाहन महारानी धारिणी के महल मे आये। महारानी धारिणी ने, महाराज दधिवाहन को वसुमति के विचार एव स्वप्न का समाचार सुनाया, जिसे सुनकर दधिवाहन को प्रसन्नता भी हुई ओर चिन्ता भी। वसुमति के विवाह के विषय मे महाराजा दधिवाहन ने यही कहा कि जब वह अभी स्वय का विवाह नही करना चाहती तब मेरा भी कोई आग्रह नही हे। यदि वह ब्रह्मचर्य पाले तो यह बहुत प्रसन्नता की बात है।

इसी प्रकार वसुमति के विवाह का विचार अनिश्चित काल के लिए स्थगित हो गया। इसी बीच मे वसुमति के स्वप्न को सत्य करने वाली एक घटना घट गई।

चम्पा पर चढ़ाई

नरक का प्रधान कारण लोभ है। मनुष्य लोभवश जितने–जितने पाप करता है उतने पाप ओर किसी कारण से नही करता। फिर वह लोभ, धन, जन राज्य–वेभव आदि किसी भी बात का क्यो न हो, लेकिन पाप का कारण है लोभ ही। लोभ होने पर ऐसा कोई पाप नहीं है जिनके करने से मनुष्य हिचकिचावे। लोभ के सम्मुख न्याय सत्य ओर ओचित्य को किंचित् भी स्थान नही मिलता किन्तु लोभ के कारण अन्याय और अत्याचार का ताण्डव तक होने लगता है। निरपराधियो को कष्ट मे डालने उनका वध करने, उनके रक्त की सरिता बहाने ओर उनका सर्वनाश करने का कारण लोभ, ही है। लोभ के कारण अकृत्य कार्य भी कृत्य माना जाता है ओर उसके करने मे प्रसन्नता अनुभव की जाती है। उस समय मनुष्य मे से मनुष्यता निकल जाती है। वह मनुष्य रूप मे पिशाच ही बन जाता हे। फिर उसके लिए माता, पिता, भ्राता पत्नी आदि प्रत्येक आत्मीय का सहार करना उनकी हानि करना, सरल बात है तो दूसरे के सहार और दूसरे की हानि के विषय मे तो कहना ही क्या है? लोभी का हृदय दु खितो के हाहाकार ओर पीडितो के करुण क्रन्दन से किंचित भी द्रवित नही होता किन्तु ओर प्रसन्न होता है। यद्यपि ऐसी बातें मानव–स्वभाव से बाहर की है लेकिन लोभी मनुष्य मे से मानव–स्वभाव तो पहले ही निकल जाता है। उसमे भयकर बर्बरता आ जाती है और उस बर्बरता के कारण उसे किसी भी कार्य के करने मे सकोच नही होता, लोभ मे भी राजाओ का लोभ तो प्रसिद्ध ही है। उसके लिए तो नीतिकारो ने यह विधान ही कर दिया है कि –

असन्तुष्टा द्विजा नष्टा, सन्तुष्टाश्च महीभृत ।

अर्थात–असन्तोषी ब्राह्मण नष्ट हो जाता है ओर सन्तोष से राजा नष्ट हो जाता है।

राजाओ को तो इस प्रकार शिक्षा दी जाती हे कि राजा को कभी सन्तोष करना ही न चाहिए। लेकिन राजाओ के असन्तोष से राजाओ मे लोभ होने से प्रजा को किस प्रकार कष्ट भोगने पडते हैं इसके अनेको उदाहरण हैं। नादिरशाही गदर, चगेजशाही लूट राजाओ के लोभ का ही परिणाम था। लोभ के कारण ही कस ओर ओरगजेब ने अपने-अपने बाप को केद किया था। कोरवो ने अपने भाई पाण्डवो से युद्ध किया था ओर अकबर तथा उलाउद्दीन ने चितौड मे साके करवाये थे। चम्पापुरी के लिए भी ऐसा ही हुआ। एक लोभी व्यक्ति के कारण चम्पापुरी की भी वही दशा हुई जिसके कारण नादिरशाही और चगेजशाही प्रसिद्ध हे।

चम्पापुरी के राज्य की सीमा कोशाम्बी❀ के राज्य से मिलती ही थी। चम्पापुरी की तरह कौशाम्बी भी धन-धान्य-समृद्धि तथा व्यापार के लिए प्रसिद्ध नगरी थी। कोशाम्बी के राजा का नाम सतानिक था जो चम्पा के राजा दधिवाहन का सम्बन्धी था। दधिवाहन की रानी पद्मावती ओर सतानिक की रानी मृगावती एक ही पिता की पुत्री थी। इस कारण दधिवाहन ओर सतानिक आपस मे साढू-साढू थे। यद्यपि सतानिक और दधिवाहन साढू-साढू अवश्य थे लेकिन दोनो के स्वभाव एव विचारो मे बहुत अन्तर था। दधिवाहन सन्तोषी शातिप्रिय तथा धार्मिक स्वभाव का बन गया था। उसका विचार सदा यह रहता था कि किसी के द्वारा न तो मेरी प्रजा सताई जावे ओर न में किसी दूसरे की प्रजा को सताऊ। उसकी राज्य-लिप्सा बढी हुई न थी। वह स्वय को प्रजा का सबसे बडा सेवक मानता था, प्रजा को स्वय के सुख का साधन नहीं समझता था। उसमे मिथ्याभिमान भी नही था। किसी को कष्ट मे डालकर बडाई प्राप्त करने या वेभव बढाने का विचार उसे स्वप्न मे भी नहीं होता था। वह जानता था कि नाशवान् धन-सम्पति के लिए किसी को कष्ट देना महापाप हे ओर बडाई प्राप्त करने का साधन दूसरे को सुख देना हे दूसरे का दु ख देने से बडाई नही हो सकती, न ऐसा करने वाला व्यक्ति यशस्वी ही बन सकता हे।

दधिवाहन तो उक्त विचार ओर स्वभाव का व्यक्ति था लेकिन सतानिक का स्वभाव ओर उसके विचार दधिवाहन के स्वभाव ओर विचार से भिन्न थे। सतानिक की राज्यलिप्सा बढी हुई थी। वह दिन-रात यही सोचा करता था कि मेरा राज्य किस उपाय स वढे। वह राज्य-वृद्धि द्वारा यशस्वी

❀यह कोशाम्बी-वह कच्छदश की कोशाम्बी नहीं है-दूसरी है।

बनने का इच्छुक भी रहता था। उसको धर्म–अधर्म या न्याय–अन्याय की अपेक्षा नही रहती थी, उसको तो केवल वेभव बढाने ओर राज्यसुख भोगने की ही इच्छा रहती थी। वह स्वय को प्रजा का सेवक नही मानता था किन्तु प्रजा का शासक ओर उसका स्वामी मानता था। वह समझता था कि राज्य ओर प्रजा तो राजा को सुख देने के लिए हैं, ओर राजा इन सबो के द्वारा सुख भोगने के लिए है। वह मिथ्याभिमानी भी था। अपने मिथ्याभिमान की पूर्ति के लिए वह दूसरे के सुख–दु ख की किचित् भी चिता नही करता था। वह यश–बडाई का मार्ग केवल राज्य–वृद्धि ओर जीवन को सुखी बनाने का मार्ग केवल भोगोपभोग ही मानता था। यद्यपि सतानिक की रानी मृगावती प्रात – स्मरणीया सोलह सतियो मे से एक थी और वह सतानिक को सदा समझाया करती थी कि यह राज्य–वेभव आपके साथ परलोक मे न जावेगा इसलिए आप इसके ममत्व मे पडकर न्याय–धर्म को मत भूलिये, किसी को कष्ट मे मत डालिये किन्तु न्याय ओर धर्म को आगे रखकर इस राज्य को भार रूप मान इसका काम करिये। इस प्रकार मृगावती सतानिक को बार–बार समझाया करती थी लेकिन मदान्ध सतानिक को मृगावती की ये बाते कब अच्छी लग सकती थी। वह मृगावती को उत्तर दिया करता कि यदि स्त्रियो की बाते पुरुष माने तो थोडे ही दिनो मे पुरुषो का सर्वनाश ही हो जावे। धर्म ओर न्याय का बधन गरीबो के लिए है। मुझसा समर्थ राजा धर्म और न्याय के बन्धन मे पडकर राज्य–वृद्धि की कामना को निर्मूल नही कर सकता। राज्य पाने का लोभ नित नये तथा उत्तमोत्तम सुख भोगना, अधिक से अधिक लोगो को अपनी अधीनता मे लाना ओर अधिक से अधिक कोष एव भूमि को अपने अधिकार मे करना ही है। जो राजा अपने बाहुबल से राज्य नही बढाता किन्तु पैतृक राज्य पर ही सतोष करता है, राजवश मे उसका जन्म होने पर भी वह वीर नही है किन्तु कायर है। इसी प्रकार यदि राजा होकर भी कोई व्यक्ति सुख–भोग नही करता तो उसका भी राज्य पाना न पाना समान ही हे। मैं कायर नही हू जो न्याय तथा धर्म को लेकर बैठा रहू और स्वय की वीरता एव स्वय के बाहुबल का उपयोग न करू।

इस प्रकार सतानिक ओर दधिवाहन दोनो एक दूसरे से विरुद्ध स्वभाव एव विचार के थे। सतानिक की दृष्टि मे भरीपूरी चम्पापुरी सदा खटका करती थी। न्याय–नीति पूर्वक राज्य करने के कारण दधिवाहन की जो प्रशसा थी वह उसे असह्य हो उठी थी। दधिवाहन की सुखसमृद्ध प्रजा स्वय की अधीनता मे कैसे आवे और चपा के धन से कौशाम्बी का कोष कैसे

भरा जावे, इस बात की उसे सदा चिन्ता रहा करती थी। वह चाहता था कि किसी भी तरह चम्पापुरी पर अपना अधिकार हो जावे वहा का धन कोशम्बी के कोष मे आ जावे, चम्पापुरी का राज्य कोशम्बी के राज्य मे मिल जावे तथा दधिवाहन की जो बडाई हे वह मटियामेट हो जावे। इस इच्छा से प्रेरित होकर सतानिक अपने मन्त्रियो से गुप्त मन्त्रणा भी किया करता। वह कहा करता कि दधिवाहन धर्म ढोगी हे, उसके पास सेना भी थोडी हे इसलिए उस पर विजय प्राप्त करना कुछ भी कठिन नही हे। मुझे तभी प्रसन्नता हो सकती हे जब चपा पर मेरा झण्डा लहराये।

सतानिक के मन्त्रिगण सतानिक की इस इच्छा को प्रोत्साहित करते रहते थे। वे भी कहते रहते कि हा, चपा को जीतना कुछ भी कठिन नहीं हे आप जब भी चाहे बात ही बात मे चपा को जीत सकते हैं। मन्त्रियो को सहमत देखकर सतानिक चपा पर चढाई करने का बहाना सोचने लगा। वह भीतर ही भीतर सेनिक–तैयारी बढाता रहता ओर चपा पर किस बहाने से चढाई की जावे यह सोचा करता। वह विचारता था कि बिना कोई कारण बताये चपा पर चढाई करने से लोगो मे मेरी निन्दा भी होगी लोकमत मेरे प्रतिकूल भी हो जायेगा ओर सभव है कि उस दशा मे मेरी सेना एव प्रजा भी विरुद्ध हो जावे। इसलिए ऐसा बहाना ढूढना चाहिए जिसे आगे रखकर चम्पा पर चढाई की जा सके ओर लोगो मे मेरे लिए किसी प्रकार का अपवाद भी न हो।

अपनी बुरी कामना को पूर्ण करने के लिए दूसरे पर किसी प्रकार का अपवाद लगाना ओर दूसरे को अपराधी बताकर इच्छित वस्तु पर अधिकार कर लेना, या दूसरे की हानि कर देना फिर भी स्वय निर्दोष बने रहना इसी का नाम राजनीति हे। राजा लोग ऐसी नीति का बहुत अधिक सहारा लेते हे। यदि राजनीति को झूठ कपट आदि कहा जावे तो कोई हर्ज न होगा।

चम्पापुरी का राज्य हडपने के लिए सतानिक ओर उसके मन्त्री भी राजनेतिक चाले सोचने लगे। उधर दधिवाहन के हृदय मे किसी स युद्ध करन ओर किसी का राज्य जीतने की किचित भी भावना न थी न किसी राजा की ओर से उसे यह भय ही था कि कोई राजा मेरे पर चढाई करन आयगा। उसन चम्पा के आस पास के सभी राज्यो से मित्रता पूर्ण सन्धि कर रखी थी इसलिये वह शत्रु की ओर से निश्चिन्त था। इन्ही कारणा से उसन अपन यह। राज्य का आतरिक प्रबन्ध हो सके इतनी ही सेना रख छाडी थी। किसी पर चढाई करने या किसी की चढाई रोकने के लिए उसक पास सना न थी। राजा लोग एक दूसरे के यहा का यह हाल तो गुप्त रूप स जानत ही रहत हैं कि

किसके पास कितनी सेना है, युद्ध समय मे काम आने वाली कौन–कौनसी सामग्री है तथा कितना कोष है और कैसी स्थिति है? गुप्तचरो द्वारा दधिवाहन की सेना ओर उसके कोष आदि का सब समाचार सतानिक को भी ज्ञात था। इस समाचार के आधार पर ही सतानिक अपने मन्त्रियो से कहा करता कि धर्म–द्रोगी दधिवाहन कमजोर है, लडाई से डरता है और उसके पास केवल इतनी सेना तथा इतना कोष है। उसकी मुट्ठी भर सेना को जीतना कोई कठिन बात नही हे। उसे जीतने इतनी सेना तो मेरे पास पहले ही थी, अब तो मैंने इतनी सेना और बढा ली है, इसलिये यदि कोई दूसरा राजा दधिवाहन की सहायता को भी आ जायेगा तो उसे भी पराजित ही होना पडेगा। पहले तो सधि के अनुसार कोई राजा मेरे विरुद्ध दधिवाहन का साथ दे ही नही सकता और कदाचित् किसी ने साथ दिया भी तो उसको भी मुह की ही खानी पडेगी। इसलिए चम्पा को जीतना तो कुछ कठिन नही है लेकिन चम्पा पर चढाई करने के लिए कोई बहाना अवश्य होना चाहिए।

जहा दो राज्य की सीमा मिलती हे वहा विवादास्पद कोई न कोई बात हुआ ही करती हे। यदि विवादास्पद बात को निपटाया जावे तब तो वह सरलता से ही निपट जाती है और यदि उसे ही विशाल रूप दिया जावे तो वह भयकर युद्ध का कारण भी बन जाती है। राजा सतानिक ने दधिवाहन से युद्ध करने के लिए ऐसे ही किसी कारण का आश्रय लिया। उसने युद्ध के लिए कौनसा बहाना निकाला यह तो वर्णन नहीं मिलता लेकिन उसने किसी नगण्य कारण को आगे रखकर चम्पा पर चढाई कर दी। दधिवाहन को यह सन्देह भी न था कि सतानिक कभी मुझ पर चढाई कर देगा, न उसने सतानिक की सैनिक तेयारी की ओर ही ध्यान दिया था। उसे तो सतानिक की चढाई का हाल तब मालूम हुआ जब सतानिक की सेना युद्ध की घोषणा करती हुई चम्पापुरी के राज्य मे प्रवेश कर आई।

रणभेरी बजाती हुई सतानिक की सेना चम्पापुरी के राज्य मे घुस आई ओर प्रजा को सताने लगी। सीमा पर नियत दधिवाहन के सैनिक सतानिक की सेना को न रोक सके। वे दोडकर दधिवाहन के पास आये और उसे सतानिक की चढाई का समाचार सुनाया। साथ ही सतानिक की सेना द्वारा सताई गई प्रजा भी दधिवाहन के पास पुकारने आई। सतानिक की चढाई का समाचार सुनकर दधिवाहन आश्चर्य–चकित रह गया। वह सोचने [illegible] कि सतानिक की और मेरी मित्रतापूर्ण सन्धि हे फिर भी उसने चढाई [illegible] उसकी इस अनायास चढाई का कोई कारण भी दिखाई नही देता।

मेरी ओर से ऐसी कोई बात भी नही हुई है, जिसके कारण सतानिक को इस प्रकार अनायास चढाई करनी पडे ओर सन्धि–भग करनी पडे। सतानिक की चढाई का कुछ कारण समझ मे नही आता।

राजा दधिवाहन ने उसी समय अपने मन्त्रियो की आवश्यक सभा बुलाई। दधिवाहन की आज्ञा पाकर मत्रिगण सभा मे उपस्थित हुए। सभा जुड जाने पर दधिवाहन ने मत्रियो को सतानिक की चढाई का वृत्तान्त सुनाकर कहा कि राजा सतानिक मेरा सबधी हे, उसके ओर मेरे बीच मित्रता पूर्ण सधि भी है, ऐसा होते हुए भी सतानिक ने चढाई की ओर प्रजा को सता रहा हे। इसका कारण कुछ समझ मे नही आता। इसलिए यह विचारना चाहिये कि सतानिक ने चढाई क्यो की ओर हमको क्या करना चाहिए?

दधिवाहन का कथन समाप्त होने पर परराष्ट्र सचिव कहने लगा–महाराज कौशाम्बी मे नियुक्त अपने यहा के राजदूत द्वारा मुझे इस बात की सूचना बहुत पहले ही मिल चुकी थी कि राजा सतानिक अपनी सेना बढा रहा हे और चम्पापुरी पर चढाई करने वाला है। मे इस समाचार से सेना–सचिव को भी सूचित करता रहा हू।

सेना–सचिव–सतानिक को अपनी सेना पर गर्व हे। वह अपनी सेना के भरोसे चम्पापुरी पर अपना झडा फहराने की इच्छा रखता है लेकिन उसकी यह दुराशा, कदापि पूर्ण नहीं हा सकती। उसकी सेना का मुह तोडने के लिए हमारे पास सेना तेयार हे। हमारी सेना किसी भी समय कम न हो, इसके लिए आज एक यह आज्ञा और जारी कर दी जानी चाहिए, कि आवश्यकता पडने पर प्रजा मे से प्रत्येक व्यक्ति को सेना मे भर्ती होना होगा।

प्रधान सचिव–सतानिक किसी कारण विशेष से ही चढाई करने नहीं आया है। उसकी बहुत दिनो से चल रही युद्ध की तेयारी इस बात का स्पष्ट बताती हे कि वह निष्कारण ही चम्पापुरी पर चढाई करने के लिए बहुत दिनो से आतुर था ओर अन्त मे अब उसने चढाई कर ही दी। इस समय ऐसा एक भी कारण नही था जिससे सधि–भग करके इस प्रकार अनायास ही चढाई कर दी जावे। सतानिक किसी कारण से ही चढाई करक नही आया हे वह तो चम्पापुरी को अपने राज्य मे मिलाने की दुर्भावना स प्रेरित होकर ही आया हे। जिसमे इस प्रकार की दुर्भावना हे उसक लिए युद्ध का कोई कारण होना आवश्यक नही हे। ऐसा व्यक्ति तो साधारण बात को भी युद्ध का कारण बना या बता सकता हे। यदि उसमे दुर्भावना न होती किन्तु उसे किसी कारण विशेष से ही चढाई करनी पडी होती तब तो वह चढाई करने से पहले ही [illegible]

उस कारण से सूचित करता हमारे पास युद्ध–घोषणा की खबर भेजता और यदि उसने चढाई कर भी दी होती, तब भी वह हमारी सीमा से बाहर ठहर कर हमारे पास अपना दूत भेजता तथा जब हम युद्ध के कारण का समाधान न कर सकते तभी वह हमारे राज्य मे घुसता। परन्तु उसने तो सब कुछ इससे विपरीत ही किया है। उसने युद्ध से पहले शाति के लिए कोई प्रयत्न नही किया न किसी को पयत्न करने का अवसर ही दिया। वह तो हमारे राज्य मे इस पकार घुस आया जेसे इस राज्य का कोई स्वामी ही नही है, या उसकी दृष्टि मे हम कमजोर हें इसीसे उसने हमारी पजा को सताकर हमे युद्ध के लिए चुनोती दी हे। चम्पापुरी पर चढाई करने के लिए सतानिक बहुत दिनो से छोटी–छोटी बातो को बडा रूप दे रहा था और मैं उसकी ऐसी बाते महाराजा को बताकर उसकी दुर्भावना की ओर महाराजा का ध्यान खीचता रहता था परन्तु महाराजा के हृदय मे सतानिक के प्रति किसी प्रकार का सदेह तक नही हुआ। महाराजा उसके कार्यो की उपेक्षा ही करते रहे और मुझे यही आज्ञा देते रहे कि शाति रक्षा ओर विग्रह से बचने के लिए प्रत्येक मामले को निपटा लिया जावे। महाराजा की इस आज्ञा का पालन करने के लिए मैंने सतानिक द्वारा उठाई गई किसी भी बात को ज्यादा नही बढने दी किन्तु परराष्ट् सचिव की सम्मति से सभी बाते निपटा दी लेकिन हमारी ओर से शाति के लिए जो नम्रता धारण की गई उससे सतानिक का दु साहस बढता ही गया ओर अन्त मे उसने हमको कमजोर समझ कर हमारा राज्य हडपने के लिए चढाई कर दी। जो हुआ सो हुआ अब तो मुझे यही ठीक जान पडता है कि उसकी सेना का मुकाबला किया जावे और उसकी युद्ध–कामना को सदा के लिए दबा दिया जावे।

युद्ध सचिव–आपके कथन का मैं भी समर्थन करता हू। जब सतानिक बिना सूचना या शाति के प्रयत्न के ही अपने राज्य मे घुस आया है तब उससे युद्ध न करना किन्तु उसे समझाने का प्रयत्न करना व्यर्थ होगा। इसलिए हमारे वास्ते युद्ध करना ही अच्छा हो सकता है दूसरा कोई मार्ग ठीक नही है।

मन्त्रियो की सम्मति सुनकर दधिवाहन कहने लगे–मन्त्रीगण नीति के अनुसार तो हमको सतानिक से युद्ध करने मे किचित् भी विचार न होना [illegible] जब वह स्वय ही चढ आया हे तब उसके साथ युद्ध करना ही चाहिए [illegible] केवल नीति के सहारे रहने से काम नही चलता। सतानिक लोभ के [illegible] बढता है इसीसे एकदम से चढाई कर आया है। लोभी मनुष्य

औचित्य, अनौचित्य का विचार नही करता, वह तो अपना लोभ पूरा करने की धुन मे रहता हे। ऐसा व्यक्ति दया–पात्र हे। जब तक भी हो सके सतानिक का लोभ मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए। ऐसा न करके अपन भी युद्ध के लिए तैयार हो जावे ओर उसका सामना करने को सेना सजा दे तो इससे धन–जन की केसी भयकर हानि होगी? मेरी या सतानिक की तुच्छ वासना की पूर्ति के लिए हजारो–लाखो मनुष्यो की व्यर्थ ही हत्या होगी। हो सकता हे कि सतानिक के हृदय मे किसी ने हमारी ओर से भ्रम पेदा किया हो और इसी कारण वह युद्ध करने को चढ आया हो। यदि मेरा यह अनुमान ठीक हो तब तो उसका भ्रम मिटाकर युद्ध की हानि से बचना चाहिये लेकिन यदि मेरा यह अनुमान गलत हो और सतानिक के मन मे चम्पापुरी के राज्य का लोभ ही समाया हो तो वह चम्पापुरी का राज्य चाहे ले ले लेकिन युद्ध करके मनुष्यो की हत्या की स्थिति उत्पन्न करना ठीक नही है। राज्य का जाना बुरा नही है। मनुष्यो का मारा जाना बुरा है। यदि मुझे राज्य छोडना पडे तो मैं राज्य छोडने मे तो प्रसन्नता मानूगा लेकिन युद्ध से प्रसन्नता न मानूगा। इसके सिवा यह भी तो नहीं कहा जा सकता कि युद्ध करने पर विजय अपनी ही होगी। मैं युद्ध भी करू उसकी ओर मेरी प्रजा को भेड–बकरी की तरह कटवाऊ भी, फिर भी यह निश्चय नही हे कि विजय अपनी ही होगी। ऐसी दशा मे युद्ध से और हानि ही होगी लाभ क्या होगा?

दधिवाहन के कथन के उत्तर मे प्रधानमन्त्री कहने लगा–महाराज राजनीति के अनुसार आवश्यकता होने पर युद्ध करना ही पडता हे। आवश्यकता के समय युद्ध न करने से हानि होती हे। युद्ध करना क्षत्रियो का धर्म ही हे। जो किसी कारण से युद्ध से बचना चाहता हे युद्ध से भय करता हे अथवा युद्ध को टालना चाहता हे, वह क्षत्रिय नही हे। ऐसा व्यक्ति क्षत्रिय जाति ओर क्षत्रिय धर्म को कलक लगाने वाला हे। क्षत्रिय लोग युद्ध का आह्वान करते हैं। वे घर मे पडे–2 मरने की अपेक्षा शत्रुओ से युद्ध करते हुए मरना पसन्द करते हे। ऐसा होते हुए भी आप चढाई करके आये हुए शत्रु से युद्ध करने के समय इस तरह की बात क्यो कर रहे हैं? यह समझ मे नही आता। जब शत्रु अपनी सेना द्वारा हमारे राज्य को मथ रहा हे हमारी प्रजा का सता रहा हे, उस समय युद्ध करने के बदले राज्य–त्याग का उद्यत हाना वीरता नहीं किन्तु कायरता हे। आपने इस समय जा बाते कही हैं व बात वीरा के लिए अशोभनीय है। आप इस प्रकार की बात मुख से भी मत निकालिय। आपकी ऐसी बातो से सैनिका मे शिथिलता आना स्वाभाविक हे। इस समय तो

आपको ऐसी बाते कहनी चाहिए कि जिससे वीरो का उत्साह बढे और वे साहस पूर्वक युद्ध करे। इसलिए आप राज्य–त्याग की भावना को अपने मे स्थान ही मत दीजिये किन्तु डरपोकपना त्याग कर रणभेरी बजवा युद्ध की तैयारी करने की आज्ञा दीजिये। मुझे सतानिक की सेना और उसके प्रबन्ध का सब भेद मालूम है। मेरे को यह विश्वास है कि दृढता तथा उत्साह पूर्वक युद्ध करने पर अवश्य ही अपनी विजय होगी।

दधिवाहन–मत्री यद्यपि राजनीति के अनुसार तो तुम्हारा कथन ठीक है। राजनीति के अनुसार तुम्हे ऐसे समय मे मुझसे इसी प्रकार की बाते कहनी चाहिए लेकिन केवल राजनीति से जीवन तथा प्रजा को कभी भी शाति नही मिल सकती अशाति ही बनी रहती है। इसलिए राजनीति के साथ, धार्मिकता को और स्थान दो। धार्मिकता होने पर ऐसी थोथी राजनीति को ही स्थान न मिलेगा किन्तु फिर भी वही मार्ग अपनाया जायेगा जिससे प्रजा को अधिक से अधिक शाति मिले। उस दशा मे स्वार्थ–बुद्धि नहीं रह सकती। व्यर्थ ही दूसरे को कष्ट मे डालने की भावना उत्पन्न नही हो सकती। फिर तो वही नीति होगी जिससे किसी को कष्ट न हो अपितु लोग कष्ट से बचे। मैने युद्ध से बचने के लिए जो कुछ कहा है वह कायरता के वश होकर नही किन्तु धार्मिकता से कहा है। मैं कायर नहीं हू, वीर हू, लेकिन दूसरे को कष्ट मे डालना ही वीरता नही है। मैं युद्ध से भय नहीं खाता दूसरे लोगो को कष्ट होगा यह भय खाता हू। तुम समझते हो कि महाराजा क्षत्रियोचित कर्त्तव्य के विरुद्ध बात कर रहे हैं लेकिन मैंने जो कुछ कहा है वह क्षात्र धर्म की रक्षा के लिए ही। क्षत्रियो का धर्म– युद्ध करना अवश्य है लेकिन प्रजा की रक्षा के लिये। अपने स्वार्थ या अभिमान के लिए युद्ध करना और प्रजा को कष्ट मे डालना क्षत्रियो का धर्म नही है। मैं क्षत्रियधर्म का पालन करने के लिए ही यह चाहता हू कि युद्ध न हो। क्षत्रियो का धर्म अन्याय मिटाना है, अन्याय बढाना नही है और युद्ध द्वारा कैसा घोर अन्याय होता है इसे तुम जानते ही हो। युद्ध के समय निरपराध तथा शात प्रजा को लूट लिया जाता है, मार डाला जाता है और उसकी बहू–बेटियो तक पर घोर अत्याचार किया जाता है। यह सब स्वय की दुर्भावना शात करने अपनी लालसा पूरी करने और अपना अभिमान पुष्ट करने के लिए ही होता है कोई दूसरे कारण से नही होता। महाराज! युद्ध के समय प्रजा का क्या अपराध होता है जो उस पर इस प्रकार अत्याचार किया जाता है? लेकिन यह बात युद्ध के समय नही देखी जाती। युद्ध के समय तो शत्रु पक्ष की प्रजा को सताना कष्ट देना ही न्याय

समझा जाता हे ओर ऐसा करने को भी क्षात्रधर्म का नाम दिया जाता हे। लेकिन वास्तव मे यह क्षात्रधर्म नही हे। प्रजा की रक्षा के लिए युद्ध करना क्षात्र–धर्म है। प्रजा का नाश करने के लिए युद्ध करना क्षात्रधर्म नहीं हे।

प्रधानमन्त्री–सतानिक के सामने जितनी भी नम्रता रखी जावेगी उसका दु साहस बढता ही जावेगा। उसकी ओर से उठाई गई बातो मे अपनी ओर से नम्रता बताई गई, उसी का यह परिणाम हे कि आज उसकी भावना चम्पा राज्य हडपने की हो गई। यदि उसके सामने पहले ही दृढता से काम लिया गया होता, तो आज उसका यह दु साहस न होता। हमारे ओर उसके बीच मे मित्रता की सधि थी। उस सधि को उसने भग किया हे, इसलिए उसे पहले दण्ड देना ही चाहिए। ऐसे समय मे वीरता न रखने पर राज्य नही चल सकता। इस समय यदि किसी उपाय से सतानिक को समझा लिया गया, तो इसके उदाहरण से दूसरे मित्र राजा भी चम्पा पर चढाई करने का साहस करेगे और यदि इसका सामना करके उसे पराजित कर दिया तो फिर किसी का साहस चम्पा की ओर आख उठाने का न होगा। फिर हमारी धाक जम जावेगी, और हमारा राज्य सुरक्षित हो जावेगा। कहावत है–बेरी ओर सर्प को तो उठते ही मार डालना चाहिए, अन्यथा ये सदा ही दु ख देते हें। इसलिए में आपकी युद्ध न करने की बात से सहमत नही हो सकता न कोई दूसरा ही आपकी इस प्रकार की धार्मिकता को ठीक कह सकता हे। सब लोग इस धार्मिकता को कायरता ही कहेगे। इसलिए आप इस विषय मे अधिक सोच–विचार न करके युद्ध का डका बजवा दीजिये।

दधिवाहन–प्रिय प्रधान, तुम मेरी बातो का कारण कायरता समझ रहे हो, यह तुम्हारी भूल है। मे जो कुछ कह रहा हू, वह कायरता से नही किन्तु क्षात्रधर्म की प्रेरणा से कह रहा हू। में चाहता हू कि किसी तरह युद्ध न हो तो अच्छा। पहले तो सतानिक की चढाई का कोई स्पष्ट कारण नहीं जान पडता। हो सकता हे कि वह किसी बात मे भ्रम होने से ही चढ आया हो और उसका भ्रम मिटाने पर वह अपनी इस चढाई के लिए पश्चाताप करता हुआ वापस हो जावे। यदि मेरा यह अनुमान ठीक हो तो विना इस बात का निर्णय किये उसका अनुकरण करके युद्ध द्वारा हजारो मनुष्यो की हत्या करा डालना केसे ठीक होगा। इसके लिए तो यही ठीक हे कि पहले उससे चढाई का कारण पूछा जावे। यदि उसने कोई कारण बताया ओर उस कारण का समाधान हो गया तथा इस प्रकार युद्ध द्वारा होने वाली जनहत्या रुक गई तब तो अच्छा ही ह ओर यदि वह चढाई का कोई कारण न बता सका किन्तु

यह ज्ञात हुआ कि वह राज्य–लोभ से ही चढ आया है, तो उसको न्याय तथा धर्म समझाया जावेगा। इन सब उपायो से यदि युद्ध टल गया तब तो अच्छा ही है, लेकिन यदि किसी उपाय से युद्ध न टला, युद्ध करना आवश्यक प्रतीत हुआ, तो फिर दूसरा विचार किया जावेगा परन्तु युद्ध रोकने का प्रयत्न करने से पहले ही युद्ध के लिए तेयार हो जाना और युद्ध ठान देना ठीक नही है।

प्रधानमन्त्री–सतानिक निश्चय ही चम्पापुरी को अपने राज्य मे मिलाने के लिए चढाई करके आया है, इसलिए वह चढाई का कुछ भी कारण बता देगा ओर ऐसी दशामे उसका ध्यान न्याय, नीति या धर्म की ओर दिलाने से क्या होगा? वह न्याय धर्म का विचार क्यो करेगा? मुझे तो इस प्रयत्न से कोई लाभ नहीं दिखता। हा, यह हानि अवश्य है कि विलम्ब करने से हमारी सेना मे शिथिलता ओर उसकी सेना मे उत्साह की वृद्धि होगी, जो युद्ध मे हमारे लिए ठीक नही है।

दधिवाहन–यदि सतानिक ने भ्रमवश चढाई की होगी तब तो भ्रम मिटने पर वह वापस लोट ही जावेगा, और यदि उसने निश्चय पूर्वक चढाई की होगी तथा न्याय–धर्म पर विचार न करेगा, तो कम से कम कहने के लिए तो रह जावेगा कि सतानिक अन्याय पूर्वक चढ आया था, और उसको समझाने के लिए इस इस तरह का प्रयत्न किया गया था, फिर भी वह नहीं माना। इसलिए मे तो एक बार युद्ध रोकने का प्रयत्न करना उचित समझता हू। श्रीकृष्ण यह जानते थे कि दुर्योधन पाच ग्राम देकर भी पाण्डवो से सन्धि न करेगा उससे भूमि प्राप्त करने के लिए युद्ध करना आवश्यक है फिर भी वे दुर्योधन को समझाने के लिए गये ही थे, और वह केवल इसीलिए कि सब लोगो को यह मालूम हो जावे, कि युद्ध रोकने के लिए किस प्रकार प्रयत्न किया गया फिर भी दुर्योधन नही माना। इसी तरह चाहे सतानिक माने या न माने अपने को तो प्रयत्न करना ही चाहिए।

प्रधानमन्त्री–सतानिक को समझाने के लिए आपने किसे भेजना ठीक समझा है?

दधिवाहन–तुम्हारी दृष्टि मे मे युद्ध ओर शत्रु से भय खाता हू, इसलिए यह बताने के लिए कि मे कायर नही, किन्तु वीर हू, अकेला ही घोडे पर बैठकर सतानिक के शिविर मे जाऊगा ओर उसे समझाऊगा।

प्रधानमन्त्री–जान पडता है कि इस समय विजय–लक्ष्मी सतानिक के ही साथ है इसीसे आपने ऐसा विचार किया है। अकेला शत्रु अपनी सेना के बीच आ जावे और उसे घेर लिया जावे विजय के लिए इससे अधिक

चाहिए ही क्या? जब आप सतानिक की सेना मे जायेगे ओर वह भी असहाय तथा अकेले, तब क्या वह आपको बन्दी न बना लेगा? वापस आने भी देगा? यह तो आपने स्वय को उसके हाथ बदी बनाने और उसे विजय दिलाने का ही मार्ग सोचा हे।

दधिवाहन–यह तुम्हारा भ्रम हे। में उसके हाथ कदापि बदी नही बन सकता। मैं कायर नहीं हू जो सतानिक मुझे बन्दी बना ले। प्रधान तुम विश्वास रखो, भय मत करो। अब सभा विसर्जन करो। में अभी ही सतानिक के पास जाता हू। वहा से लौटकर फिर विचार करेगे।

यह कहकर दधिवाहन ने सभा विसर्जन कर दी ओर साथ ही सेवक को घोडा सजाने की आज्ञा दी। मत्रीगण इसी विषयक बातचीत करते हुए अपने–अपने घर चले गये ओर दधिवाहन अपने महल को गया।

लूट

मनुष्य मे अच्छी या बुरी, जो भी भावना पूर्णतया स्थान कर लेती हे, उसको निकालने के लिए चाहे जितना प्रयत्न किया जावे, फिर वह भावना उसमे से मरने तक भी नही निकलती। हा, जब तक किसी की भावना का पूर्णतया आधिपत्य नही हुआ है, वह व्यक्ति उस भावना से पूरी तरह प्रभावित नहीं हो गया है, उसके रग मे रगा नही गया है, तब तक तो प्रयत्न, घटना या स्थितिवश उस भावना का बदला जाना सम्भव है, लेकिन पूरी तरह आधिपत्य हो जाने पर किसी भावना का निकालना सर्वथा असम्भव है। फिर वह भावना न तो समझाने पर ही बदलती है न स्थिति या घटनावश ही। भगवान अरिष्टनेमि मे ब्रह्मचर्य पालने की दृढ भावना थी। उनकी इस भावना को बदलने के लिए समुद्र विजय श्रीकृष्ण आदि ने अनेको प्रयत्न किये, परन्तु उन्हे टस से मस न कर सके। राजा मेघरथ मे अभयदान की दृढ भावना स्थान कर चुकी थी। इसलिए वे एक कबूतर के लिए भी अपना शरीर देने को तैयार हो गये लेकिन रानियो मत्री ओर प्रजा के समझाने पर भी उन्होने कबूतर को तुच्छ नही माना और उसकी रक्षा के लिए शरीर दिया ही। गजसुकुमार मे सयम लेने की दृढ भावना स्थान कर चुकी थी, इसलिए श्रीकृष्ण का तीन खण्ड का राज्य भी उन्हे सयम लेने से रोकने मे समर्थ नहीं हुआ। इसी तरह के ओर भी अनेको उदाहरण हैं।

यह तो शुभ या उत्तम भावना की बात हुई। अशुभ या नीच भावना के लिए भी यही बात हे। नीच भावना भी यदि दृढ हो चुकी हे, उसने पूरी तरह अधिकार कर लिया है तो फिर वह भी यावज्जीवन नही निकलती। कालसैरिक कसाई मे हिसा की भावना दृढ रूप से जमी हुई थी इसलिये राजा श्रेणिक के अनेक प्रयत्न करने पर भी वह अहिसक नहीं बना। कपिला दासी के हृदय मे साधुओ को दान न देने की भावना पूरी तरह जम गई थी इसीलिए वह भावना किसी भी तरह नही बदली। कस मे अन्याय–अधर्म की

भावना घर कर चुकी थी, वह भावना उसमे से मरते समय तक नही निकली। दुर्योधन मे पाडवो से विरोध करने की भावना दृढ हो चुकी थी जिसे श्रीकृष्ण, विदुर ओर भीष्म आदि कोई भी न पलटा सका। मतलब यह कि एक बार जो भी भावना पूरी तरह जम जाती हे, वह भावना फिर किसी भी तरह केसे भी प्रयत्न करने पर नहीं निकलती। यह बात दूसरी हे कि किन्ही असाधारण महापुरुष की कृपा से बुरी भावना तो निकल जावे ओर उसके स्थान पर अच्छी भावना आ जावे, लेकिन अच्छी भावना तो असाधारण दुष्ट पुरुष के मिलने पर भी उसके द्वारा किये गये अनेक अत्याचार सहने पर भी नही निकलती। सतानिक मे चम्पा का राज्य लेने की भावना पूरी तरह घर कर चुकी हे ओर दधिवाहन मे धर्म की दृढ भावना स्थान कर चुकी है। इसलिए यह देखना हे कि इन दोनो की भावना भी बदलती हे या नही?

सभा विसर्जन करके दधिवाहन, घोडे पर सवार होकर अकेला ही सतानिक के पास चला। दधिवाहन को अकेला ही सतानिक की सेना मे जाते देखकर राज कर्मचारी ओर प्रजा हाहाकार करने लगी, लेकिन दधिवाहन ने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया। वह अकेला ही सतानिक के शिविर मे सतानिक के सामने जा पहुचा। दधिवाहन को अकेला ओर अचानक आया देखकर सतानिक प्रसन्न हुआ। यह विचार कर उसका अहकार बढ गया कि दधिवाहन डरकर मेरी शरण आया है। लेकिन इस विचार से उसे निराशा भी हुई कि दधिवाहन मेरी शरण आ गया हे इसने मेरे से युद्ध नही किया हे इसलिये अब में चम्पापुरी का अपनी इच्छानुसार विध्वस न करा सकूगा। अब ऐसा करने पर लोगो मे मेरी घोर निन्दा होगी ओर मेरा ऐसा कार्य कलक के योग्य होगा।

सतानिक के सामने पहुच कर दधिवाहन कहने लगा— महाराजा आपके ओर मेरे बीच मित्रतापूर्ण सधि हे आप मरे सबधी हें अब तक एक दूसरे से मिलते रहे हें, तथा अनेक बार साथ ही भोजन किया हे फिर आज ऐसा कोनसा कारण उपस्थित हुआ जो आपन एक दम से चढाई कर दी? हमारी ओर से ऐसी कोनसी बात हुई हे जो आपका एसा करना पडा? यदि आप निष्कारण ही चढाई करके आय हो तो क्या आपके लिए एसा करना उचित हे? क्या आपका यह कार्य क्षत्रियोचित हे? क्षत्रियो का काम शाति रखना ओर प्रजा का सुख देना हे अशाति फेलाकर प्रजा का कष्ट मे डालना क्षत्रियो का काम नहीं है। एसा होते हुए भी आपन युद्ध द्वारा अशाति फैलाने का विचार क्या किया? मेरी ओर स आपकी प्रजा का किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं

दिया गया आपके राज्य की भूमि नहीं दबाई गई, न सन्धि–विरुद्ध कोई काम ही किया गया। फिर आपने चढाई क्यो कर दी? क्या आपका ऐसा करना न्याय हे? मै न्याय–नीति पूर्वक चम्पा की प्रजा का पालन कर रहा हू। यदि मेरी ओर से यहा की प्रजा को कष्ट होता, और उस दशा मे प्रजा की रक्षा के लिए आपने चढाई की होती तब भी आपकी चढाई को अनुचित न कहा जाता लेकिन मेरी पजा को मेरी ओर से किसी भी तरह का कष्ट नही है। फिर आपने किस विचार से चढाई की? आप जरा न्याय की ओर दृष्टिपात कीजिये। अन्याय पर उतारू होकर युद्ध द्वारा मनुष्यो की हत्या का कारण मत बनिये अब तक हमारा ओर आपका जैसा सबध रहा है, वैसा ही सबध बनाये रखिये। जिस प्रकार आप युद्ध के लिए चढ आये, उसी प्रकार मैं भी युद्ध के लिए चढाई कर सकता था परन्तु मैंने एक बार आपसे अकेले मे मिलकर बातचीत कर लेना उचित समझा। इसीलिए मैं आपके पास आया हू।

इस प्रकार सन्तानिक के सामने दधिवाहन ने न्याय और धर्म की बहुत दुहाई दी लेकिन युद्ध–पिपासु सतानिक के हृदय पर उसका कोई प्रभाव नही पडा। उसके हृदय मे तो चम्पापुरी पर आधिपत्य करने का लोभ समाया हुआ था इसीलिए वह दधिवाहन की बातो को कैसे मान सकता था? सतानिक के पास दधिवाहन की बात का कोई उचित उत्तर भी न था, इसलिए उसने चढाई का कारण बताने आदि मे पडना उचित न समझा, किन्तु उसने दूसरे मार्ग का सहारा लिया। वह दधिवाहन से कहने लगा कि युद्ध के समय इस प्रकार न्याय पूछने का काम कोई आप जैसा कायर या धर्मढोगी ही कर सकता है वीर तो ऐसा कदापि नहीं कर सकता। युद्ध के समय न्याय–अन्याय का प्रश्न कैसा? उस समय तो सामने आये हुए शत्रु से युद्ध करना ही न्याय है परन्तु आपमे युद्ध करने की क्षमता नही है आप वीर नही है, किन्तु कायर है। इसी से न्याय–अन्याय पूछने आये हें। लो, मै न्याय भी बताये देता हू। क्षत्रियो के लिए युद्ध करना देश जीतना तथा राज्य बढाना यही न्याय है ओर इसके विरुद्ध सब अन्याय हे। हम राजा हैं क्षत्रिय हैं हमारे न्याय–अन्याय का निर्णय तो युद्ध मे ही हो सकता हे।

दधिवाहन–तब तो जान पडता है कि आप लोभवश युद्ध करने को चढ आये है लेकिन आपके अनुचित लोभ के कारण कितने मनुष्यो का रक्त बहेगा जरा इसे भी सोच लीजिये। अपनी तृष्णा को शात करने के लिए किये गये युद्ध की कदापि प्रशसा नही हो सकती। ऐसे युद्ध की प्रशसा तो भाट या चारण भले ही करे दूसरा कोई नही कर सकता। इसके सिवा आप

राजा हे। जब आपमे ही तृष्णा का इतना आधिक्य रहेगा तब दूसरे की तो बात ही क्या हे? राजा मे तृष्णा होने पर प्रजा मे केसी तृष्णा होगी ओर उस दशा मे कितनी भयकर अशाति रहेगी, इस पर विचार कीजिये।

सतानिक—मुझे सतोष की आवश्यकता नहीं है। उसे तो मेंने आप जैसे कायरो तथा धर्म—ढोगियो के लिये ही रहने दिया हे। मे अपने लिए तो यही समझता हू, सतोषी राजा नष्ट हो जाता है। जिसमे वीरता नही हे वे कायर लोग ही सतोष कर बैठते हे। हममे यदि बल, वीर्य ओर साहस हे तो हम सारी पृथ्वी का राज्य लेने का प्रयत्न कर सकते हैं। इसमे अन्याय का कोई प्रश्न नहीं हो सकता। हमारे लिए तलवार ही न्याय है ओर नवीन—नवीन राज्य प्राप्त करना ही हमारा धर्म है। हममे शक्ति है इसीसे हम चम्पा का राज्य लेने के लिए चढाई करके आये है। यदि आपमे शक्ति है तो हमारा सामना करिये और शक्ति नही है तो आत्म—समर्पण करके हमारी अधीनता स्वीकार कीजिये। यदि इन दोनो बातो मे से एक भी नही कर सकते तो जगल को भाग जाना चाहिए था, इस प्रकार न्याय की दुहाई देने के लिए आकर क्षत्रियकुल को कलक न लगाना चाहिए था। हम आपकी तरह कायर नहीं है, जो न्याय—अन्याय के विचार से प्राप्त शक्ति का उपयोग न करे।

मन्त्रियो आदि के रोकने पर भी दधिवाहन इस आशा से सतानिक के पास आया था कि प्रयत्न करने से युद्ध रुक जावेगा लेकिन सतानिक के उत्तर से उसको यह निश्चय हो गया कि सतानिक पूरी तरह लोभग्रस्त हे चम्पा पर अपना आधिपत्य करने की इच्छा से ही यह चढाई करके आया हे ओर इसीलिए मेरे कथन का इस पर कोई प्रभाव नही हुआ हे, किन्तु ओर उल्टी बाते करके यह जेसे मुझे युद्ध के लिए उत्तेजित करता हे। सतानिक ने दधिवाहन से जिस तरह की बाते की ओर जेसे अपमानपूर्ण शब्द कहे थे उनसे यदि कोई दूसरा होता तो अवश्य ही उत्तेजित हो उठता ओर अपना बलाबल का निर्णय भूलकर युद्ध ठान देता लेकिन दधिवाहन बुद्धिमान दूरदर्शी ओर धर्मज्ञ था। इसलिए उसने सोचा कि यह मुझे युद्ध के लिए उत्तेजित कर रहा हे, फिर भी इसकी बातो से उत्तेजित होकर मुझे विवेक की उपेक्षा न करनी चाहिये। मुझे प्रत्येक बात के विषय मे गम्भीरता पूर्वक विचार कर लेना चाहिये। अविचारपूर्वक उत्तेजित होकर किये गये कार्य का परिणाम सदा ही पश्चातापपूर्ण होता है। सतानिक प्रचड सेना लेकर युद्ध की पूरी तेयारी से आया हे। यह भारी कर द्वारा प्राप्त प्रजा की गाढी कमाई से धन का अधिकाश भाग अपनी सेनिक—तेयारी मे ही लगाता रहा है लेकिन मे [illegible]

प्रजा से केवल उतना ही कर लिया है, जितना उसकी रक्षा के लिए आवश्यक था। इसलिये मेरे यहा न तो इसकी सेना का सामना करने योग्य सेना ही हे, न युद्ध–सबधी दूसरी तेयारी ही है। यद्यपि मेरी प्रजा कायर नहीं है किन्तु वीर हे ओर राज्य भक्त भी है, लेकिन वह युद्ध–शिक्षा पाये हुए सतानिक के सेनिको से विजय प्राप्त नहीं कर सकती। ऐसी दशा मे युद्ध करके अनावश्यक जनहत्या से कोई लाभ नही है। इसने मुझे दूसरा मार्ग अधीनता स्वीकार करने का बताया हे परन्तु इस मार्ग को कोई भी प्रजा– हितैषी और स्वतन्त्रताप्रिय वीर स्वीकार नही कर सकता। ऐसा करने पर मुझे इसकी आज्ञानुसार इसके हित के लिये ओर इसकी धन–पिपासा शात करने के लिये प्रजा पर अत्याचार करना होगा तथा उस पर भारी टेक्स लगाना होगा फिर तो मैं नाममात्र का राजा होऊगा। प्रजा की रक्षा और उसका हित करने की सत्ता, मेरे पास न रहेगी। इन सबके सिवा अब तक मैं इसकी समानता का राजा रहा हू, यह मुझे ओर मैं इसे मित्र मानता रहा हू, तथा मित्र एव सबधी होने के कारण यह मेरा आदर करता रहा हे, लेकिन अधीनता स्वीकार करने पर तो इस व्यवहार के स्थान पर स्वामी–सेवक का व्यवहार होगा। इन बातो को दृष्टि मे रखकर इसका बताया हुआ तीसरा मार्ग वनगमन ही अच्छा है। इस मार्ग को अपनाने पर इस तरह के किसी भी झझट का भय नही रहता।

इस प्रकार विचार कर और वन जाने का निश्चय करके दधिवाहन ने स्वय के घोडे पर सवार होते हुए कहा– 'अच्छा महाराज, यदि आपकी इच्छा चम्पा पर अपना अधिकार करने की हे तो आप मजे से चम्पा पर अधिकार करिये। अब तक चम्पा का राज्य और वहा की प्रजा का पालन मैंने किया अब आप करिये। मे सोचा करता था कि मै वृद्ध हुआ हू, मेरे कोई पुत्र भी नही है केवल एक कन्या ही है इसलिए प्रजा का भार किसे सौपूगा? और यदि यह भार कन्या पर डालूगा तो वह दु खी हो जावेगी। मुझे इस प्रकार की चिन्ता थी लेकिन आपने चम्पा की प्रजा की रक्षा का भार स्वय पर लेकर मुझे चिन्ता–मुक्त कर दिया। यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है– यह कहते हुए महाराजा दधिवाहन घोडे पर बेठकर जगल को चल दिया।

दधिवाहन को इस तरह कहकर जगल की ओर जाते देख सतानिक बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने उसी समय अपने सेनापति आदि को बुलाया ओर उससे कहने लगा कि मेरी विजय तो बिना युद्ध किये ही हुई हे। मेरी चढाई से भय खाकर अभी दधिवाहन यहा आया था। मेरी ओर उसकी जो बातचीत हुई उसका सार यही है कि वह चम्पा का राज्य मुझे सोंपकर स्वय जगल

को भाग गया है। इसलिए अब तो युद्ध की आवश्यकता ही नही रही। अब तो चम्पा मे जाकर वहा अपना झण्डा फहरा देना और वहा के कोष आदि पर अधिकार कर लेना हे। मेरा भाग्य प्रबल हे, विजय–लक्ष्मी मेरी सहायता को सदा तैयार रहती है, इसी कारण बिना एक भी सैनिक कटाये केवल मेरी धाक से ही मुझे चम्पा का राज्य प्राप्त हुआ हे।

यह कहकर सतानिक जेसे ही चुप हुआ वैसे ही सेनापति लोग उसकी प्रशसा करने लगे। वे कहने लगे कि वास्तव मे आपका प्रताप ऐसा ही है। शत्रुगण आपकी धाक से ही आपके सामने नतमस्तक हो जाते हैं। आपकी सुशिक्षित ओर विशाल सेना से युद्ध करने का साहस तो किसी का हो ही नही सकता। यह बडे हर्ष की बात हे कि चम्पा का राज्य बिना श्रम के ही प्राप्त हो गया, लेकिन साथ ही आपने एक गल्ती भी की हे। आप ऐसे चतुर और राजनीतिज्ञ से इस प्रकार की भयकर भूल होना बडे ही आश्चर्य की बात है। नीति मे कहा हे कि शत्रु को जीवित तो रहने ही न देना चाहिये। चाहे प्रबल शत्रु हो या निर्बल, जीवित रहने पर वह समय–समय पर उसी प्रकार कष्ट दिया करता है, जिस प्रकार शरीर मे चुभा हुआ काटा दु ख देता है, इसलिये अपने शत्रु को उसी प्रकार आमूल नष्ट कर देना चाहिये जिस प्रकार शरीर मे चुभा हुआ काटा निकाल कर फेक दिया जाता हे। आपने दधिवाहन को जीवित ही जाने देकर इस नीति का पालन नही किया दधिवाहन आपकी विशाल सेना के सन्मुख स्वय को निर्बल समझकर इस समय जो चुपचाप वन को चला गया हे लेकिन हमारा अनुमान हे कि वह चुप न रहेगा। कौन क्षत्रिय ऐसा होगा जो अपना राज्य जाने पर चुपचाप बेठ जावे और उसको पुन प्राप्त करने का प्रयत्न न करे। दधिवाहन भी क्षत्रिय हे। क्षत्रिय लोग साप की तरह जीवन भर वेर नही भूलते। वे समय देखकर नम्र चाहे हो जावे, चाहे अधीनता स्वीकार कर ले अथवा अपना राज्य शत्रु को सॉप दे लेकिन उनके हृदय मे वेर की ज्वाला तो धधका ही करती हे जिस शात करने के लिये वे गुप्त या प्रकट प्रयत्न करते ही रहते हैं। दधिवाहन इस क्षत्रिय– स्वभाव के प्रतिकूल व्यवहार केसे कर सकता हे? क्या विश्वास हे कि स्वय सेन्य–सग्रह द्वारा अथवा अन्य राजाओ की सहायता द्वारा पुन अपना राज्य प्राप्त करने की चेष्टा न करे। इस तरह आपने दधिवाहन को जीवित जाने देकर अपने लिए एक काटा बाकी रहने दिया हे। यदि उस समय हम लोग उपस्थित होते तो या तो दधिवाहन को केद कर लेत अथवा मार डालते। उनको स्वतन्त्रतापूर्वक जीवित कदापि न रहने देत।

सेनापति और मन्त्रियो का यह कथन सुनकर सतानिक कहने लगा–वास्तव मे उस समय मुझे इन बातो का ध्यान नही रहा। मैंने दधिवाहन को जाने देकर अवश्य ही भूल की है, लेकिन वह अभी ही गया है, इसलिये अधिक दूर न गया होगा। सैनिको को भेजा जाने पर सम्भव है कि वह मिल जावे।

सतानिक की आज्ञानुसार सेनापति ओर मन्त्रियो ने, तत्क्षण कुछ घुडसवार सेनिको को दधिवाहन की खोज मे दौडाया और उनसे कह दिया कि जब तक हो सके दधिवाहन को जीवित ही पकड लाना, किन्तु यदि ऐसा सम्भव न हो तो उसका सिर काट लाना, लेकिन वह बचकर न जाने पावे। आज्ञा पाकर सैनिक लोग दधिवाहन की खोज मे दौडे, परन्तु उन्हे दधिवाहन का पता न मिला, इससे निराश होकर लौट आये।

सैनिको के लोट आने पर सेनापति लोग सतानिक से कहने लगे कि वह कही छिप गया होगा इसी से हाथ नहीं आया। खैर, देखा जावेगा, सावधानीपूर्वक उसका पता चलाया जावेगा तथा वह क्या करता है, कहा जाता है आदि उसकी गति–विधि की भी निगरानी रखी जावेगी। अब तो अपने को अविलम्ब चम्पा पर अधिकार कर लेना चाहिए। हा, एक बात आवश्यक है। सेनिक लोग इसी आशा से प्राणो की बाजी लगाकर आये हैं कि युद्ध के पश्चात् चम्पा लूटी जावेगी, और हमे द्रव्य प्राप्त होगा। सैनिको की यह आशा पूरी करने के लिये चम्पा की लूट तो होनी ही चाहिए।

सेनापतियो के इस कथन के उत्तर मे सतानिक कहने लगा कि जब युद्ध ही नही हुआ तब लूट कैसी? क्या निष्कारण ही लूट होगी? ऐसा करना तो घोर अन्याय माना जायेगा।

सेनापतिगण–युद्ध न होने का कारण दधिवाहन की कायरता है, इसमे सेना का क्या अपराध है? दधिवाहन की कायरता के कारण सेना लूट के माल से क्यो वचित रहे? सेना तो युद्ध के लिए तैयार ही है और यदि दधिवाहन अभी या फिर किसी की सहायता से चढाई करके सामना करने आया तो सेना उससे लडेगी ही। ऐसी दशा मे सेना को निराश करना उचित नही होगा। यदि सेना निराश हो जायेगी तो उसके द्वारा विद्रोह होने का भय रहेगा। वह किसी भी समय अपना साथ छोडकर अपने को सकट मे डाल देगी और यदि दधिवाहन चढाई करके आया तो उससे भी न लडेगी। इसलिये सैनिको को रुष्ट करना ठीक नही। यदि अधिक नही तो तीन दिन के लिए तो यह लूट होनी ही चाहिए कि तीन दिन तक सेना जिस तरह चाहे

चम्पा को लूटे। हम तो इसी मे हित समझते हें आगे आप जेसा उचित समझे ओर जो आज्ञा देगे, उसी के अनुसार कार्य किया जावेगा।

सेनापति लोगो की बाते सुनकर सतानिक क्षण भर के लिए विचार मे पड गया। अन्त मे सेनापति लोगो के अनुरोध से उसने–सेना विद्रोह कर देगी इस भय से अनिच्छापूर्वक यह स्वीकार किया कि 'अच्छा तुम लोग जेसा कहते हो वेसा ही किया जावेगा।'

इधर सतानिक की सेना मे तो यह हुआ। उधर सतानिक के पास से रवाना होकर दधिवाहन ने स्वय के किसी सीमारक्षक सैनिको द्वारा अथवा प्रजा मे से किसी व्यक्ति द्वारा अपने मत्रियो के पास अपने वनगमन की सूचना भेज दी। साथ ही यह भी कहला दिया कि सतानिक की सेना बहुत हे उससे युद्ध करके अपनी सेना किसी भी दशा मे विजय प्राप्त नही कर सकती इस कारण युद्ध करके उसकी सेना द्वारा अपनी सेना ओर प्रजा की हत्या कराना उचित नही है। अब तक चम्पा की रक्षा मेने की, लेकिन सतानिक वहा का राजा बनकर स्वय पर प्रजा की रक्षा का भार लेना चाहता हे इसलिये अब से मेरी जगह सतानिक को राजा मानना।

दधिवाहन की भेजी हुई खबर जेसे ही चम्पा मे पहुची वेसे ही वहा तहलका मच गया। मन्त्रियो सहित सब लोग दधिवाहन को कायर कहकर उसकी निन्दा करने लगे ओर विचारने लगे कि अब क्या करना चाहिए? अन्त मे सबने मिलकर यही निश्चय किया कि सतानिक के साथ युद्ध करना चाहिए फिर चाहे परिणाम कुछ भी हो। राजा की तरह अपन लोग भी कायर होकर चम्पा पर सतानिक का अधिकार हो जाने दे वह ठीक नही। अपने पास सेना हे। युद्ध न करने पर सेना का क्या उपयोग होगा? इसलिए सतानिक से दृढतापूर्वक युद्ध करके चम्पा की रक्षा करनी चाहिए। राजा तो एसा कायर निकला कि वह यहा लोटकर भी नही आया। पहले तो हम सबकी सम्मति के विरुद्ध राजा को शत्रु सेना मे जाना ही न चाहिए था ओर कदाचित् गया भी तो फिर लोटकर तो आना चाहिए था। लकिन वह ता सतानिक की सेना से भय खाकर उधर ही जगल का भाग गया। प्रजा की रक्षा का प्रयत्न करना तो दूर रहा उसने अपनी रानी ओर राजकुमारी की रक्षा की भी कोई चिन्ता नही की। राजा ने ता कायरता दिखाई ही लकिन अपन को कायरता न दिखाकर सतानिक स युद्ध करना चाहिए ओर उसकी युद्ध कामना को सदा के लिए मिटा दना चाहिए।

इस प्रकार निश्चय करके प्रधानमन्त्री ने युद्ध की घोषणा कर दी। सेना सुसज्जित करके उसे युद्ध के लिए उत्साहित किया। उसने कहा कि चम्पा की रक्षा का भार तुम्ही लोगो पर है। अपने महाराजा यहा पर नहीं हैं। चम्पा की रक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व अपने पर ही है। इसलिए तुम सब वीरता पूर्वक ऐसा युद्ध करो कि सतानिक को परास्त होकर लौटना ही पडे। इस पकार सेना को उत्साहित करके प्रधानमन्त्री और सेनापति ने सेना को युद्ध के लिए नगर से बाहर निकाला। उधर सेना सहित सतानिक चम्पा पर अपना झण्डा फहराने के लिए चम्पा की ओर रवाना हुआ। उसको विश्वास था कि मै जाते ही चम्पा पर अधिकार कर लूगा और वहा अपना झण्डा गडा दूगा। सेना भी इसी आशा से बढती हुई आ रही थी कि हम लोग जाते ही चम्पा मे लूट मचा देगे ओर हमे विपुल धन राशि प्राप्त होगी। इस प्रकार सेना-सहित सतानिक सोचता कुछ था लेकिन चम्पा पहुचने पर सबको अपनी आशा से विपरीत स्थिति का सामना करना पडा। उन्होने देखा कि नगर का फाटक बन्द है तथा चम्पा की सेना युद्ध के लिए तैयार है। यह देखकर सतानिक ने भी अपनी सेना को युद्ध करने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही सतानिक की सेना दधिवाहन की सेना से युद्ध करने लगी।

दधिवाहन की सेना ने सतानिक की सेना पर उग्र आक्रमण किया। यह वीरता पूर्वक घोर युद्ध करने लगी। रणभूमि रक्त से लाल हो गई। जहा-तहा रुण्ड-मुण्ड ही दिखाई देने लगे। थोडी देर के लिए तो दधिवाहन की सेना ने सतानिक की सेना के छक्के छुडा दिये लेकिन सतानिक की विशाल सेना के सन्मुख वह मुट्ठी भर और बिना नायक की सेना कब तक ठहर सकती थी? सतानिक की सेना से परास्त होकर चम्पा की सेना रणभूमि छोडकर भागी। चम्पा की सेना के भागते ही सतानिक ने स्वय को विजयी माना। उसने सेना को फाटक तोडकर नगर मे घुसने ओर नगर को लूट लेने की आज्ञा दी।

सतानिक की आज्ञा पाकर विजय-मदमत्त उसकी सेना ने चम्पापुरी का फाटक तोड डाला। वह चम्पापुरी मे घुसकर प्रजा पर उसी तरह टूट पडी जैसे भूखा बाज पक्षियो पर टूट पडता है। उसके द्वारा चम्पानिवासी लोगो की सम्पत्ति लूटी जाने लगी। उसके इस कार्य मे बाधक होने वाला मौत के घाट उतारा जाने लगा। प्रजा जिधर भी मार्ग मिला उधर ही प्राण बचाकर भागी। चम्पापुरी मे एक मात्र सैनिक राज्य हो गया। उस समय चम्पापुरी की क्या [illegible] बात विक्रम सवत १९१४ के गदर का इतिहास पढने से सहज [illegible] सकती। गदर के समय जो कुछ होता है वही हाल चम्पापुरी [illegible]

ओर वहा की प्रजा का भी हुआ। उस समय का वीभत्स दृश्य ओर करुण-क्रन्दन पाषाण हृदय को भी द्रवित करने वाला था, परन्तु सतानिक ओर उसकी सेना के वज्र-हृदय पर उसका कोई प्रभाव नही हुआ। उस त्राहि-त्राहि ओर हाहाकार मे भी सतानिक की सेना अमानुषिक कृत्य करती जा रही थी ओर नर-पिशाच सतानिक, उसे देख-देख कर प्रसन्न हो रहा था।

उपदेश– शान्ति समर

शान्ति–समर मे कभी भूलकर धैर्य नहीं खोना होगा।
वज्र–प्रहार चाहे सिर पर हो किन्तु नही रोना होगा।
अरि से बदला लेने का, मन–बीज नही बोना होगा।
घर मे कान तूल देकर फिर तुझे नही सोना होगा।
देश–दाग को रुधिर–वारि से हर्षित हो धोना होगा।
देश–कार्य का भार गाठडी सिर पर रख ढोना होगा।
आखे लाल, भवे टेढी कर क्रोध नही करना होगा।
बलि–बेदी पर तुझे हर्ष से चढकर कट मरना होगा।
नश्वर है नर–देह मौत से कभी नही डरना होगा।
सत्य मार्ग को छोड स्वार्थ–पथ पर न पैर धरना होगा।
होगी निचश्य जीत धर्म की यही भाव भरना होगा।
मातृभूमि के लिये हर्ष से जीना या मरना होगा।।

उपदेशक का मार्ग बहुत कठिन है। तलवार की तीक्ष्ण धार पर चलना तो सरल भी कहा जा सकता है लेकिन सच्चे उपदेशक का मार्ग उससे भी कठिन है। उपदेशक को अनेक विरोधी विचारो एव कार्यो का सामना करना पडता है। उन सबको शमन करने उन सबको मिटाने उन पर विजय प्राप्त करने और अपने उपदेश का प्रभाव दूसरे पर डालने के लिए उसे प्रत्येक [illegible]–पूर्ण तथा सम्भव उपाय से काम लेना होता है। उपदेशक का बल त्याग [illegible] उपदेशक मे जितना अधिक त्याग हे या जो उपदेशक जितना अधि[illegible] कर सकता हे उसी के उपदेश का प्रभाव भी पडता हे। जिसमे [illegible] तो त्याग–रहित थोथा उपदेश देता है उसका उपदेश भी व्यर्थ [illegible] और जो उपदेशक त्याग मे बढा हुआ है जो आवश्यकता के समय [illegible] भी त्याग सकता है उसका उपदेश भी निश्चय ही सफल

होता है। फिर चाहे वह उपदेश उपदेशक की मृत्यु के पश्चात ही सफल क्यो न हो, लेकिन सफल अवश्य होता है। देशभक्त महाराणा प्रताप ओर उनके भाई शक्तिसिह मे जगल मे एक शिकार के लिये झगडा हो गया था। महाराणा प्रताप कहते थे कि यह शिकार मैंने लगाया है ओर शक्तिसिह कहते थे कि मेने लगाया। बस, इसी विवाद ने भयकर कलह का रूप धारण कर लिया। दोनो ने अपनी-अपनी तलवारे खींच ली, ओर तलवार द्वारा इस विवाद को मिटाने के लिये तैयार हो गये। उस समय वहा राजपुरोहित भी उपस्थित था। राजपुरोहित ने दोनो भाइयो को बहुत उपदेश दिया धर्म-ग्रन्थो के अनेक शिक्षा-वाक्य सुनाये, और इस प्रकार कलह मिटाने का बहुत प्रयत्न किया लेकिन उस भीषण समय मे उसका उपदेश दोनो मे से किसी को भी शात न कर सका। दोनो ही अपने को शिकार लगाने वाला कहते थे, और दोनो ही इस विवाद को तलवार द्वारा मिटा लेने के लिए तैयार थे, दोनो की तलवारे म्यान से बाहर हो चुकी थी। दोनो ही एक दूसरे पर वार करने के लिए उतारू थे। पुरोहित ने देखा कि इस समय मेरा मौखिक उपदेश काम न देगा इस समय तो त्याग की ही आवश्यकता है, ओर वह भी साधारण त्याग नही किन्तु इन दोनो का हृदय बदल देने वाले त्याग की। उसने सोचा कि मैंने इस राजवश का नमक खाया है। यह शरीर इस राज-कुल के अन्न से ही पला है। ये दोनो भाई वीर हैं अत इस आपस के कलह मे दोनो ही मारे जावेग। यदि इस समय में एक महान् त्यागपूर्ण उपदेश द्वारा इन दोनो को वचा सकू तो इन दोनो भाइयो की रक्षा भी होगी ओर में भी इस राज-परिवार के ऋण से मुक्त हो जाऊगा।

इस प्रकार विचार कर पुरोहत युद्ध के लिए तत्पर प्रताप ओर शक्ति के बीच मे खडा हो गया। पहले तो उसने यही कहा कि आप दोना अपनी-अपनी तलवार मुझ पर चलाइये परन्तु जव उसने दखा कि य दोना भाई किसी भी तरह नही मानते हें ओर मुझे एक ओर छोड कर लड-मरने को उद्यत है, तब उसने छुरा निकाल कर स्वय के पेट म मार लिया। पुरोहित क उस बलिदान ने किसी भी तरह न मानने वाले शक्तिसिह ओर प्रतापसिह को कपा दिया। वृद्ध पुरोहित के मृत शरीर ने दोना को आग बढन स रोक दिया। दोनो की तलवारे एक-दूसरे पर आघात करन क वदले म्यान म छिप गई और इस प्रकार दोनो भाइया का तात्कालीन कलह मिट गया।

यह तो इतिहास की वात हुई। धर्म-कथाओ म भी कुछ [illegible] ऐसी अनक घटनाए पाई जाती हैं। उनम स धारिणी क बलिदान की [illegible]

अनुपम है। अपना उपदेश सफल करने के लिए धारिणी ने स्वय का जैसा बलिदान किया और उपदेशको को जो मार्ग बताया उसका उदाहरण किसी भी साहित्य मे नही मिल सकता।

चम्पा की सेना रण-क्षेत्र त्याग कर भाग गई। सतानिक की सेना फाटक तोडकर चम्पा मे घुस गई। सतानिक की क्रूर आज्ञा के फलस्वरूप चम्पापुरी गुण्डो द्वारा लूटी जाने वाली अनाथ स्त्री के समान लूटी जाने लगी। चम्पापुरी मे अराजकता का ताण्डव हो रहा था। गरीब प्रजा या तो सतानिक के सैनिको की रक्त-तृषा शात करने के लिए सदा के वास्ते धराशायी हो रही थी या भाग कर किसी जगह अपने प्राण बचा रही थी।

चम्पापुरी मे एक ओर तो यह सब हो रहा था और दूसरी ओर राजमहल मे बैठी हुई महारानी धारिणी वसुमति को कुछ दूसरा ही उपदेश दे रही थी। धारिणी को दधिवाहन के वन-गमन का समाचार मिल चुका था, फिर भी उसने स्वाभाविक धैर्य नही त्यागा। फिर जब उसे चम्पापुरी की लूट ओर प्रजा पर होने वाले अत्याचार का पता लगा तब भी उसे किसी प्रकार का दु ख नही हुआ। सेवको ने उसे यह भी जता दिया कि दुष्ट सतानिक की सेना कुछ ही देर मे राजमहल को भी लूटने वाली हे तब भी वह नहीं घबराई। इन सब कारणो से उसका हृदय तनिक भी विचलित नही हुआ। वह तो वसुमति को उपदेश ही देती रही। वास्तव मे वीर हृदय के लोग वर्तमान की विपत्ति से घबराते नही है किन्तु वे दृढतापूर्वक भविष्य का विचार करते हैं।

धारिणी के सामने वसुमति बैठी हुई है और धारिणी उसे शिक्षा दे रही है। वह कह रही है- पुत्री तेरे स्वप्न का एक भाग तो सत्य हो रहा है। चम्पापुरी दु खसागर मे डूब रही है। तेरे पिता वन को चले गये हैं, इसलिये अब मेरा और तेरा रक्षक या सहायक कोई नही रहा हे, लेकिन इस कारण घबरा मत जाना। अपने को धर्म की जो शिक्षा मिली हे उसको कार्यरूप मे परिणत होने का समय तो यही हे। धर्म यह शिक्षा देता है कि आपत्ति के समय धैर्य रखो। अपन इस शिक्षा का पालन करती है या नही इसकी कसोटी तो यह विपत्ति का समय ही करेगा। यदि इस समय हमने धैर्य त्याग दिया तो हमारे लिए कुछ भी न होगा। अधीर और घबराया हुआ व्यक्ति कुछ भी नही कर सकता। इसलिए इस समय धेर्य मत त्यागना किन्तु धेर्यपूर्वक इस बात [illegible] पर विचार करना कि स्वप्न का शेष भाग केसे सत्य हो। तेरे लिए यह समय [illegible] का नही है किन्तु यह विचार कर प्रसन्न होने का हे कि मेरे द्वारा महान् [illegible] के लिए ही मेरे स्वप्न का एक भाग सत्य हो रहा हे। तेरे पिता

किसी उच्च विचार से ही जगल को चले गये होगे। उनके लिए किसी प्रकार की उचित–अनुचित बाते कह कर बैठ रहना ठीक नहीं है। वे गये तो गये अपन धर्म की गोद मे बैठी हैं। चाहे और सब कुछ चला जावे, लेकिन धर्म न जावे तो सब अच्छा ही होगा। जो चम्पापुरी आज नष्ट हो रही है, वह फिर कभी बस भी सकती हे, ओर अभी थी उससे भी अच्छी हो सकती हे परन्तु यदि धर्म चला गया तो गया हुआ धर्म वापस न आवेगा। यदि अपने मे धर्म रहा, तो तेरे स्वप्न का शेष भाग भी सत्य होगा, अर्थात् दु खसागर से चम्पापुरी का उद्धार भी कर सकेगी। लेकिन यदि विपत्ति के कारण धर्म छूट गया तो फिर मेरे या तेरे किये कुछ भी न होगा। तू यह समझ कर अपने हृदय मे कभी भी कायरता मत लाना कि हम स्त्री हैं, स्वाभावत दुर्बल हृदय हैं अत हम क्या कर सकती है? वास्तव मे स्त्रिया पुरुषो से बढकर होती हैं। स्त्रियो की शक्ति से ही पुरुष काम कर सकते हैं ओर करते हें। पुरुषो को जन्म देने वाली भी स्त्रिया ही हैं। इसलिए अपने हृदय में कायरता मत लाना। यह समय सतानिक को बुरा कहने या उसे कोसने का भी नही हे। इस समय तो धेर्यपूर्वक विचार करना चाहिए कि दु खसागर मे पडी हुई चम्पापुरी का उद्धार केसे हो?

धारिणी इस प्रकार वसुमति को उपदेश दे रही थी इतने ही मे वहा सतानिक की सेना का रथी आ गया। चम्पापुरी को लूटते–लूटते उसने विचार किया कि प्रजा को लूटने से जो कुछ मिलेगा वह बहुत थोडा होगा। यदि राजमहल को लूटू तो अवश्य ही विशाल सम्पत्ति हाथ लगेगी। दधिवाहन की सेना तो भाग ही गई हे, इसलिये राजमहल को लूटने मे किसी प्रकार की बाधा भी नही हो सकती, ओर राजमहल की सम्पत्ति उसे ही प्राप्त हो सकेगी जो वहा पहले ही पहुचेगा। इसलिए मैं जाकर राजमहल को लूटू। वहा जो सम्पत्ति मिलेगी, वह मूल्यवान होगी ओर भारी भी न होगी। इस प्रकार विचार कर वह नागरिको को लूटना छोड सीधा राजमहल का आया। राजमहल की रक्षा के लिए नियुक्त सेना पहले से ही भाग गई थी। राजमहल बिलकुल ही अरक्षित था। वहा रहने वाले सेवक भी प्राणा क भय स या तो भाग गये थे या छिप गये थे। राजमहल म प्रवश करने म रथी का किसी भी प्रकार की बाधा नहीं हुई। वह रथ का खडा करके सरलता पूर्वक राजमहल म घुस गया। वहा अनेक प्रकार क रत्न दखकर रथी बहुत प्रसन्न हुआ। वह अपने भाग्य की सराहना करन लगा ओर मन म कहने लगा कि मुझे अच्छी धन

हुई जो मैं यहा आ गया, नहीं तो मुझे ऐसी सम्पत्ति प्राप्त न होती। जान पडता है कि मेरे ही सद्भाग्य से यह युद्ध हुआ है। यदि युद्ध न हुआ होता तो यह विपुल सम्पत्ति मुझे कैसे प्राप्त होती?

इस प्रकार प्रसन्न होता हुआ रथी रत्न लेने का विचार कर ही रहा था इतने ही मे उसकी दृष्टि धारिणी पर पडी। धारिणी को देखकर वह चकित–सा रह गया। उसके सोदर्य पर मुग्ध होकर वह सामने पडे हुए रत्नो को भूल गया। वह सोचने लगा कि यह स्त्री दधिवाहन की स्त्री जान पडती है। वास्तव मे दधिवाहन बडा ही भाग्यशाली था, जिसके यहा अप्सराओ को भी लज्जित करने वाली यह स्त्री है। इस सौंदर्य की प्रतिमा के सन्मुख ये रत्न ककर–पत्थर के समान त्याज्य हैं। इन सब रत्नो को तो इसके एक ही अग पर न्यौछावर किया जा सकता है। मैं इस पत्थर–रत्न और इस स्त्री–रत्न मे से किसे लू? मै किसको महत्व दू। वास्तव मे इस चैतन्य रत्न के सन्मुख इन ककर–पत्थर को महत्व देना मूर्खता ही होगी। मुझे उचित है कि मै अप्सराओ का मान मर्दन करने वाली इस स्त्री को ही लू। यदि इस स्त्री ने मुझे अपना प्रेम–भाजन बना लिया तो मैं अवश्य ही भाग्यशाली होऊगा। लेकिन यह राजरानी है क्षत्रिय कन्या है। मेरी प्रार्थना पर सरलता से ही मेरे साथ हो जावे, यह सम्भव नही। इसलिए इसको भय द्वारा अपने अधीन करना चाहिए। भय के सिवा ओर किसी उपाय से इसको वश मे नही किया जा सकता। चाहे कुछ हो चाहे सर्वस्व जावे परन्तु यह स्त्री–रत्न प्राप्त हो जावे, तो मेरा युद्ध करना सफल है। किसी भी तरह यह मेरी प्रेयसी बन जावे, तो अच्छा।

इस प्रकार विचार कर रथी तलवार निकाल कर धारिणी के सामने कृतान्त के समान जा खडा हुआ। वह धारिणी को नग्न तलवार बताकर कहने लगा कि–उठो और मेरे साथ चलो। अब यहा तुम्हारा कुछ नहीं है। तुम्हारा पति दधिवाहन जगल को भाग गया है। अब चम्पापुरी मे महाराजा सतानिक का राज्य है और यहा की सब सम्पत्ति सैनिको की हे। यहा जितनी भी सम्पत्ति है वह सब सेनिको द्वारा लूटी जा रही है। मेरे हाथ सम्पत्तिरूपा तुम लगी हो इसलिए उठो ओर बाहर रथ खडा हे उसमे मेरे साथ चुपचाप बैठ जाओ। यदि आनाकानी की या विलम्ब किया तो कुशल नही है। यह तलवार देख लो। इसके द्वारा धड से मस्तक जुदा कर दूगा। इस तलवार ने जिस चम्पापुरी के अन्य अनेको मनुष्य का रक्त पिया है उसी तरह तुम्हारा भी रक्त पी लेगी।

रथी की क्रूरता भरी आखे देखकर धारिणी समझ गई कि इस समय इसके हृदय मे दया नही है। यह, मार डालने मे जरा भी विलम्ब नही करेगा। वह सोचने लगी कि इस समय मुझे क्या करना चाहिए? यदि मै इसके साथ नहीं जाती हू तो यह अभी मार डालता है। मे पुत्री वसुमति को जो शिक्षा दे रही थी, वह शिक्षा पूरी तरह दे भी नहीं पाई और यह आ खडा हुआ। अब इसके साथ न जाने से और इसकी तलवार द्वारा इसी समय मर जाने से वसुमति को शेष उपदेश न दे सकूगी, और यदि साथ जाती हू तो यह सतीत्व नष्ट करने की चेष्टा करेगा। परन्तु इसके साथ न जाकर इसी समय इसकी तलवार से मरने मे कुछ लाभ नही है। इस प्रकार का मरण भी कायरतापूर्ण होगा। जब मुझे मरना ही है, तब मेरा शेष काम पूरा करके वीरतापूर्वक ही क्यो न मरू। इस समय इसके साथ जाने से एक तो मै वसुमति को शेष उपदेश दे लूगी, दूसरे वसुमति को जो उपदेश दूगी उसको सफल करने के लिए उसके सामने कोई आदर्श भी रख सकूगी। रही सतीत्व-रक्षा की बात। यह रथी इस समय क्रूर बना हुआ है, लेकिन इसकी आखो से प्रकट है कि यह वीर है। इस वीर को मे जो उपदेश दूगी उसका प्रभाव इस पर अवश्य ही पडेगा। वीर को सुधारना कोई कठिन कार्य नही है। मेरे उपदेश से यदि यह सुधर गया तब तो मुझे मरना भी न पडेगा तथा इसका सुधार भी हो जावेगा परन्तु कदाचित यह नही सुधरा, तो सतीत्व रक्षा के लिए प्राण-त्याग का जो मार्ग मेरे सामने इस समय हे, वह उस समय भी रहेगा ही। जिस तरह अभी प्राण देकर सतीत्व बचा सकती हू, उसी तरह फिर भी बचा सकूगी। परन्तु इस समय मरने मे, और इसके साथ जाकर इसके न सुधरने पर मरने मे बहुत अन्तर होगा। अभी प्राण देने पर मे न तो वसुमति का शेष शिक्षा दे सकूगी न इस वीर रथी को सुधारने का प्रयत्न ही कर सकूगी। लेकिन इसके साथ जाने पर वसुमति को शेष शिक्षा भी द सकूगी इसमे दृढता भी भर सकूगी इसे स्वय का सतीत्व बचाने के लिए मार्ग भी बता सकूगी इस वीर रथी को सुधारने का प्रयत्न भी कर सकूगी ओर अन्त मे जब सतीत्व की रक्षा होती न देखूगी तब प्राण त्याग कर वसुमति के सन्मुख बलिदान का एक आदर्श भी रख सकूगी। इसलिए इस रथी की तलवार से इस समय मरने की अपेक्षा इसके साथ जाना ही अच्छा है। यह वीर है इसीसे इसके सामने [illegible] को न लेकर मुझे ले रहा है। वीर के सिवा और [illegible] इस वीर मे इस समय विकार आ गया है इसमे [illegible]

समय इसकी बुद्धि किसी दूसरी बात को ग्रहण नही कर सकती, इसलिए अभी तो इसका कथन मान लेना ही अच्छा है। यदि मेरे उपदेश से यह सुधर गया, तो मुझे एक वीर भ्राता का लाभ भी होगा।

इस प्रकार विचार कर धारिणी वसुमति को लेकर उठ खडी हुई। उसके मुख पर न तो चिन्ता थी, न दुःख था। वह सदा की ही भाति प्रसन्न थी। वसुमति को साथ लिये धारिणी महल से बाहर को चली। तलवार लिये हुए रथी उन दोनो के पीछे चला। रथी के आगे–आगे वसुमति और धारिणी रथ के पास आई तथा रथी के कहने पर उसके रथ मे उसी प्रकार निःसकोच बैठ गई जिस प्रकार भाई के साथ जाने मे या भाई के रथ मे बैठने मे बहन को सकोच नही होता। पुत्री–सहित धारिणी को इस प्रकार निःसकोच भाव से रथ मे बैठती देखकर रथी बहुत प्रसन्न हुआ। वह कभी तो अपने भाग्य की प्रशसा करता था कभी भय–प्रदर्शन की नीति की बडाई करता था और कभी अपनी वीरता–भरी आकृति सुन्दर शरीर तथा युवावस्था की सराहना करता था। कभी सोचता था कि यदि मैंने इसे मरण का भय न बताया होता तो यह स्त्री–रत्न मेरे हाथ न लगता। अच्छा हुआ कि मैंने किसी और उपाय से काम लेने के बदले तलवार को ही आगे किया। कभी सोचता था कि मेरा भाग्य ही अच्छा है इसी से सब अच्छा हो रहा है। यदि मेरा भाग्य अच्छा न होता, तो प्रजा को लूटना छोडकर यहा आने तथा इसे अपनाने आदि की बुद्धि ही मुझमे क्यो होती? कभी सोचता था कि मेरी वीरता–भरी आकृति, सुन्दर शरीर और युवावस्था पर यदि यह मुग्ध हुई तो यह आश्चर्य की बात नहीं है। इसका पति तो भाग ही गया है इसलिये इसे किसी न किसी पुरुष की शरण लेनी ही होती। ऐसी दशा मे इसे मुझसा दूसरा पुरुष कौन मिल सकता था। मेरे साथ चलने मे इसने अपना स्वार्थ देखा है, इसीलिए यह प्रसन्नतापूर्वक मेरे साथ चलने को तैयार हो गई और मेरे रथ मे बैठ गई। मै तो यही कहता हू कि यह लडाई और लूट मेरे भाग्य से ही हुई है। यदि युद्ध न होता या युद्ध होने पर भी सतानिक चम्पापुरी को लूटने की आज्ञा न देता तो मुझे यह सौन्दर्य की प्रतिमाए कैसे प्राप्त होती? ये दोनो कैसी अनुपम सुन्दरी हैं? इनमे से एक तो अभी अविकसित कली के समान ही है। वह समय धन्य होगा जब मैं इसका आलिंगन करूगा।

इस प्रकार स्वय की कल्पनाओ से उन्मत्त बना हुआ रथी रथ के चारो [illegible] हाक कर और रथ लेकर चला। उसने सोचा कि इन सुन्दरियो को [illegible] चम्पापुरी मे लेकर जाना ठीक नही है। क्योकि यदि सतानिक या दूसरा

कोई–इन्हे देख लेगा तो फिर ये मुझसे छीन ली जावेगी ओर सतानिक के महल की शोभा बढाने वाली हो जावेगी। इन सुन्दरियो को देख कर किसका मन स्थिर रह सकता है? इसलिए इन्हे लेकर न तो चम्पापुरी मे होकर जाना ही ठीक हे, न एकदम से कौशाम्बी को जाना ही ठीक हे। अभी तो इन्हे लेकर जगल मे जाना ही अच्छा है। वहा किसी भी उपाय से इस एक रमणी से सुख–भोग कर सकूगा, इसे मेरी पत्नी बना सकूगा और तभी इनको लेकर कौशाम्बी जाना ठीक होगा। जिसमे फिर किसी प्रकार की गडबड भी न होगी। न ये मेरे विरुद्ध किसी से किसी प्रकार की शिकायत ही करेगी। ये दो है। मुझे पहले इनमे से एक को ही अपनी बनाने का प्रयत्न करना चाहिए। जब एक मुझे स्वीकार कर लेगी, मेरी बन जावेगी तब दूसरी तो मेरी हे ही।

धारिणी ओर वसुमति छिन जावेगी, इस भय से तथा अपनी अधीरता मिटाने अपनी कामवासना पूरी करने के लिए रथी रथ को सीधा जगल की ओर ले चला। मार्ग मे वह अनेक कल्पनाए करता जा रहा था ओर उसके साथ बढता भी जा रहा था। उस कामान्ध को सब अनुकूल ही अनुकूल बाते सूझ रही थी, प्रतिकूल बातो की ओर तो उसका ध्यान भी नही जाता था।

रथी इस प्रकार कल्पना–जगत मे उन्मत्त विचर रहा हे ओर उधर रथ मे बैठी हुई धारिणी वसुमति को उपदेश–जगत मे भ्रमण करा रही हे। वह वसुमति से कह रही है–पुत्री तू सोचती होगी कि पिताजी हमको छोड कर न मालूम कहा चले गये, ओर यह दुष्ट हमको न मालूम कहा लिये जा रहा है। अब हमारी न मालूम क्या दशा होगी? लेकिन इस प्रकार के विचार होना कायरता की बाते हैं। ऐसे विचार कायरो के ही हो सकते हे। भविष्य मे तेरे को महान् कार्य करना है इसलिए तेरे मे वीरता होनी चाहिए किचित् भी कायरता न होनी चाहिए। जिसमे वीरता हे वह किसी भी समय ओर किसी भी दशा मे घबराता नहीं हे न दूसरे का सहारा ही देखता हे। दूसरे का सहारा देखने वाला स्वय को दूसरे के आश्रित समझने वाला कायर हे। वीर तो अपनी रक्षा स्वय ही करता हे, किसी दूसर के द्वारा अपनी रक्षा नहीं चाहता। इसलिए तू तेरे पिता के जाने का किचित भी दु ख मत कर। तेरे पिता तो गये ही लेकिन में भी तेरे साथ अधिक समय तक न रह सकूगी। देख तेरे सामने ही मै इस रथी के कहने पर इसक रथ म बेठ कर चली आई। इसी तरह न मालूम किस समय तेरा साथ भी छाड दूगी। यदि तू अपने मे वीरता रखेगी तब तो तुझे अकेली रहन स किचित भी दु ख न होगा तुझे जो कार्य करने हैं वे कार्य भी कर सकेगी तथा तेरे को जो स्वप्न आया था उस स्वप्न का [illegible] भी

सत्य कर सकेगी, लेकिन यदि तू अपने पैरो पर खडी न रही, स्वावलम्बी न बनी, तो तेरे किए कुछ भी न होगा और तू दु ख करके ही मर जावेगी। इसलिए तेरे को इस बात का दु ख तो होना ही न चाहिए कि मै अकेली रह गई।

पुत्री वसुमति, अब मैं तेरे को कुछ ऐसा उपदेश देना चाहती हू कि जो तेरे जीवन का साथी, तेरे कार्य का सहायक, और स्वप्न के शेष भाग को सत्य करने का साधन होगा। यदि तू मेरे उपदेश के अनुसार ही कार्य करती रही, तो तू स्वय तो सुखी रहेगी ही, साथ ही तेरे मे इतना अधिक सुख होगा कि जो दूसरे को भी दे सकेगी। मैं आशा करती हू कि मेरे उपदेश के विरुद्ध तू किसी भी दशा मे व्यवहार न करेगी।

देख वसुमति, तूने जो स्वप्न देखा था उसका एक भाग सत्य हो गया। चम्पापुरी दु ख सागर मे डूब रही है। उस पर एक महान कलक लगा है। निष्कारण ही उसकी छाती पर सहस्रो, लक्षो मनुष्यों का रक्त बहा है। शात प्रजा की सम्पत्ति लूटी गई है। उसे पीडा पहुचाई गई है, और अधिकाश लोगो को जान तक से मार डाला गया है। जन्मभूमि चम्पापुरी पर यह एक घोर कलक है। इस कलक का लगना ही चम्पापुरी का दु खसागर मे डूबना है। चम्पापुरी तेरी जन्मभूमि है। तेरा यह शरीर यहीं के अन्न–जल से बना है। तू वही उत्पन्न हुई और इतनी बडी हुई हे। चम्पा की भूमि की तू चिरऋणी है। यदि उस पर लगे हुए कलक को तूने न मिटाया, तो तेरा जीवन धिक्कार–योग्य माना जावेगा। इसलिए जन्मभूमि चम्पापुरी पर लगे हुए कलक को मिटाने का भार तू अपने पर समझ। चम्पापुरी पर लगे हुए कलक को मिटाना ही दु खसागर मे डूबी हुई चम्पापुरी का उद्धार है और ऐसा होने पर ही तेरे स्वप्न का शेष भाग सत्य होगा।

बेटी जन्मभूमि चम्पापुरी का उद्धार करने के लिये–उस पर लगा हुआ कलक मिटाने के लिये तुझे महान् युद्ध करना होगा। युद्ध करने का मतलब तू वैसा ही युद्ध मत समझ लेना जैसा युद्ध चम्पापुरी मे हुआ हे, और जिस के कारण चम्पापुरी पर कलक लगा है। चम्पापुरी मे जो हिसात्मक युद्ध हुआ और उससे जो हानि हुई वह तूने देखी ही है। इस प्रकार युद्ध करना पशुता है। ऐसा युद्ध तो पशु भी करते हे। बल्कि मनुष्यो का ऐसा युद्ध पशुओ के युद्ध से भी बुरा है। पशु किसी कृत्रिम अस्त्र–शस्त्र की सहायता नहीं लेते। वे उन्ही साधनो से युद्ध करते हे जो उन्हे प्रकृति–दत्त प्राप्त हे। हा वे यह गलती अवश्य करते हैं कि प्रकृतिदत्त साधन दूसरे को मारने–काटने मे लगाते

हैं, लेकिन वे पशु हैं। पशुओ मे विवेक नही होता, इसीसे ऐसा करते हैं परन्तु मनुष्यो मे विवेक है, फिर भी मनुष्य प्राप्त साधनो को दूसरे की हानि मे लगाता है, ओर दूसरे की हानि करने के लिए–दूसरे को मारने–काटने के लिये–प्राप्त विवेक का दुरुपयोग करके कृत्रिम साधनो का निर्माण एव उनका उपयोग करता है। इसलिये शस्त्र–सग्राम करना पशुता से भी बुरा है। इस प्रकार के सग्राम से, न तो कभी शाति हुई ही है, ओर न हो ही सकती है। उत्तेजित होकर किसी को शत्रु मान उससे लडना किसी की हानि करना किसी के प्राण हरण करना आदि प्रकार की पशुता रखने वाले स्वय भी सुखी नही रह पाते तो दूसरे को सुख कहा से दे सकते हैं? वे तो ओर दूसरे को निष्कारण ही दु खी बनाते हैं। चम्पापुरी की प्रजा की जो दुर्दशा हुई है उसे जिस कष्ट मे पडना पडा है, वह सब हिसात्मक युद्ध की पशुता का ही परिणाम है। यदि अपराध रहा होगा, तो तेरे पिता या सतानिक का रहा होगा। प्रजा का क्या अपराध था, जो उस पर अत्याचार किया गया? लेकिन हिसात्मक युद्ध की पशुता न्याय–अन्याय नही देखती। इसके सिवा इस प्रकार के युद्ध से विजयी ओर पराजित, दोनो ही अधिकाधिक दु ख मे पड जाते हैं। जो हारता है वह तो दु खी होता ही है, लेकिन जो जीतता है वह भी सुखी नही होता किन्तु रही–सही मनुष्यता भी खो देता है ओर सतानिक की तरह निरपराधी लोगो पर अत्याचार करता है, तथा अपने लिए परलोक को अधिक दु खमय बनाता है। इसलिए तू शस्त्र–सग्राम से चम्पापुरी का उद्धार करने की कल्पना भी मत करना। तुझे चम्पापुरी का उद्धार करने अपनी जन्मभूमि अपने स्वदेश पर लगा हुआ कलक मिटाने ससार के सम्मुख एक नूतन आदर्श रखने और लोगो को शस्त्र–सग्राम की बुराई एव निरुपयोगिता– समझाने के लिए अहिसात्मक सग्राम करना होगा। अहिसात्मक सग्राम से ही तू चम्पापुरी को दु खसागर से भी निकाल सकती है, ओर उस पर लगा हुआ कलक भी मिटा सकती है।

पुत्री अहिसात्मक सग्राम मे हिसात्मक सग्राम की तरह की कोई बुराई नही है किन्तु अहिसात्मक सग्राम मे हिसात्मक सग्राम से बिलकुल ही वैपरीत्य है। इसमे हिसात्मक युद्ध की तरह की पशुता को किंचित भी स्थान नही है। इसके द्वारा किसी भी समय अपने या दूसरे को न तो अशाति होती है न दु ख। इसमे विजय–पराजय मिलने पर किसी तरह दु ख पश्चात्ताप या अभिमान भी नही होता। हिसात्मक सग्राम मे तो सब बुराई ही बुराई है लेकिन अहिसात्मक सग्राम मे सब अच्छाई ही है। इसमे हारने–जीतने मे

दु ख या पसन्नता नही होती, जीतने पर गर्व नही होता, और हारने पर ग्लानि नहीं होती। इसलिये, तुझे अपनी जन्मभूमि का उद्धार करने के लिए अहिसात्मक युद्ध ही करना चाहिये। इस युद्ध के द्वारा तू महान् से महान् विरोधी को भी अपना अनुशासन मनवा सकती है। उसे अपना हितचिन्तक बना सकती है ओर उसमे भी शत्रुता के स्थान पर मित्रता का प्रादुर्भाव कर सकती है। हिसात्मक युद्ध मे तो पराजित पतिपक्षी पुन विजय प्राप्त करने के लिए अवसर की पतीक्षा मे रहता हे उसमे वेर की वृद्धि होती है, और अवसर पाकर वह अपने पर विजय पाप्त करने वाले को पराजित करने की चेष्टा करता है। इस प्रकार हिसात्मक युद्ध मे विजय भी भयरहित नही होता, लेकिन अहिसात्मक युद्ध मे विजय-पराजय की भावना ही नही रहती वेर का चिन्ह भी नही रहता और न किसी को नीचा दिखाने का ही विचार रहता है।

बेटी वसुमति, अहिसात्मक युद्ध मे सबसे पहले धैर्य की आवश्यकता है। चाहे केसी भी विषम परिस्थिति सामने आये, कैसे भी कष्ट सिर पर हो, धैर्य कदापि न त्यागना चाहिये। और तो और, यदि मस्तक पर वज्र-प्रहार हो, शरीर के टुकडे-टुकडे हो जावे, तब भी धैर्य ही बना रहे, अधीरता को पास न आने दे। धैर्य इस सग्राम की पहली सीढी है। इस सग्राम के लिए पूरी तरह सहिष्णु रहने की आवश्यकता है। जिसमे सहिष्णुता नहीं है, जो किसी भी समय अधीर हो उठता है जो कष्टो के कारण रोने लगता है, वह कायर व्यक्ति इस सग्राम के लिए अयोग्य है। इस सग्राम मे धैर्य के साथ ही भावना का शुद्ध ओर पवित्र रहना आवश्यक है। अपना अहित करने वाले अपने को कष्ट देने वाले और अपना सर्वनाश करने वाले तक को, न तो शत्रु ही मानना चाहिए न उससे किसी प्रकार का बदला लेने की भावना का बीज ही अपने मे पडने देना चाहिए। कोई घोर से घोर अहित करने वाला हो, तब भी उसे मित्र समझकर उसके साथ मित्रता का ही व्यवहार करे। उसके प्रति शत्रुता का तो भाव ही न रखे। अपने देश का अपनी जन्मभूमि का उद्धार करने के लिए तुझे धीर सहिष्णु तथा निर्वैर रहना होगा। देश का कलक मिटाने के लिए अहिसात्मक सग्राम छेडने के पश्चात् विश्राम का तो स्वप्न भी मत देखना। तुझे अविराम काम करना होगा। भय या थकावट के कारण कभी भी शिथिलता न होने देनी चाहिए न कान मे रुई देकर घर मे सोना ही चाहिए अर्थात् निश्चिन्तता भी न होनी चाहिए। अपने कार्य को सफल करने की चिन्ता सदेव बनी रहे। तुझे इस बात का सदा ध्यान रहे कि मेरे सिर देश के उद्धार का भार है इसलिये जब तक मैं अपने पर से यह भार न उतार दू, तब तक विश्राम

या निश्चिन्तता कैसी? इस प्रकार विचार रखकर तुझे देश का कलक मिटाने के लिए अहिसात्मक युद्ध करना होगा। अहिसात्मक युद्ध द्वारा दूसरे का रक्त नहीं बहाना होगा, किन्तु स्वय के रक्त को पानी समझकर उससे देश पर लगा हुआ कलक–दाग धोना होगा। वह भी क्रोध करके नही, आखे लाल करके और भोहे चढाकर नही, किन्तु प्रसन्नता से, हर्ष से, देश पर लगे हुए कलक का दाग मिटाने के लिए तुझे अपना रक्त बहाने को भी तैयार रहना होगा। मौत से कदापि न डरना होगा किन्तु यह समझना होगा, कि यह शरीर तो नाशवान ही है, इसलिए इसके नाश से मेरी कोई हानि नही है। मैं अविनाशी हू, मेरा नाश कोई भी नही कर सकता। इस प्रकार आत्मा ओर शरीर को भिन्न–भिन्न मानकर, आत्मा को अविनाशी, तथा शरीर को नाशवान समझना ओर देश पर लगे दाग रुधिर–जल से धोने के लिए सदा तैयार रहना। देश का दाग मिटाने के लिये दिये जाने वाले बलिदान की बलि–वेदी पर चढकर तुझे प्रसन्नता पूर्वक कट मरने के लिए तैयार रहना होगा। तभी तू, देश पर लगा हुआ दाग धो सकेगी। तुझे केवल वही मार्ग अपनाना होगा जो सत्यानुमोदित हो। सत्यरहित और स्वार्थभरे मार्ग पर तो तुझे भूलकर भी पाव न रखना चाहिए। यह सब करती हुई अपने मे सदा यही भावना भरती रहना कि धर्म की अवश्य ही जय होगी, और जीवित हू तो मातृभूमि के लिये तथा मरूगी तो मातृभमि के लिए।

पुत्री तू कह सकती हे कि आपने जो बाते अहिसात्मक युद्ध के लिए बताई हैं, हिसात्मक युद्ध मे भी उनका होना आवश्यक माना जाता है। हिसात्मक युद्ध–शस्त्र सग्राम के लिए भी धर्म एव सहिष्णुता की आवश्यकता हे ओर जिसमे ये नही हें, वह शस्त्र–सग्राम भी नही कर सकता। इसी प्रकार हिसात्मक युद्ध मे भी भय, थकावट विश्राम निश्चिन्तता का स्थान नहीं है। ऐसा युद्ध करने वाला भी अपने पर किसी कार्य विशेष का भार समझता है वह भी मौत से नही डरता है। प्राणो की परवाह नहीं करता हे ओर मरने के लिए–अपना बलिदान करने के लिए–सदा हर्ष सहित तैयार रहता है। ऐसी दशा मे हिसात्मक युद्ध ओर अहिसात्मक युद्ध म क्या अन्तर रहा? इस प्रकार कहा जा सकता है परन्तु यदि तू ऐसा कहे तो मैं यही कहूगी कि तूने हिसात्मक युद्ध आर अहिसात्मक युद्ध का भेद नहीं समझा है। यद्यपि हिसात्मक युद्ध मे भी धैर्यादि बाते अवश्य होती हैं लेकिन वे दूसरे को मारने के लिए दूसरे की हानि करने के लिए। उसकी भावना यही रहती है कि मैं दूसरे बहुत शत्रु–पुरुषो को मारू। उसे क्रोध होता है [illegible]

हे दूसरे पर विजय प्राप्त करने की, दूसरे को आधीन करने की, दूसरे का अपमान करने की और दूसरे से बदला लेने की–इच्छा। अहिसात्मक सग्राम मे इन बातो को स्थान नहीं है। अहिसात्मक युद्ध करने वाला स्वय तो मरने के लिए तेयार रहता है लेकिन दूसरे को मारने की इच्छा नही रखता। वह सोचता है कि में चाहे मर जाऊ, पर किसी को मारू नहीं। वह किसी से बैर नही रखता। किसी से बदला नही लेना चाहता। किसी को अपने आधीन करने वाले को भी इस लोक या परलोक का भय नही दिखाता। हिसात्मक सग्राम करने वाला कभी तो आगे बढ जाता है और कभी पीछे को भी भाग जाता हे। अहिसात्मक सग्राम मे हार खाकर भागने की जरूरत नही है, न किसी के किये हुए आघात से घबरा कर रोने या उसे उपालम्भ देने की। इस प्रकार, हिसात्मक सग्राम करने वाले मे और अहिसात्मक सग्राम करने वाले मे ठीक वैसा ही अन्तर होता है जैसा अतर छत्तीस के और त्रेसठ के अक मे है। हिसात्मक युद्ध करने वाला 9 के सिवा शेष अको की भाति घटने–बढने वाला होता है। वह कभी अपने को बडा और सुखी समझता है, तथा कभी हीन और दु खी। लेकिन अहिसात्मक युद्ध करने वाला 9 के अक की तरह होता है। जो चाहे जितने से गुणा किया जाने पर भी जोड मे 9 ही रहता है, कम ज्यादा नहीं होता। चाहे कैसी भी विषम स्थिति हो चाहे जैसा घोर कष्ट हो, वह अपना स्वभाव नही त्यागता दु खी नहीं होता, और चाहे जैसा यशस्वी हो जावे तब भी प्रसन्न होकर बढता नही है, किन्तु वैसा ही बना रहता है। हिसात्मक युद्ध और अहिसात्मक युद्ध तथा इन दोनो के करने वालो मे इसी प्रकार के ओर भी बहुत से अन्तर हैं।

वसुमति अब तू यह भूल जाना कि मैं राजकुमारी हू। साथ ही यह भी मत समझ कि में दीन–हीन हू। अपने आपको दीन–दु खी या राजकुमारी न समझकर सब छोटे–बडे काम स्वय के हाथ से करने होगे। किसी भी काम के करने मे दु ख मत मानना और अहिसात्मक सग्राम मे आगे बढती ही जाना। हाथ से काम करने मे अपने पर किसी आपत्ति के आने के समय और स्वय का बलिदान करने का अवसर होने पर तू यह विचार मत लाना कि मैं राजकुमारी हू। परन्तु आज केसी विपत्ति मे हू? इस प्रकार का विचार होने पर तू स्वय ही दु ख–सागर मे डूब जावेगी दूसरे का उद्धार क्या करेगी? तुझे इन दो को तो सदा के लिए विदा करना होगा। दु ख और क्रोध को तो अपने पास फटकने ही मत देना। इसी प्रकार सदा निर्भय ही रहना। किसी दूसरे से मर जाना तो अलग बात है लेकिन साक्षात मृत्यु भी तेरे सामने आ जावे

तो उससे भी भय मत खाना। इस नश्वर शरीर के लिए किसी से भयभीत होने की क्या आवश्यकता हे? ओर यदि इसको अविनाशी माना जावे तब भी भय क्यो? इसलिए कभी भी भय तो करना ही मत। शरीर नाशवान् है ओर सत्य अविनाशी है। शरीर देकर सत्य की रक्षा तो अवश्य करना। लेकिन सत्य देकर शरीर की रक्षा करने का विचार तक भी मत लाना। जय सदा सत्य के अध ीन है। जहा सत्य है, वही विजय है, वही लक्ष्मी है, वही सुख हे। इसलिए सत्य के वास्ते शरीर को तुच्छ समझकर मरने के लिए भी तैयार रहना। कायरो की भाति आत्महत्या की आवश्यकता नही है, लेकिन सत्य की रक्षा के लिए जन्मभूमि पर लगा हुआ कलक मिटाने के लिए अपना बलिदान करने को अपने प्राण न्यौछावर करने को, सदा तत्पर रहना। मातृभूमि के हित के समय मरण–भय, या जीवन की आशा मत रखना, यदि मेरे मे भय होता तो मे रथ मे बैठकर इस प्रकार निर्भयता से न चली आती, और तुझे जो शिक्षा दी हे वह भी न दे पाती। अब भी आगे क्या होगा, यह मै नही कह सकती, लेकिन तेरे से तो यही कहती हू कि चाहे मैं रहू, या न रहू, मेरी इस शिक्षा को कदापि मत भूलना। यदि तूने मेरी शिक्षा के अनुसार ही व्यवहार किया तो तू देश पर लगा हुआ कलक मिटाने मे भी समर्थ होगी दु खसागर मे डूबी हुई चम्पापुरी का उद्धार करके स्वय का स्वप्न भी सत्य कर सकेगी ओर अपनी आत्मा का उत्थान भी कर सकेगी। इसलिए स्वय मे वीरता रखकर धर्म के लिए जीने या मरने को तेयार रहना।

देह–धारिणी वीरता की तरह रथ मे बेठी हुई धारिणी वसुमति को इसी प्रकार उपदेश देती जा रही है, ओर सामने बेठी वसुमति एकटक माता की ओर देखती हुई माता की शिक्षा को हृदयगम करती जा रही हे। वह उस समय माता की आकृत्ति पर ऐसा तेज देख रही है, माता स वीरता की व बात सुन रही है, और माता मे ऐसा साहस देख रही हे जेसा तेज ओर साहस उसने पहले कभी नही देखा था, न ऐसी वीरता की वात ही पहल कभी सुनी थीं। वह माता का उपदेश अतृप्त बनकर सुन रही थी ओर उस शिक्षा को अपने हृदय मे उसी प्रकार स्थान दे रही थी जिस प्रकार शिक्षक की वाणी को विद्यार्थी अपने हृदय मे स्थान देता हे।

बलिदान

सतीत्व–रक्षा के लिए भारत की स्त्रियाँ सदा से प्रसिद्ध ही रही हैं। भारत मे ऐसी अनेक स्त्रिया हुई हैं, जिन्होने अपना सर्वस्व यहा तक कि अपने प्राण तो हसते–हसते दे दिये, लेकिन अपना सतीत्व नहीं दिया। उनको सतीत्व से विचलित करने मे कोई भी शक्ति समर्थ नहीं हुई। साम, दाम, दण्ड ओर भेद चारो ही नीति उनके सामने असफल रही। वे जीवन भर घोर यातनाए तो सहती रही उन्होने अपने सामने ही अपने प्रियजनो का करुणवध तो देखा फिर भी सतीत्व–त्यागने का विचार तक नही किया। इसके अनेको उदाहरण हे– सीता को रावण ने भय भी दिखाया, कष्ट भी दिया ओर सब तरह का प्रलोभन भी दिया यहा तक कि एक ओर तो राम को मार डालने का भय दूसरी ओर उसे पटरानी बनाने का लोभ दिया, लेकिन वह सीता को अपने अनुकूल न कर सका। अपने पति के मरने पर असहाय मदनरेखा ने सतीत्व–रक्षा के लिए वन की शरण तो ली लेकिन सतीत्व के बदले राजसुख लेना स्वीकार नही किया। चितौड की रानी पद्मिनी आग मे कूदकर भस्म तो हो गई परन्तु सतीत्व खोकर जीवित रहना पसन्द नहीं किया। देवल देवी ने स्वय को जीवित ही दीवार मे चुनवा लिया परन्तु सतीत्व न जाने दिया। राखेगार की रानी राणक देवी ने अपनी आखो से अपने पति ओर पुत्र की मृत्यु देखी लेकिन सतीत्व देकर उनकी रक्षा न चाही। जसमा ओडण मजदूरी करती थी परन्तु उसने सतीत्व के बदले रानी बनकर सुख करना स्वीकार नहीं किया ओर अन्त मे सतीत्व की रक्षा के लिए ही पति–सहित कट मरी। इसी प्रकार के सैकडो–हजारो उदाहरण ऐसे हें जिनसे यह स्पष्ट हे कि भारत की [illegible] सतीत्व के सन्मुख ससार के समस्त पदार्थो–समस्त सुखो को तुच्छ [illegible] ओर सतीत्व की रक्षा के लिए घोर से घोर कष्ट भी हर्ष से सहती [illegible] का उदाहरण भी इस विषय मे एक ही ह लेकिन यह

उदाहरण दूसरे समस्त उदाहरणो से भिन्न है। धारिणी का उदाहरण कुछ दूसरी ही विशेषता रखता हे।

जिस रथ मे वसुमति सहित धारिणी बैठी हुई थी वह रथ वन की ओर चला जा रहा था। रथी उस रथ को घोर तथा निर्जन वन मे ले गया। अपने कार्य के लिए उस स्थान को उपयुक्त समझ कर रथी ने रथ को वहा रोक दिया। उसने सोचा कि यहा पर और कोई नही है, इसलिए नीति के साम, दाम, दण्ड ओर भेद, इन चारो अग से काम लेकर स्वर्गीय अप्सरा के रूप को भी लज्जित करने वाली इस सुन्दरी से सुख भोगना चाहिए। मेरा जन्म तमी सार्थक हे, मेरा युद्ध करना तभी सफल है, और मेरा रत्नो का लोभ त्यागना, तथा इस सुन्दरी को लेकर वन मे आना तभी लाभप्रद है जब यह मोहिनी मुझसे प्रेम करे। इस समय यह मेरे अधीन है। यहा इसका कोई रक्षक नही है, न इसे किसी ओर से कोई आशा ही है, अत यह मुझे वैसे भी स्वीकार कर लेगी, और यदि इसने सीधी तरह से मुझे स्वीकार न किया तो फिर मैं नीति का प्रयोग करूगा। बडे–बडे योद्धा और त्यागी लोग भी नीति के जाल मे फस जाते हैं, तो इस स्त्री का फसना क्या कठिन है? लेकिन नीति का प्रयोग करने मे दण्ड नीति को पहिले ही काम मे लाना ठीक न होगा। चाहे दण्डनीति सफल भी हो जावे, ओर दण्ड के भय से यह मुझे स्वीकार भी कर ले, तब भी दण्ड नीति से विवश होकर मुझे स्वीकार करने पर इसके साथ किये गये सभोग–सहवास से वैसा आनन्द नही मिल सकता जेसा आनन्द दण्ड के सिवा नीति के शेष अगो के प्रयोग के वश होने पर मिल सकता है। इसलिए पहले दण्डनीति का सहारा न लेना चाहिए किन्तु साम दाम ओर भेद नीति से ही काम लेना चाहिए। दण्डनीति से तो तभी काम लेना चाहिए जब ओर किसी उपाय से काम न चले।

इस प्रकार का विचार कर रथी ने रथ के पर्दे खोल आर धारिणी से नीचे उतरने के लिए कहा। रथी के कहने पर वसुमति सहित धारिणी रथ से उतर कर समीप के एक वृक्ष की छाया मे बेठ गई। रथी निशक था अत उसने धारिणी पर नजर गडा कर उसे भली भाति देखा और मन ही मन उसके रूप–लावण्य की प्रशसा करके, यह विचारकर प्रसन्न होने लगा कि अभी थोडी ही देर मे यह मूर्तिमान सुन्दरता मुझे पति रूप स्वीकार करेगी और मैं [illegible] आलिगन करके अपने जीवन को सफल बनाऊगा। इस प्रकार [illegible] से घिरा हुआ रथी धारिणी स कहन लगा–ह सुन्दरी [illegible] मैं तुम्हारे अनुपम रूप पर मुग्ध हू। ह मीनाक्षी! तुम्हार नयन [illegible]

व्यथित कर दिया है। सुन्दरी, तुम्हारे इस सुन्दर शरीर का आलिगन करने के लिए मै बहुत उत्कठित हू, तुम्हे पाकर मै अपने को भाग्यशाली मानता हू। तुमको इस वन मे मै जिस उद्देश्य से लाया हू उसे तो तुम समझ ही गई होगी, इसलिए अब विलम्ब मत करो और तुम जैसी सुन्दरी हो, वैसा ही सुन्दर विचार करो तथा मुझे अपनाओ। तुम बुद्धिमती हो, इसलिए यह तो समझती ही होगी, कि इस समय तुम किस स्थिति मे हो? इस स्थिति मे तुम्हे किसी न किसी पुरुष का आश्रय ग्रहण करना ही होगा। मेरी इच्छा है कि यह सौभाग्य मुझे ही प्राप्त हो। मुझे सोभाग्यशाली बनाना तुम्हारे ही हाथ है।

किसी कामी और व्यभिचारी की ऐसी बातो को सुनकर प्राय प्रत्येक सदाचारिणी की आखे लाल हो आना और ऐसा करने वाले पर क्रोध होना, एव अपने असमय के कारण दु ख होना स्वाभाविक है, लेकिन रथी की बाते सुनकर धारिणी के मुख पर सल भी नही आया। उसे न तो दु ख हुआ, न क्रोध। वह सोचती है कि मेरे सदाचार की परीक्षा का समय तो यही है। यही समय मेरे धैर्य मेरे साहस और मेरी शक्ति की कसौटी है। जिस समय तक कोई विषम परिस्थिति सामने नही आई है, जब तक किसी विपत्ति का सामना नही करना पडा है और जब तक कोई अन्य पुरुष इस प्रकार प्रार्थना नही करता है तब तक तो प्राय प्रत्येक स्त्री धैर्यवती साहसिन तथा सदाचारिणी भी रह सकती है। विशेषता तो उस स्त्री की है, जो ऐसे समय मे साहस रखे, धैर्य न त्यागे सदाचारिणी रहे और अपना धर्म नष्ट न होने दे। यह रथी वीर है इसी से मुझे बडाई प्रदान कर रहा है। इस समय इसकी दृष्टि मे विकार भरा हुआ है। इससे यह इस तरह की बाते कर रहा है फिर भी इसका वीर–स्वभाव इसके मुख से मेरे लिए उपदेश भी निकलवा रहा है और इसी से यह कह रहा है कि तुम जैसी सुन्दरी हो वैसा ही सुन्दर विचार करो। यह मेरा ध्यान इस विषम स्थिति की ओर भी खीच रहा है। मुझे इसकी विकारभरी बाते [illegible] उन बातो के साथ कर्त्तव्य पर दृढ करने वाला जो उपदेश मिल रहा [illegible] उसे ही उसी प्रकार ग्रहण करना चाहिए जिस प्रकार मिले हुए दूध पानी [illegible] पानी को छोडकर दूध को ही ग्रहण करता है। यह मेरे द्वारा अपना [illegible] करना चाहता है। वास्तव मे जब मै इसको अपना भाई मानती [illegible] इसका जीवन सफल करना ही चाहिए और इसमे जो विकार घुस [illegible] निकालने का प्रयत्न करना चाहिये। इसका यह कथन ठीक ही [illegible] स्वय को भाग्यशाली मानता हू। जो बहन भाई को [illegible] स्वय का बलिदान करने तक को तयार रहे उस बहन के

मिलने पर भाई को अपने भाग्य की सराहना करना उचित ही हे। वास्तव मे मैं इसे इसके सौभाग्य से ही मिली हू, अन्तर हे तो केवल यही कि यह स्वय को बुरे मार्ग से सद्भागी बनाना चाहता हे और मैं इसे बुरे मार्ग से बचाकर अच्छे मार्ग द्वारा सद्भागी बनाना चाहती हू।

इस प्रकार विचारती हुई धारणी मुस्कराई। धारिणी को मुस्कराती देखकर रथी के हृदय मे प्रसन्नता की लहर दौड गई। इस विचार से वह प्रसन्न हो उठा कि इसने मेरे कथन पर ध्यान दिया है उसे ठीक समझकर ही यह मुस्कराई हे और अब थोडे ही अनुरोध पर मेरी प्रेयसी बनना स्वीकार कर लेगी।

इस प्रकार की आशा से प्रफुल्लित होकर रथी धारिणी से फिर कहने लगा—हे हृदयेश्वरी, कमल—पुष्प के समान विकसित तुम्हारे सुन्दर नेत्र देखकर मेरे हृदय मे हर्ष का पार नही रहा। तुम्हारे विकसित कमल—नेत्र देखकर मे भ्रमर की तरह उन्मत्त हो उठा हू। तुम्हारी मधुर मुस्कान यह बता रही हे कि तुम मेरी प्रार्थना को—अनुचित नही समझती फिर भी तुमने मेरी प्रार्थना को स्पष्ट स्वीकृति नहीं दी। इसका कारण भी में समझ गया हू। तुम समझती होगी कि मै राजपुत्री हू, अब तक एक राजा की रानी रही और अनेक दास—दासियो से सेवित रही हू। कभी किसी ने भी मुझ पर अनुशासन नही किया। इसी प्रकार अब तक मेंने सब तरह के सुख भोगे हैं। अब इस पुरुष के यहा मेरे साथ न मालूम केसा व्यवहार हो और न मालूम मुझे सुख मिले या दु ख। मैं समझता हू कि ऐसे ही सशयो के कारण तुमने मेरी प्रार्थना की स्वीकृति प्रकट न की होगी। वास्तव मे तुम बुद्धिमती हो, इससे तुम्हारे हृदय मे इस प्रकार का सशय होना स्वाभाविक हे। लेकिन मे तुम्हारा सशय मिटाए देता हू। में प्रतिज्ञा करता हू कि तुमको अपनी प्रेयसी बनाकर भी मैं तुम पर अपनी आज्ञा नही चलाऊगा किन्तु स्वय तुम्हारा आज्ञाकारी रहूगा। मैं तुम्हें मेरे प्राणो की स्वामिनी बना रहा हू। इसलिए मेरा शरीर ही नहीं किन्तु मेरे प्राण भी तुम्हारी आज्ञा का पालन करेगे। वे भी तुम्हारे सकेत पर ही इस शरीर मे रहेगे और इससे बाहर होगे। जब मेरे प्राण भी तुम्हारी आज्ञा का पालन करेगे तो शरीर तो प्राणो के ही अधीन हे इसलिए वह तो तुम्हारी आज्ञा का पालन करेगा ही। में तुम्हारे साथ कदापि विश्वासघात न करूगा। [illegible] कुछ कह रहा हू, उसका अक्षरश पालन करूगा। मैं वीर क्षत्रिय हू [illegible] प्रतिज्ञा करता हू, उसको पूरी तरह निभाता हू, तुम मेरे द्वारा की [illegible] पर विश्वास करो। यदि तुम्हे ऐसे विश्वास न हो तो [illegible]

हू कि यदि मै तुम पर आज्ञा चलाऊ, तुम्हारा आज्ञाकारी न रहू, और तुम्हारे सुख का पूर्णत ध्यान न रखू, तो मैं क्षत्रिय नही, मुझे गोहत्या, स्त्रीहत्या और बालहत्या का पातक लगे। मैं ईश्वर और धर्म को साक्षी करके कहता हू कि मेरी विशाल-सम्पत्ति की एकमात्र स्वामिनी तुम्ही होओगी। तुम उसका जिस तरह भी चाहो, उपयोग कर सकती हो। मैं तुम्हारे किसी कार्य मे हस्तक्षेप न करूगा तुम्हारी किसी भी बात को अनुचित न कहूगा, किन्तु सदा उसी तरह तुम्हारा सेवक रहूगा जिस तरह आज्ञाकारी और स्वामीभक्त भृत्य रहता है। लो अब तो तुम्हारे हृदय का सशय मिट गया न? अब तो मेरी प्रार्थना स्वीकार करके मुझे अपनी सेवा का सुयोग प्रदान करो।

रथी की इन बातो को सुनकर भी धारिणी पहले की ही भाति प्रसन्न थी और अपने मन मे सोच रही थी कि काम की महिमा विचित्र है। यह पुरुष सतानिक का महारथी है इसकी वीरता पर सतानिक विश्वास करता है, और इसकी आकृति बताती हे कि यह वीर है भी, तथा यह स्वय को वीर समझता भी है। फिर भी यह मेरे बिना कहे-सुने ही मेरा आज्ञाकारी सेवक बनने के लिए तेयार हुआ है और इस प्रकार की शपथ खा रहा है। वैसे तो कोई इसे कहता कि तुम मेरे आज्ञाकारी सेवक बनो और इसको अपना आज्ञाकारी सेवक बनाने के लिए कोई इसे बडी-बडी सम्पदा भी देने लगता, तब भी शायद यह ऐसा प्रस्ताव स्वीकार न करता और आश्चर्य नही कि ऐसे प्रस्ताव स अपना अपमान समझकर प्रस्तावक का शिरोच्छेद करने को तैयार हो जाता। लेकिन इस समय यह स्वय ही मेरा आज्ञाकारी सेवक बनने की प्रतिज्ञा करता है तथा शपथ खा रहा है। यह सब क्यो कर रहा है? केवल काम के वश होकर अपनी दुर्भावना पूरी करने के लिए। धिक्कार है काम को। जो ऐसे वीर भाई को भी इस तरह पतित कर रहा है कायर बना रहा है ओर भ्रष्ट कर रहा है। इस समय मेरा यह कर्त्तव्य है कि इसे पतित न होने दू, कायर न बनने दू ओर इसकी गणना भ्रष्टो मे न होने दू, यह मेरा आज्ञाकारी सेवक बनने को तैयार है फिर भी यदि मै कोई उपकार ओर बहन का कर्त्तव्य पूरा न करू तो यह ठीक न होगा। जब यह मेरे लिए सब कुछ करने को तेयार है तो मुझे भी इसका कल्याण करना चाहिए।

बिना किसी दुख के स्वाभाविक प्रसन्नता के साथ धारिणी इस प्रकार विचार कर रही थी। उसके चहरे का उतार-चढाव तथा उसकी [illegible] प्रसन्न मुखमुद्रा देखकर रथी प्रसन्न हो रहा था और सोच रहा था कि [illegible] प्रस्ताव को स्वीकार करने के विषय मे ही विचार कर रही है। कुछ

ही क्षण मे इसके मुख से ये शब्द सुनाई देगे कि 'मैं तुम्हारी बात स्वीकार करती हू।' इस प्रकार की आशा करता हुआ रथी इस प्रतीक्षा मे था कि इस रमणी का मुह कब खुले और उसमे से मुझे सुख देने वाले अमृत वचन कब निकले। वह धारिणी का उत्तर सुनने के लिए अधीर हो रहा था। इतने ही मे उसने देखा कि धारिणी का मुह खुल रहा हे ओर वह कुछ कहना चाहती हे। आशा-नदी की तरगो मे गोते लगाता हुआ रथी धारिणी के मुह से अनुकूल उत्तर सुनना चाहता था, लेकिन धारिणी ने जो उत्तर दिया उससे रथी की आशा को बडा धक्का लगा। रथी की प्रार्थना के उत्तर मे धारिणी कहने लगी—भाई तुम अपने आपको कह तो रहे हो वीर। पर ऐसी अनुचित बातो मे जान पडता है कि इस समय तुमको अपनी वीरता एव उचित-अनुचितता का ध्यान नही है। तुम मुझे सुन्दरी कह रहे हो, मेरी प्रशसा कर रहे हो ओर कहते हो कि सुन्दर विचार करो, परन्तु मुझसे तुम चाहते हो इसके विपरीत। मैं तुम्ही से पूछती हू कि नियम-धर्म पालन करने का विचार सुन्दर कहा जावेगा या नियम-धर्म-भग करने का विचार सुन्दर माना जावेगा? मुझे सुन्दरी बताकर ओर मुझसे सुन्दर विचार करने का कहकर भी तुम मुझसे यह चाहते हो कि मैं धर्मनियम को बिदा करके तुम्हारी दुर्वासना पूरी करू। तुम्हारी बुद्धि मे यही बुराई आ गई हे ओर इसी से तुम कहते कुछ हो तथा चाहते कुछ हो। यदि तुम वीर हो, तो वीरोचित बाते तथा कार्य करो। इस प्रकार की बात कायरोचित ही कही जा सकती हैं, वीरोचित कदापि नही हो सकती। जो वीर हे, वह इस प्रकार परस्पर-विरुद्ध बाते कदापि नही कह सकता। इसलिये तुम अपनी बुद्धि को ठीक करो अपने को सम्हालो ओर ऐसी बात न [illegible] न ऐसा कार्य करने का ही विचार करो जो वीरता का कलक लगाने वाला है। कदाचित् तुम मेरी बात न मानो तब भी मे तुम्हारी बहन हू। इसलिए [illegible] कर्त्तव्य हे, कि में तुम्हारी रक्षा करू। मेरी बात तुम्हारी समझ मे तभी आ सकती हैं, जब तुम अपनी बुद्धि को ठीक करो अपने मे उन्मतता न रहने दो ओर [illegible] द्वारा पहले की गई प्रतिज्ञा का विचार करो। तुमने मेरे आज्ञावर्ती [illegible] मेरे साथ विश्वासघात न करने आदि की प्रतिज्ञाए की ओर उन पर [illegible] के लिये शपथे खाई हें परन्तु तुम्हारी प्रतिज्ञाओ ओर शपथो पर कौन [illegible] करेगा? जो व्यक्ति पूर्व की प्रतिज्ञा ओर शपथ तोड डालता [illegible] प्रतिज्ञा या शपथ पर कोई विश्वास नही करता। यही बात [illegible] समझो। मेरे समीप तुम्हारी प्रतिज्ञा या शपथ का कोई मूल्य नही [illegible] जिस तरह तुम मेरे से प्रतिज्ञा कर रहे हो मेरे सामने शपथ [illegible]

तरह मेरी भोजाई अर्थात् तुम्हारी पत्नी के सामने भी तो तुमने वही प्रतिज्ञा की थी ओर शपथ खाई थी। लेकिन आज तुम उस प्रतिज्ञा तथा शपथ को तोडने के लिये तैयार हो गये या नहीं? क्या यही तुम्हारी वीरता है? ऐसी दशा मे तुम्हारी अब की जाने वाली पतिज्ञा तथा शपथ पर कौन विश्वास करेगा? तुमने अपने विवाह के समय अनेक लोगो के सामने धर्म ईश्वर, अग्नि, नदियो ओर देवताओ का आह्वान करके अपनी पत्नी से इन सबकी साक्षी मे जो पतिज्ञाए की थी उनके पालन मे ही जब तुम वीरता छोड रहे हो व कायरता धारण कर रहे हो तब अब की जाने वाली पतिज्ञा के लिए वीर कैसे रह सकते हो? भाई यदि तुम वीर हो यदि तुम प्रतिज्ञा और शपथ भग नही करते हो, यदि तुम धर्म को जानते हो, तो उन पतिज्ञाओ से पतित होने का विचार भी मत करो जो तुमने विवाह के समय अपनी पत्नी से की थी। तुम्हारी पत्नी ने तुमसे वचन लिया था कि तुम पर-स्त्री का चाहे वह रम्भा और रमा के समान ही सुन्दरी क्यो न हो, सेवन न करोगे, किन्तु उसे माता या बहन मानोगे। तुमने अपनी पत्नी को यह वचन दिया था और वचन का पालन करने की प्रतिज्ञा की थी। फिर आज उस प्रतिज्ञा को तोडकर दूसरी प्रतिज्ञा कैसे कर रहे हो? ओर यदि तुम उस प्रतिज्ञा को तोडना भी चाहो तो मैं तुम्हारी बहन तुमको पतित कैसे होने दूगी? वीर! कदाचित् तुम मेरे समझाने को न भी मानो, पहले की हुई पतिज्ञा की अवहेलना करने को तैयार भी हो जाओ, वीरता का परित्याग भी कर दो तब भी मै तो अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ ही रहूगी। में पत्नी तो महाराज दधिवाहन की ही हू, तुम्हारी तो बहन ही हू। तुमने जो प्रतिज्ञा अपनी पत्नी से की थी उसके अनुसार में भी तुम्हारी बहन हू, ओर मेंने अपने पति से जो पतिज्ञा की थी उसके अनुसार भी तुम्हारी बहन हू, तुमने अपनी पत्नी से कहा था कि मेरे लिए पर-स्त्री, माता और बहन के समान हे। इसी प्रकार मैने भी पति से प्रतिज्ञा की थी कि मेरे लिए पर-पुरुष पिता भ्राता ओर पुत्र के समान है। इन दोनो ही प्रतिज्ञा के अनुसार तुम मेरे भाई हो ओर मे तुम्हारी बहन हू। तुम चाहो अपनी प्रतिज्ञा से भष्ट हो जाओ लेकिन मे क्षत्रिय-कन्या हू, वीर-पुत्री हू और वीर-पत्नी हू, इसलिए में अपनी प्रतिज्ञा पर मेरु पर्वत से भी अधिक अविचल रहूगी। मेने पति को जो वचन दिया हे वह कदापि भग न होने दूगी चाहे मेरे प्राण ही क्यो न चले जावे। में तुमसे भी

स्थिर रहते हैं। फिर तुम निष्कारण ही भ्रष्ट प्रतिज्ञ क्यो बन रहे हो और अपने मुख से अशोभनीय वचन निकाल कर मुख को दूषित क्यो कर रहे हो? भाई अपने को सम्हालो, अपनी पहले की प्रतिज्ञाओ को याद करो और बहन स न कहने योग्य बात मत कहो।

धारिणी की बाते सुनकर रथी कुछ लज्जित तो हुआ लेकिन कामुकता के कारण उसकी लज्जा अधिक समय तक न ठहर सकी। उत्पन्न लज्जा के जाते ही वह सोचने लगा कि मेरी—साम दाम नीति का प्रयोग तो व्यर्थ गया। इसने तो मुझे ही निरुत्तर कर दिया। इसकी बुद्धिमत्तापूर्ण बातो ने मुझे और अधिक मुग्ध कर लिया है। लेकिन कुछ भी हो, इस बुद्धिमती और सुन्दरी को तो अपनी प्रेयसी बनाना ही चाहिये।

इस प्रकार निश्चय करके रथी फिर धारिणी से कहने लगा कि तुमने जो कुछ कहा वह उचित है। मैं तुम्हारे इस कथन को स्वीकार करता हू कि मैंने अपनी पत्नी को जो वचन दिया है, उसका पालन करू। मे उस प्रतिज्ञा का पालन भी अवश्य करूगा। यदि तुम मुझ से यह कहती कि तुम मेरे से प्रेम करने के लिए पहले अपनी पत्नी को त्याग दो तब तो मैं तुमको हृदयहीन और स्वार्थिनी समझता, लेकिन तुमने ऐसा नही कहा, किन्तु तुमने जो कुछ कहा हे, वह तुम्हारे उदार हृदय और नि स्वार्थपने का परिचायक है। तुम्हारी बातो से में तुम पर ओर अधिक मुग्ध हो गया हू। में तुम्हारी बुद्धिमता की भूरि—भूरि प्रशसा करता हू ओर तुम्हे विश्वास दिलाता हू कि तुमको अपनाकर भी—तुम्हारा सेवक रह कर भी में अपनी पत्नी को दिये गये वचन का पालन करूगा उसका परित्याग कदापि न करूगा। मे न तो तुम्हे ही धोखा दूगा न उसे ही किन्तु दोनो ही को अपनी आखो के सामने आदर से रखूगा। में धर्म की मर्यादा को जानता हू, इसलिये उस मर्यादा का उल्लघन कदापि न करूगा। लेकिन इस समय मेरे एक ही पत्नी हे, ओर वह भी तुम्हारी तरह की सुन्दरी नही है। अत में चाहता हू कि एक तुम ओर एक वह एसी दो पत्नी हो जाव। इस समय तक में एक ही पत्नी होने के कारण जेसा एक आख वाला ही हू। जब तुम भी मुझे अपना सेवक वना लोगी तव जेसे मेरी दोनो आखे हो जावेगी। इसलिए तुम किसी दूसरी तरह का विचार मत करो किन्तु मैं जो कह रहा हू, उसे सत्य समझो।

रथी की वातो क उत्तर म धारिणी न उसस कहा - [illegible] तुम इतने अधिक स्वार्थ क अधीन हो रहे हो कि तुमको [illegible] उचित—अनुचित सूझ ही नही पडता है। यदि [illegible]

कहते, कि मैं पहली प्रतिज्ञा भी भग न करूगा, और अब जो प्रतिज्ञा कर रहा हू, वह भी भग न करूगा। मैं तुमसे पूछती हू कि तुमने विवाह के समय अपनी स्त्री से जो प्रतिज्ञा की थी, क्या उसमे यह बात थी कि मे तुमको भी रखूगा ओर दूसरी स्त्री लाऊगा, उसको भी रखूगा? यदि उस समय की गई प्रतिज्ञा मे यह बात नही थी तो फिर यह केसे कहा जा सकता है कि तुम उस प्रतिज्ञा को भग नही करना चाहते। भाई, इस समय आपकी बुद्धि ही विपरीत हो रही है इसीसे परस्त्री जो तुम्हारी बहन है, उसे भी अपनी स्त्री बनाना चाहते हो, ओर ऊपर से धर्म को बीच मे डालकर कह रहे हो कि मैं भ्रष्ट–प्रतिज्ञ नही हो रहा हू। मैं तो पर स्त्री को अपनी बनाने की इच्छा करने वाले पुरुष की बार–बार निन्दा करती हू, उसे कायर समझती हू, और पुन–पुन धिक्कार देती हू।

धारिणी की बातो का रथी पर कोई अनुकूल प्रभाव नही पडा। वह सोचने लगा कि यह इस तरह नहीं मानती तो क्या हुआ, किसी न किसी तरह तो मानेगी ही। इस समय यह सर्वथा मेरे अधीन है, इसलिए जैसे भी मानेगी, वैसे ही मनाऊगा। मैं चाहता हू कि दण्ड नीति का आश्रय न लेना पडे, इसी से मैंने साम दाम का प्रयोग किया था लेकिन मेरा यह प्रयोग तो इस पर सर्वथा निष्फल हुआ। इसलिये भेद–नीति से काम लेना चाहिये, और जब वह भी सफल न होगी तब दण्डनीति तो है ही।

इस प्रकार निश्चय करके रथी फिर धारिणी से कहने लगा–हे मधुर भाषिणी तुम्हारी बाते तो बुद्धिमानी की हैं, लेकिन इस समय तुम्हारा ध्यान केवल एक ही ओर है दूसरी ओर नही है। तुम मेरी प्रतिज्ञा को तो देख रही हो लेकिन स्वय के हिताहित को नही देखती। इस बात को नहीं सोचती कि मे जो कुछ भी करना चाहता हू, वह किसलिए? मैं तुम्हारा उपकार करने के लिए ही तुमको अपनाना चाहता हू, और इसीलिए तुम्हारा सेवक बनने को तैयार हू, तथा तुमसे अनेक प्रतिज्ञा कर रहा हू। मे यदि अपनी पहली प्रतिज्ञा से भ्रष्ट भी होता हू–उसका उल्लघन भी करता हू–तो वह तुम्हारा उपकार करने की बुद्धि से ही। मैं सोचता हू कि कौए के गले मे रत्न शोभा नही देता। कौए के गले मे रत्न देखकर भी उसे कौए के गले मे ही रहने देना रत्न का अपमान करना है। कोई महान मूर्ख भी मूल्यवान और सुन्दर रत्न को ऐसे स्थान पर न रहने देगा जहा उसका अपमान हो। कोई व्यक्ति यदि कोए के गले मे पडी हुई रत्नमाला प्राप्त करके उसका सम्मान बढावे तो यह कोई अपराध नही है किन्तु रत्न पर उसका उपकार है। यह बात मेरे और तुम्हारे

विषय मे भी समझो। तुम जैसी सुन्दरी और वीर–पुत्री, कायर दधिवाहन के पाले पडे यह तुम्हारा अपमान हे। तुम्हारी शोभा दधिवाहन जेसे कायर व्यक्ति के साथ नहीं हो सकती। दधिवाहन बिल्कुल कायर हे। उसमे वीरता का अश भी नही है। जिसमे वीरता है वह क्षत्रिय–पुत्र युद्ध स्थल मे लडता हुआ चाहे मर तो जावे, लेकिन रण के भय से भाग नही सकता। दधिवाहन तो सेना देखकर ही ऐसा भागा कि उसका कही पता भी नही हे। वह तुमको भी छोड गया। प्राणो के लोभ से उसने तुम्हारी भी उपेक्षा कर दी। यह भी नही सोचा मे तो भाग रहा हू, लेकिन मेरे पीछे मेरी स्त्री की क्या दशा होगी? उस पर कैसी मुसीबत बीतेगी? उसके ऊपर तुम्हारी रक्षा का भार था इसलिए उसका कर्त्तव्य था कि वह प्राण रहने तक तुम्हारी रक्षा करता। तुम्हे अरक्षित न होने देता, परन्तु उसने इस कर्त्तव्य का पालन नही किया ओर तुम्हे अरक्षित छोडकर जगल मे भाग गया। यह तो अच्छा हुआ कि तुम्हारे महल मे मैं ही पहुचा ओर तुम्हे सुरक्षित यहा ले आया अन्यथा कही दूसरे सेनिक पहुच जाते तो तुम्हारी न मालूम क्या दशा होती? अब तुम्ही बताओ कि जो अपना कर्त्तव्य पूरा नही कर सकता, जो अपने प्राणो के लोभ से अपनी स्त्री को भी अरक्षित त्याग गया हे, और जिसने युद्ध के भय से भाग कर जान बचाई है उस कायर के पास तुम्हारा रहना, सौन्दर्य ओर वीरता का अपमान हे या नही? तुम्हे इस अपमान से मुक्त करने के लिये ही में तुमको अपनी पत्नी बनाना चाहता हू।

इस प्रकार रथी धारिणी पर भेद नीति का प्रयोग करने लगा। वह दधिवाहन को कायर बताकर उसकी ओर से धारिणी के हृदय म घृणा उत्पन्न करने की चेष्टा करने लगा लेकिन शुद्ध सत्य के सामने न दण्ड नीति काम कर सकती हे, न भेद नीति। धारिणी ऐसी दुर्वल हृदय की न थी जो रथी के नीति–जाल मे फस जाती। उसमे दधिवाहन के प्रति अनन्य प्रेम था और वह पतिव्रत धर्म को जानने वाली एव उसका पालन करने वाली थी। पतिव्रता अपने पति के सामने ससार के किसी भी पुरुष को न तो सुन्दर मानती है [illegible] वीर समझती हे न वेभवशाली स्वीकार करती है। उसकी दृष्टि मे तो [illegible] पति ही सब कुछ हे, पति से बढकर ससार का कोई पुरुष नहीं है। पतिव्रता स्त्री पति के किसी दुर्गुण या बुराई की ओर तो ध्यान ही नहीं देती। [illegible] ध्यान तो पति के सदगुणो एव अच्छाई की ओर रहता है। प्रीति का [illegible] ही होता ह कि वह अपने प्रेमास्पद द्वारा किये गये किसी [illegible] हृदय म एक क्षण के लिए भी स्थान नहीं देता [illegible] बुराई को नही देखता न ससार म किसी [illegible]

प्रेमास्पद से बढ कर मानता ही है। यही बात धारिणी के लिये भी है। दधिवाहन के प्रति धारिणी के हृदय मे जो प्रेम है, उसे निकालने के लिए रथी दधिवाहन की बुराइयो का वर्णन करता हे, लेकिन दधिवाहन के प्रेम मे रगी हुई धारिणी पर कोई दूसरा रग कैसे चढ सकता था?

रथी का कथन सुनकर धारिणी को बडा ही दु ख हुआ, उसके लिए पति की निन्दा सुनना असह्य था, फिर भी उसने अपना स्वाभाविक धैर्य नही त्यागा, ओर उत्तर मे रथी से कहने लगी–भाई, अपनी जबान बन्द करो, पति के लिए अनुचित शब्द मत कहो। भाई के लिए यह उचित नही है कि वह बहन के पति के विषय मे अनुचित शब्द कहकर बहन का हृदय दु खित करे। पति के विषय मे तुम जो कुछ कह रहे हो, यह गलत भी है। इस समय तुम्हारी बुद्धि मे ही वैपरीत्य आ रहा है, इसीसे तुम्हे पति के गुण भी दुर्गुण रूप दिखाई दे रहे हैं। तुम पति को कौआ बताकर स्वय को हस बता रहे हो, लेकिन तुम्हारी हस बनने की चेष्टा व्यर्थ है। हस ओर कोए की पहचान गुण दुर्गुण ही हे, केवल मुख से कह देने से न तो कोई हस बन सकता है, न कौआ। तुम अपने मुख से हस बनते हो, लेकिन वस्तुत हस नहीं हो, किन्तु काग हो। दूसरे का जूठा खाने के लिये काग ही तेयार रहता हे, हस दूसरे का जूठा कदापि नही खा सकता। तुम जानते हो कि मैं दधिवाहन की स्त्री हू, फिर भी तुम, मुझ (दधिवाहन द्वारा जूठी) को अपनाने के लिए तेयार हो, और फिर भी हस बनना चाहते हो। धिक्कार है तुम्हारे इस हस बनने को भाई, तुम मेरे पति को कायर बता रहे हो और स्वय को वीर कह रहे हो, परन्तु तुम्हारा यह कथन भी सर्वथा विपरीत है। मेरे पति कायर नही है किन्तु वीर हैं। कायर तो वह हे जो धर्म त्यागता है। धर्म को न त्यागने वाला वीर है। यदि मेरे पति वीर न होते किन्तु कायर होते–तो अकेले ही शत्रु सेना मे कदापि न जाते। पति युद्ध द्वारा होने वाली हिंसा को अवाछनीय मानते है। इसी कारण उन्होने युद्ध नहीं किया और वे जगल को चले गये। पति अहिसा के उच्च ध्येय को सामने रखकर ही वन को गये हैं इसलिए तुम्हारा मेरे पति को कायर कहना गल्त हे, ओर किसी प्रकार स्वय वीर बनना भी मिथ्या हे। यदि तुम वीर होते तो अन्याय का साथ कदापि न देते किन्तु अन्याय का विरोध करते। मैं पूछती हू कि मेरे पति का क्या अपराध था जो सतानिक ने उन पर चढाई कर दी? और यदि कोई अपराध नही था किन्तु सतानिक की चढाई अन्यायपूर्ण थी तो तुमने उसका साथ कैसे दिया? उसका विरोध क्यो नही किया? थोडी देर के लिये [illegible] भी लिया जावे कि मेरे पति का कोई अपराध था और सतानिक

की चढाई निष्कारण नहीं थी, तब भी प्रजा का क्या अपराध था जो उसे मारा काटा और लूटा–खसोटा गया? ओर उस लूट मे तुम केसे सम्मिलित हो गये? अन्याय करना, दूसरे को व्यर्थ ही कष्ट मे डालना, दूसरे के प्राण या दूसरे की सम्पत्ति लूटना ही क्या वीरता हे? क्या इसे ही वीरता कहते हैं? इसे तो कोई भी व्यक्ति वीरता नही कह सकता, हा क्रूरता अवश्य है। तुम अन्याय का विरोध भी न कर सके, जो कि एक पुरुष का लक्षण हे ओर फिर भी स्वय को वीर मान रहे हो? हत्या, लूट, चोरी, और परदार–हरण करके अपने को वीर समझ रहे हो। इसीसे तो मैं कहती हू कि इस समय तुम्हारी बुद्धि ही उल्टी हो रही है।

भाई, तुम मेरे पर जो उपकार करना चाहते हो, उसे अपने पास ही रहने दो। तुम्हे मेरे लिए किसी प्रकार का कष्ट उठाने की आवश्यकता नही है न, प्रतिज्ञा से भ्रष्ट होने की ही आवश्यकता हे। मेरे पति चाहे वीर हो या कायर, उन्होने अपना कर्त्तव्य पाला हो या न पाला हो ओर मुझे सुरक्षित छोड गये हो या असुरक्षित छोड गये हो, तुमको इस बात की व्यर्थ ही चिन्ता क्यो? यदि मेरे पति ने कायरता की है, ओर उन्होने अपने कर्त्तव्य का पालन नही किया हे, तो इस कारण मै कायरता क्यो बताऊ? मैं अपना कर्त्तव्य क्यों त्यागू ओर मैं धर्म की मर्यादा का उल्लघन क्यो करू? में वीर–पुत्री हू। विवाह समय मेंने यह प्रतिज्ञा की हे कि जिनके साथ मेरा विवाह हो रहा हे उन महाराजा दधिवाहन के सिवा मेरे लिए ससार के सब पुरुष पिता भ्राता ओर पुत्र के समान हें। में इस प्रतिज्ञा का अन्त तक पालन करूगी। पति पर उनका धर्म का भार हे और मुझ पर मेरा धर्म पालने का भार हे। अपना धर्म अपने से ही पाला जा सकता है। इसके लिए यह देखना सर्वथा अनुचित हे कि वह आदमी भी तो अपने धर्म से पतित हो गया है। में अपने धर्म का पालन करती हुई उसकी रक्षा के लिए प्राण तो चाहे दे दू, लेकिन धर्म त्याग कर जीवित रहना कदापि पसन्द नही करूगी। अपनी दुर्भावना की पूर्ति के लिए मुझे धर्मभ्रष्ट करने का तुम्हारा सब प्रयत्न व्यर्थ है। मे मर्यादा का उल्लघन कदापि नहीं कर सकती। इसलिये में अपना अन्तिम निर्णय सुनाये देती हू कि सूर्य चाहे प्रकाश के बदले अन्धेरा देने लगे वह आकाश से नीचे गिर जावे सारी आधार देने वाली पृथ्वी किसी को आधार न दे ओर रसातल को चली जाये चन्द्र, शीतलता के स्थान पर ताप देने लगे लेकिन मैं अपनी प्रतिज्ञा से [illegible] नहीं हो सकती अपने धर्म से भ्रष्ट नहीं हो सकती किसी अन्य पुरुष [illegible] रूप स्वीकार नहीं कर सकती हू। गगा का प्रवाह समुद्र के बदले [illegible]

ओर हो जावे, तब भी मेरे प्रेम का जो प्रवाह महाराजा दधिवाहन की ओर है, वह दूसरे पुरुष की ओर नही हो सकता। भाई, तुम चाहे नल–कुबेर के समान सुन्दर होओ अर्जुन के समान वीर होओ, और वैश्रमण धनपति के समान समृद्ध होओ, तब भी मैं तुमको पति रूप स्वीकार नही कर सकती। इसलिये तुम पाप के गड्ढे मे डालने वाली और नरक मे ले जाने वाली अपनी दुर्भावना मिटाओ, अपने मे से विषय–लोलुपता को निकाल दो, और सदाचार पर दृढ रहकर, अपनी पहले की गई पतिज्ञा का पालन करो।

धारिणी की वीरता–भरी बातो को सुन–सुन कर रथी का मन धारिणी की ओर अधिकाधिक खिचता जाता था, लेकिन धारिणी की अन्तिम बातो ने उसके हृदय मे निराशा और क्रोध उत्पन्न कर दिया। वह सोचने लगा कि राजमहल से मैं बडे मूल्यवान रत्न नही लाया, और उनके बदले इसको इस आशा से लाया कि इसके साथ सहवास करके इसको अपनी प्रेयसी बनाकर मैं अपना जन्म सफल करूगा लेकिन यह तो किसी तरह मानती ही नही है। मैंने साम दाम और भेद इन तीनो ही नीति से काम लिया परन्तु इसने तो मेरी सभी नीति असफल कर दी। यदि यह मेरे वश मे न हुई, तो इस युद्ध से तो मुझे कुछ भी लाभ न होगा। मैंने रत्न भी खोये, और यह भी मेरे हाथ मे नही आ रही है यदि इसकी बात मानकर मैं इस पर से अपना प्रेम हटा लू, तब तो मेरा सब परिश्रम व्यर्थ ही हुआ। कुछ भी हो मैं इसके साथ सहवास करके अपनी इच्छा तो पूरी करूगा ही। साम, दाम, और भेद से काम नही हुआ तो दण्ड नीति से काम लूगा, परन्तु इसे तो अवश्य अपनाऊगा। दण्ड नीति के सामने बडे–बडे धनुर्धर योद्धा भी काप उठते हैं, वे भी अपनी प्रतिज्ञा त्याग देते हैं तो इस बेचारी स्त्री की क्या शक्ति है, जो यह मेरी दण्ड नीति को असफल कर दे। अब इसको वश मे करने के लिए दण्ड नीति के सिवा और कोई मार्ग नही है। दण्ड नीति अवश्य ही सफल होगी। दण्ड नीति को अपनाने से ही यह राजमहल से मेरे साथ आई है, नहीं तो कदापि न आती।

इस प्रकार विचारकर रथी लाल–लाल आखे करके धारिणी से क्रोध पूर्वक कहने लगा– बस–बस! तेरी बाते रहने दे। बडी पतिव्रता और बुद्धिमती बन रही है। यदि ऐसी ही पतिव्रता होती तो पति का वियोग होते ही मर जाती। मेरे साथ यहा तक न आती। वहा से तो मेरे साथ चली आई और अब यहा पतिव्रता का ढोंग करके त्रिया–चरित्र बता रही है। मै तेरे को इसलिये नही लाया हू कि तुझे बहन मान कर तेरी सेवा–टहल करू किन्तु

तुझे अपनी प्रेयसी बनाने के लिए लाया हू और जिस उद्देश्य से लाया हू उसे पूरा भी अवश्य करूगा। में सोचता था कि तू सीधी तरह मेरी बात मान ले मै तेरा हृदय न दु खाऊ परन्तु में नहीं समझता था कि तू इस प्रकार की है। में तेरे को बुद्धिमत्ति जानता था, लेकिन अनुभव ने बताया कि स्त्रियो मे बुद्धि तो होती ही नही है, उनकी मति तो सदा नाशकारिणी ही रहती हे ऐसी दशा मे तू इस नियम से कैसे बच सकती हे। मैं तेरे से फिर कहता हू, कि मे वीर क्षत्रिय हू। एकबार जो विचार कर लेता हू वह पूरा करके ही रहता हू, फिर चाहे उसे पूरा करने को किसी भी उपाय का अवलम्बन क्यो न लेना पडे? इसलिए तू सीधी तरह मेरी बात मान ले। में मेरे अनुकूल रहने वाले का ही रक्षक हू, और जो मेरे प्रतिकूल है उसके लिए तो काल के समान भक्षक ही हू। यदि तू प्रसन्नता से मेरी बात मान गई तब तो में तेरा रक्षक ही नही किन्तु आज्ञाकारी सेवक रहूगा, अन्यथा तेरा शत्रु बनकर तुझसे अपनी बात मनवाऊगा। यहा तेरा कोई रक्षक नही हे। तुझे किसी भी तरह की सहायता नही मिल सकती। अब तू चाहे मुझे अपना रक्षक बना ले, अथवा भक्षक बना ले। मे उन कायरो मे से नही हू जो थोडा प्रयत्न करके असफलता का लक्षण दिखते ही कार्य छोड दे। जहा प्राणो की बाजी लगी होती है वेसे भयानक सगाम मे भी मैं कायरता नही दिखाता, तो तेरी बातो से में कायर केसे बन सकता हू। देख यह तलवार देख ले। यह वही तलवार हे जिसको देखकर भय की मारी तू बिना चू–चा किये चुपचाप रथ मे बैठकर मेरे साथ यहा आई हे। यदि तूने अभी की भाति फिर मेरी बात को अस्वीकार करने का दु साहस किया तो मै इस तलवार से तेरा मस्तक काट डालूगा ओर तेरे शरीर के टुकडे–टुकडे कर डालूगा। मे इतना करके ही सन्तुष्ट न होऊगा किन्तु ऐसा करने से पहले तेरे साथ भोग–भोगकर अपनी इच्छा तो पूरी करूगा ही। इस वन मे तू [illegible] स्त्री मेरी बात अस्वीकार करे यह में कदापि नही सह सकता। इसलिए मै कहता हू कि मेरी बात स्वीकार कर ले। ऐसा करने पर ही तेरा कल्याण है और तेरा जीवन भी कुशल हे।

रथी की इस भयोत्पादक बाता का धारिणी पर कोई प्रभाव नहीं पडा। धारिणी किचित भी भयभीत नही हुइ न उसके मुख की स्वाभाविक प्रसन्नता ही नष्ट हुई। वह पहले की ही तरह प्रसन्न और गम्भीर बनी रही। रथी की बात समाप्त होने पर वह कहने लगी–भाई [illegible] यही उचित है कि जो बात एक बार मुह से कह दी [illegible] जावे। मैं तुमसे यही करने के लिए तो कहती हू कि [illegible]

प्रतिज्ञा की है, उसका पालन करके वीरता की रक्षा करो, लेकिन मेरी यह बात तुम्हारी समझ मे नही आती, और तुम अपना दुराग्रह नही छोडते। परन्तु जब तुम अपने बुरे विचार और अपना दुराग्रह नही छोड सकते, तब मै, अच्छी और सत्य तथा धर्म–अनुमोदित बात को कैसे त्याग सकती हू? तुम मेरे शरीर को नष्ट कर सकते हो। इस पर तलवार चला सकते हो। मैं तुम्हारे द्वारा चलाई गई तलवार का तो प्रसन्नता से आलिगन करूगी, उसका तो अवश्य स्वागत करूगी, लेकिन परपुरुष का स्पर्श कदापि नही कर सकती। हा, जीवन न रहने पर तो इस शरीर का स्पर्श गीदड भी कर सकते हैं।

धारिणी की बाते सुनकर रथी का क्रोध उमडा पडता था। उस समय वह मूर्तिमान क्रोध ही बन रहा था। क्रोध के कारण उसकी आकृति ऐसी वीभत्स हो गई थी, कि देखने वाले को भय मालूम हो। धारिणी का उत्तर समाप्त भी नहीं हो पाया कि देख, मैं तुझे जीवित ही स्पर्श करता हू। यह कहकर रथी धारिणी को पकडने और उस पर बलात्कार करने के लिए उद्यत हुआ। रथी को इस प्रकार पाशविक व्यवहार करने के लिए उद्यत देख धारिणी ने उसे कहा–भाई तुम वीर हो। वीर लोग एक असहाय स्त्री को वन मे ले जाकर उस पर इस तरह अत्याचार तो नही किया करते, परन्तु तुम तो ऐसा करने के लिए भी उद्यत हुए हो। मैंने तुम्हे जो कुछ समझाया, वह तुम्हारी समझ मे नहीं आया और अब तुम्हे समझाने के लिए कोई प्रयत्न करना व्यर्थ है। तुम्हारे हृदय मे जिस दुर्भावना ने स्थान कर लिया है, उसे निकालने के लिए किसी असाधारण प्रयत्न की आवश्यकता है। साधारण उपदेश से, तुम्हारी भावना न बदलेगी। मैं अपना कर्त्तव्य पूरा कर चुकी और तुम्हे समझा चुकी। यह बात दूसरी है कि मुझे अपने प्रयत्न मे सफलता नही मिली और समझाने पर भी तुम्हारा हृदय ज्यो का त्यो बना रहा लेकिन मैं तो तुम्हे समझाने का अपना कर्त्तव्य पूरा कर ही चुकी। अब तो यह प्रश्न है कि मैं अपना सतीत्व तुम्हे समर्पण कर दू, या उसकी रक्षा का कोई दूसरा उपाय भी है। थोडी देर के लिए तुम ठहर जाओ, और मुझे इस विषय मे विचार करने का समय दो। इस समय मुझे क्या करना चाहिए, यह मै सोच लू तथा यह भी जान लू, कि जिस धर्म और परमात्मा पर मुझे विश्वास है, वे मुझे क्या सम्मति देते है। तुम थोडी देर के लिए मुझे अकेली छोड दो, स्वय जरा हट जाओ तो मै शात हृदय से विचार भी कर सकू। फिर जैसा निश्चय होगा वैसा ही करूगी। तब तक तुम भी ईश्वर की प्रार्थना करो। ऐसा करने से तुम्हारी बुद्धि निर्मल हो जावेगी और फिर सम्भव है तुमको इस प्रकार बलात्कार करने का कष्ट न उठाना पडे।

धारिणी का कथन सुनकर रथी ने सोचा कि यह विचार करने के लिए कुछ समय चाहती हे, फिर भी इसको समय न देकर इस पर बलात्कार करना ठीक नही। जो काम सरलता से हो सकता है उसको कठिन बनाना या उसके लिए विषम प्रयत्न करना व्यर्थ हे। जो गुड से ही मर सकता है उसको विष देने की क्या आवश्यकता है? इसी प्रकार जब यह आप ही स्वय को मेरे समर्पण कर दे, तो मै इस पर बलात्कार क्यो करूं? यद्यपि यह अब तक समझाने पर भी नही मानती है, लेकिन अब यह स्वय ही समय मागती है, इससे सम्भव है कि इसने अपनी रक्षा का कोई मार्ग न देखकर मुझे पति रूप स्वीकार करने के लिए समय मागा हो यह न तो यहा से जा ही सकती है और न मेरे प्रतिकूल किसी प्रकार का विचार करने मे ही कल्याण समझती है। इसलिए इसकी इच्छानुसार समय देना ही अच्छा होगा।

रथी ने इस प्रकार विचार कर धारिणी से कहा कि मैं तेरी प्रार्थना स्वीकार करके तुझे एक घडी का समय देता हू। तुझे जो कुछ विचार करना हे, वह इतने समय मे कर ले लेकिन में अपना निश्चय सुना चुका हू उसे याद रखकर ही विचार करना।

इस प्रकार कहकर रथी धारिणी के पास से कुछ दूर हटकर खडा हो गया। वह अपने मन मे यही आशा कर रहा था कि एक घडी के पश्चात् इसके मुह से यही निकलेगा कि 'मुझे तुम्हारी बात स्वीकार हे। ओर इस प्रकार यह रमणी मेरी पत्नी बन जावेगी तथा में इसका पति बन जाऊगा। इस प्रकार एक ओर, खडा हुआ रथी तो धारिणी का पति बनने का स्वप्न देख रहा था, ओर दूसरी ओर कुछ दूरी पर बैठी हुई वसुमति दूसरा ही विचार कर रही थी। वह सोच रही थी कि घर पर ओर मार्ग मे माता ने मुझे आपत्ति के समय धेर्य रखने ओर किसी पर क्रोध न करने का जो उपदेश दिया था उसे वह स्वय ही कार्यान्वित करके बता रही हे। इस घोर आपत्ति के समय भी माता न तो घबराई हे न रोई हे। इसी प्रकार इस रथी द्वारा कहे गये दुर्वचनों को सुनकर भी माता ने इस पर क्रोध नही किया। माता वीर-पुत्री है अत यदि वह चाहे तो इस रथी से युद्ध भी कर सकती है तथा वह चाहे तो [illegible] सतीत्व की शक्ति द्वारा दृष्टि मात्र स इस रथी का भस्म भी कर सकती है लेकिन माता इस प्रकार हिसा करना या बदला लेना उचित नही मानती। माता ने मुझे भी ऐसी ही शिक्षा दी हे और मुझ जो शिक्षा दी है उसका पालन माता स्वय भी कर रही हे। अब माता क मागने स इस रथी ने माता को एक घडी का समय दिया है। देखती हू कि माता इस समय का उपयोग [illegible]

करती है। इस प्रकार विचारती हुई वसुमति माता की ओर एकटक देख रही है।

रथी कुछ और सोच रहा था वसुमति कुछ और सोच रही थी तथा तीसरी ओर बैठी हुई धारिणी कुछ और ही कर रही थी। सामने से रथी के हटते ही धारिणी ने परमात्मा को नमस्कार किया और उसकी अन्तिम प्रार्थना की। फिर कहने लगी—प्रभो इस वीर रथी ने तेरी प्रार्थना करने के लिए एक घडी का समय देकर मुझ पर बडा उपकार किया है। यही नही, यह मुझे कठिन तपस्या का उपदेश देने के साथ ही मेरी यह परीक्षा ले रहा है कि मुझे ईश्वर और धर्म पर कैसा विश्वास है? इस प्रकार यह मेरे पर उपकार करने वाला है लेकिन मै इसके उपकार का बदला चुकाने मे असमर्थ हू। क्योकि यह मेरा भाई सतीत्व नष्ट करना चाहता है। मोह के वश होकर मेरे इस अशुद्ध शरीर पर मुग्ध हो गया है। मैंने इसे बहुत समझाया लेकिन इसे मेरा समझाना उसी प्रकार नही रुचा जिस प्रकार सन्निपात के रोगी को वैद्य की औषध नही रुचती। यह कामान्ध हो रहा है। इसमे इसे धर्म—कर्त्तव्य और तेरी शक्ति का भी ध्यान नही है। इसमे निरा इसीका अपराध नहीं है। इस समय के अधिकाश पुरुषो की भावना ही ऐसी हो रही है। ऐसे ही लोगो मे से यह रथी भी एक है और इसी कारण यह मेरे इस तुच्छ शरीर पर ऐसा मोहित हो रहा है, कि इसे दूसरी कोई बात पसन्द ही नही पडती। इसलिए मैं यह उचित समझती हू कि यह नश्वर शरीर इसको सौप दू, और जो आत्मा अब तक इस शरीर मे रहता हुआ तेरी यत्किञ्चित सेवा करता है वह इससे निकल कर तेरी शरण मे आ जावे। मैं तेरे से और कुछ नही चाहती हू, केवल यही चाहती हू, कि मुझे इस मेरे भाई पर किंचित् भी क्रोध न आवे और हृदय मे इस भाई के प्रति जरा भी वैर—भाव न रहे और जो पुरुष स्त्री रूपी दीपक पर पतगा की तरह प्राण देते है उनका सुधार हो। इस रथी की तरह केवल शरीर को ही देखने वाले आत्मा को विस्मृत करने वाले पुरुष आत्मा को पहचान कर कामुकता को त्यागे यही तेरे से चाहती हू। मुझे अनुभव हुआ है कि इस रथी जैसे भाइयो को सुधारने का कार्य बिना बलिदान के नही हो सकता। इसी प्रकार मैंने वसुमति को जो उपदेश दिया है उसे क्रियात्मक रूप देकर वह उपदेश वसुमति को पूर्णत हृदयगम कराना है और वसुमति का मार्ग साफ करना है। वसुमति को इस बात पर प्रत्यक्ष विश्वास कराना चाहती हू कि [illegible] की शक्ति महान है और धर्म सदैव तथा सर्वत्र रक्षक है। इस प्रकार मैं [illegible] बेटा कर अभय बनाना चाहती हू। हे प्रभो! तू मुझे ऐसा [illegible] शक्ति दे यही मेरी प्रार्थना है।

इस प्रकार परमात्मा की प्रार्थना करके धारिणी ने अठारह पाप त्याग कर तथा सब जीवो से क्षमा माग कर एव सब जीवो को क्षमा देकर, सागारी सथारा किया और ध्यान किया। ध्यान समाप्त होने पर उसने आखे खोल कर कहा कि हे प्रभो! मैं अपनी ओर से यह शरीर त्याग चुकी हू। यदि यह शरीर रहा तब तो आत्मा इसमे रहकर कुछ दिन और तेरी सेवा करेगा, लेकिन यदि यह न रहा तो इसे मै अपनी ओर से उत्सर्ग कर ही चुकी हू।

कुछ दूर खडा हुआ रथी धारिणी की ओर देख रहा था तथा मन ही मन यह मना रहा था कि इसकी बुद्धि निर्मल हो और यह मेरी बात मान ले। धारिणी का ध्यान समाप्त होते ही रथी उसके सामने कृतान्त की तरह फिर जा खडा हुआ और धारिणी से कहने लगा कि मैने तुझे जो समय दिया था वह समाप्त हो चुका। अब बता, कि तूने क्या निश्चय किया है? रथी की बात सुनकर धारिणी उसकी ओर प्रेम–पूर्ण दृष्टि से देखती हुई कहने लगी–वीर मैंने परमात्मा से परामर्श कर लिया है। उसने मेरे और तुम्हारे लिए जो आज्ञा दी है, उस पर में तो विश्वास करूगी ही, लेकिन तुम भी विश्वास करो तो अच्छा है। उसने मुझे तो यह आज्ञा दी है कि जिस शरीर को देखकर यह रथी मोहान्ध हो रहा है, अपना कर्त्तव्य भूल रहा है ओर पथ–भ्रष्ट होने के लिए तत्पर है, बस, उस शरीर से ममत्व त्याग दे। इसी प्रकार तुम्हारे लिए उसकी यह आज्ञा हे कि तुम जिस शरीर पर मुग्ध हुए हो वह अपवित्र हे अशुचि का भण्डार हे, क्षणिक है, नाशवान् हे, अत उस पर मोह मत करो। शरीर पर मोह करने ओर आत्मा को भूलने से नरक की महान् कठोर यातना सहनी पडती है।

धारिणी की बात समाप्त होने से पहले ही रथी उससे कहने लगा हे छलना–तूने मेरा इतना समय भी खराब किया ओर अब मुझे ईश्वर की आज्ञा सुना रही हे। इस तरह की आज्ञा देने वाले ईश्वर का कहीं अस्तित्व भी हे? यदि उसका अस्तित्व हे तो उसे बुलाती क्या नही? वह स्वय ही आकर तुझे अपनी आज्ञा क्यो नही देता? तू तेरे छलकपट को रहने दे ईश्वर को भूल जा, और मुझे ही ईश्वर मान।

रथी की बात के उत्तर म धारिणी बाली–भाई मोह के वश होकर ईश्वर को न मानना ओर इस प्रकार नास्तिकता आना स्वाभाविक है [illegible] मोह के वश तुम हो म मोह क वश नही हू। इस वास्ते मेरे [illegible] आज्ञा का पालन करना आवश्यक हे। तुम मोह के वश होकर ही [illegible] को कह रहे हो। वह कहा नही हे जो उसको बुलाऊ? [illegible]

अनन्त शक्तिमान है, और ज्ञानगम्य है लेकिन तुम उसे इन्द्रियो द्वारा देखना चाहते हो। यह उसी मोह का प्रताप है, जिसके वश होकर तुम परमात्मा के अस्तित्व से इन्कार कर रहे हो। लेकिन यदि परमात्मा का अस्तित्व न होता, उसकी शक्ति मुझमे न होती तो मैं तुम्हारे द्वारा कहे गये कठोर वचनो को सुन कर भी प्रसन्न क्यो रहती? मुझे क्रोध क्यो नही आया? दु ख और भय क्यो नही हुआ? यह सब उसी की शक्ति का प्रताप है, लेकिन मोहनीय कर्म के उदय होने पर ईश्वर की यह शक्ति न तो प्राप्त होती है, न इस रूप मे दिखाई देती है।

रथी कहने लगा–बस–बस! तेरा यह उपदेश तेरे ही पास रहने दे। मुझे तेरे इस उपदेश की आवश्यकता नही है। मैं समझ गया कि तू प्रसन्नता से न मानेगी। देख तुझ से अभी अपनी बात मनवाता हू। यह कह रथी धारिणी की ओर लपका। भूखे भेडिये की तरह रथी को अपनी ओर लपकते देखकर धारिणी ने कहा–मेरी बात न मानने मे निरा तुम्हारा ही दोष नहीं है, किन्तु मेरे इस शरीर का भी दोष है। हे प्रभो, जिसे देखकर मेरा यह भाई इस प्रकार विवेकहीन बन रहा है उस शरीर को मैं त्यागती हू, और तेरे से प्रार्थना करती हू कि भ्रम मे पडे इस भाई को सद्बुद्धि प्राप्त हो, और इसका कल्याण हो।

इस प्रकार कहकर धारिणी ने रथी के पहुचने से पहले ही अपनी जीभ पकड कर बाहर खीच ली। जीभ खिच जाने से धारिणी के मुख से रक्त की धार बह चली। उसके प्राण–पखेरू शरीर–पिजर को छोड कर उड गये। उसका प्राण–रहित शरीर पृथ्वी पर गिर पडा। इस प्रकार उसने, अपने बलिदान द्वारा स्वय के सतीत्व की रक्षा की वसुमति को जो उपदेश दिया था, उसे आदर्शमय करके बता दिया और वसुमति का मार्ग भी साफ कर दिया। साथ ही जो रथी कामान्ध हो रहा था जिस पर उपदेश का कोई प्रभाव नहीं पड रहा था उसे भी सुधार दिया।

परिवर्तन

मनुष्य के हृदय पर किसी घटना या दृश्य का कभी–कभी ऐसा प्रभाव पडता है कि एक दम से उसका जीवन कुछ से कुछ हो जाता है। उस दृश्य या घटना के प्रभाव से रागी मे वैराग्य विरक्त मे राग क्रोध मे क्षमा क्षमाशील मे क्रोध, हिसक से दयालु, दयालु से हिसक चोर से साहूकार साहूकार से चोर, सदाचारी से दुराचारी और दुराचारी से सदाचारी बन जाता है। किसी–2 घटना या दृश्य का तो इतना असाधारण प्रभाव होता है कि उससे प्रभावित व्यक्ति के जीवन मे सर्वथा वैपरीत्य तक आ जाता है। जिस जीवन को बदलने के लिए हजारो प्रयत्न किये गये हो ओर सेकडो तरह का उपदेश दिया गया हो, फिर भी–जिसके जीवन मे कोई अन्तर न आया हो ऐसे व्यक्ति का जीवन भी, किसी घटना–विशेष से अनायास ही बदल जाता है, और जो दूसरे अनेक प्रयत्नो से सफल नही हुआ वह जीवन बदलने का कार्य एक साधारण घटना के कारण भी हो जाता हे। जीवन का इस प्रकार परिवर्तन हुआ, इसके अनेको उदाहरण भी हे। महाराजा हिरण्यगर्भ मे वेराग्य का चिन्ह भी नहीं था, लेकिन एक सफेद बाल के देखने से ही उनको संसार से विरक्ति हो गई। नमीराज ऋषि मे भी पहले वेराग्य नही था लेकिन स्त्रियो की चूडियो के शब्द ने उन्हे वेरागी बना दिया। चण्डकौशिक साधु पूर्वभव मे बहुत ही क्षमा शील था लेकिन शिष्य के व्यवहार की घटना ने उसे महाक्रोधी बना दिया ओर सर्प के भव मे वह महाक्रोधी था परन्तु भगवान महावीर को डसने की घटना ने उसे अत्यन्त क्षमाशील बना दिया। इसी प्रकार के अनेको उदाहरण हें आर शास्त्रीय ही नही किन्तु [illegible] उदाहरण भी बहुत हें जो इस बात को पुष्ट करते हैं। [illegible] पहले वह दयालुता ओर अहिसा न थी जो तैलग देश [illegible]

रक्तपात देखकर हुई। सिक्खो मे पहले वह वीरता न थी, जो मुसलमानो के अत्याचार की घटना से हुई। प मोतीलाल नेहरु मे वह देशप्रेम और सादगी पहले न थी जो सन् 1921 का असहयोग आन्दोलन देख कर हुई।

इस प्रकार घटनावश जीवन–परिवर्तन के सैकडो ही नही, किन्तु हजारो–लाखो उदाहरण मिल सकते हैं। ऐसे ही उदाहरणो मे से एक सतानिक के रथी का जीवन परिवर्तन है। सतानिक का रथी, बहुत ही क्रूर हृदय का दुराचारी व्यक्ति था। मनुष्यो का वध करने दूसरे की सम्पत्ति लूटने ओर परस्त्री का अपहरण करने, उसका सतीत्व नष्ट करने मे उसे किचित भी सकोच नही होता था। वह अनेक बार युद्धो मे विजयी हुआ था। सतानिक की क्रूरता भरी नीति ने उसके दुराचार मे वृद्धि की थी, और उसे अधिक क्रूर बनाया था। इसीसे उसने धारिणी तथा वसुमति का अपहरण करने का दुस्साहस भी किया था। इस प्रकार के पाषाण–हृदय, और लम्पटी पुरुष पर, धारिणी के मौखिक उपदेश का क्या प्रभाव हो सकता था? वह धारिणी से अपनी कामवासना पूरी करने की अभिलाषा रखता था और सोचता था कि जब यह एक मेरी हो जावेगी तो दूसरी वसुमति तो मेरी है ही। उसने सोचा था कि यदि मै पहले उस लडकी को अपनाने का प्रयत्न करूगा तब तो इसकी मा मेरे प्रयत्न का विरोध करेगी और मुझे सफलता न मिलेगी। लेकिन पहले इस एक को अपनी बना लूगा तब दूसरी को बिना किसी विघ्न बाधा के सरलता से ही अपनी बना सकूगा। इस दुष्ट विचार से ही रथी धारिणी के उपदेश की उपेक्षा करके बलात् उसका सतीत्व नष्ट करने के लिए तैयार हुआ था और यदि उसे अपने इस प्रयत्न मे सफलता मिलती, तो फिर वह वसुमति पर बलात्कार करने का दु साहस भी करता। लेकिन उसका प्रयत्न निष्फल रहा और धारिणी के बलिदान ने उसको कुछ से कुछ बना दिया। वह चला तो था धारिणी को बलात् पकडने परन्तु धारिणी की जीभ निकलती देखकर उसका पाव आगे न बढा। उसने चिल्ला कर धारिणी से कहा भी था मरे मत! मरे मत! मै तेरे पर बलात्कार न करूगा' लेकिन धारिणी की जीभ और रथी के शब्द साथ ही निकले इससे उसके ये शब्द व्यर्थ हुए। धारिणी के मुख से रक्त की धारा निकली और उसके मृत–शरीर को पृथ्वी पर गिरते देखकर रथी काप उठा। उसकी आखो के आगे अधेरा छा गया। स्वय को धारिणी की हत्या का कारण समझकर वह थोडी देर के लिए किंकर्तव्य विमूढ होकर उसी स्थान पर खडा रहा न तो आगे ही बढ सका और न पीछे ही हट सका।

कुछ ही दूर पर खडी हुई वसुमति भी यह सब कुछ देख रही थी। माता को जीभ खीच कर मरी देखके भी वसुमति ने धैर्य नही त्यागा। उस समय वह अपने मन मे कह रही थी—माता, तुझे धन्य हे। तूने मेरे को जो शिक्षा दी थी, उसे चरितार्थ कर दिखाया और धर्म के लिए किस तरह जीना या मरना, यह भी मुझे सिखा दिया। तूने मुझे आदर्श—सहित जो शिक्षा दी हे उसके द्वारा मै भी धर्म के लिए जीना—मरना सीख गई। तेरी शिक्षा का ही प्रताप हे कि मैं ऐसी भीषण परिस्थिति मे भी दु ख शोक ओर भय—रहित हू। अपनी माता का वियोग होने पर अपनी माता की मृत्यु का भीषण दृश्य देखकर, और स्वय को अरक्षित तथा आपत्ति मे समझकर मुझे दु ख तथा भय होना स्वाभाविक था, लेकिन तेरी शिक्षा ने ही मुझे दु ख शोक और भय से बचाया है। तेरी शिक्षा के प्रताप से ही में यह सोचती हू कि जब माता ने प्राण—नाश के समय तक भी न तो धैर्य त्यागा न क्रोध किया न शोक ओर रुदन ही किया, तब मैं माता के बताये मार्ग को त्याग कर विपरीत मार्ग क्यो पकडू? मुझे माता ने जो शिक्षा दी है, वह ऐसे विषम समय के लिए ही तो हे। उसने मुझे वह मार्ग भी बता दिया है, जिसके द्वारा कठिन समय पर सतीत्व की रक्षा की जा सकती है। ऐसी दशा मे माता मुझे अरक्षित नही छोड गई हे किन्तु सुरक्षित छोड गई है। जब माता प्राण त्याग करने मे भी नही रोई तव मैं धैर्य क्यो त्यागू। दु ख क्यो करूं? माता के लिए भी दु ख—शोक करने की आवश्यकता नहीं हे, और न स्वय के लिए ही भय करके दु ख—शोक करने की आवश्यकता हे। इस समय तो मुझे केवल इस बात का विचार करना है कि जब यह रथी माता के मधुर ओर गोरवमय प्रभावशाली उपदेश से भी नही माना, इसने अपनी दुर्भावना नही त्यागी, तव इस पर मेरे किसी कथन का क्या प्रभाव होगा? इसके सिवा माता ने इसकी बात नही मानी प्राण अवश्य त्याग दिये, इसलिए यह अधिक क्रुद्ध होकर मुझसे अपनी बात मनवाने की चेष्टा करेगा। ऐसी दशा मे मुझे धर्म—रक्षा के लिए क्या करना चाहिए? परन्तु मैं इस विषय मे भी अधिक विचार क्यो करू? धर्म—रक्षा का जो मार्ग माता बता गई है, उसे पहले ही क्यो न अपना लू? इस रथी का कुछ कहने—सुनने या किसी प्रकार का प्रयत्न करने का अवसर ही क्या दू?

इस प्रकार विचार कर वसुमति बोली—वीर लो! जिस मार्ग से माता गई हे उसी मार्ग से मैं भी जाती हू, जिससे तुम्हे मेरे लिए किसी प्रकार का कष्ट न करना पडे। यह कहकर वसुमति प्राण त्यागने के [illegible]

वसुमति की बात सुनकर रथी धारिणी के विषय मे जो [illegible]

कर रहा था उसे एकदम से भूल गया, और सोचने लगा कि इस एक की हत्या का पातक तो मेरे सिर पर है ही, यह दूसरी भी मेरे ही कारण प्राण–त्याग कर रही है। मैं इस एक ही पाप का न मालूम कितना दण्ड भोगूगा तब यह दूसरा पाप और कैसे सहूगा? इस प्रकार विचार करता हुआ रथी दौडकर वसुमति के पास आया। वह प्राण–त्याग के लिए उद्यत वसुमति का हाथ पकड कर रुदन करता हुआ कहने लगा– 'पुत्री, क्षमा कर'। मुझे अधिक पातकी मत बना। मै अधम से अधम ओर नीच से नीच हू। मैंने जो महान् पाप किए हैं उन्ही का फल मुझे भोगने दे, मुझ पर अधिक पाप मत चढा। तेरी माता बडी सती थी। उसने मेरे पाप–पूर्ण विचारो को बदलने के लिए बहुत प्रयत्न किया, मुझे बहुत उपदेश दिया, लेकिन मुझ मोहग्रस्त, कामान्ध को उसका उपदेश जरा भी नही रुचा। अन्त में उसने प्राण–त्याग द्वारा सतीत्व की रक्षा की, ओर मुझे अनन्त नरक की वेदना सहने के लिए रहने दिया। मेरा हृदय पाप की ज्वाला से जल रहा है। दुख और पश्चात्ताप के कारण शाति नहीं मिल रही है। इस सती की हत्या का अपराधी मैं ही हू। मैने ही यह घोरतम पाप किया है। मुझे इस एक ही महापाप की आग से जलने दे तू मर कर उसमे और आहुति मत छोड। तू विचारती होगी कि इस दुष्ट ने मेरी माता के साथ जैसा दुर्व्यवहार करना चाहा था वैसा ही दुर्व्यवहार यह मेरे साथ भी करेगा और इसी कारण तू प्राण त्याग करना चाहती होगी, लेकिन तू यह भय छोड दे। मैं तेरे को पहले अवश्य पाप–भरी दृष्टि से देखता था लेकिन अब मैं तुझे अपनी पुत्री मानता हू। पुत्री ही नही, किन्तु माता भी समझता हू। मैं अब कभी भी तेरे को पाप की दृष्टि से न देखूगा। मैं प्रतिज्ञा करता हू, ओर सूर्य चन्द्र तथा पृथ्वी की साक्षी से शपथ खाता हू कि में, तेरे साथ किसी प्रकार का दुर्व्यवहार न करूगा न तुझे बुरी दृष्टि से ही देखूगा। तेरी माता ने मेरी दृष्टि और मेरे हृदय का परिवर्तन कर दिया है। अब मेरी दृष्टि मे न तो वह पाप है, न वह काम–विकार है। इस समय मैं जो प्रतिज्ञा कर रहा हू, वह सच्चे हृदय से कर रहा हू। में तुझे कभी भी बुरी दृष्टि से न देखूगा। इसलिए तू मुझे क्षमा कर ओर प्राण–त्याग का विचार छोड दे। तेरी माता जिस ईश्वरीय शक्ति का दर्शन पहले करा रही थी उस ईश्वरीय शक्ति का दर्शन मुझे अब हुआ है। उस समय मेरी दृष्टि पर काम–विकार का पर्दा पडा हुआ था इससे मुझे वह शक्ति केसे दिखाई देती। अब जैसे ही मेरी दृष्टि पर से पर्दा हटा मुझे उस ईश्वरीय शक्ति का आभास मिलने लगा ओर मैं समझ गया कि धर्म की रक्षा के लिए प्राग–त्याग का साहस ही ईश्वरीय

शक्ति है। मैं इस ईश्वरीय शक्ति को जान चुका हू, इसलिए तुझे कदापि बुरी दृष्टि से न देखूगा। मेरी बात न मानकर यदि तूने प्राण–त्याग ही दिया तो मेरे हृदय को अनन्त सन्ताप होगा। मेरे लिए ऐसा कोई न रहेगा जो मुझे धिक्कार तथा उपालम्भ देकर मेरे सताप को कम करे। तू रहेगी तो मुझे उपालम्भ तो देगी। तेरे दिये हुए उपालम्भ को चाहे वे कैसे भी और कितने भी क्यो न हो, मैं प्रसन्नता से सुनूगा तथा यह समझ कर तेरा उपकार मानूगा कि तू मेरे पाप कम करने के लिए ही मुझे उपालम्भ दे रही है। इसलिए तू प्राण त्याग का प्रयत्न छोड दे, मे जो कुछ कहता हू, उस पर विश्वास कर। कदाचित तू मेरे कथन पर विश्वास न भी करे तब भी उस समय तक तो शरीर मत त्याग, जब तक कि मेरे कथन के विरुद्ध कोई स्थिति सामने न आवे। मेरे कथन के विरुद्ध स्थिति आने पर तू चाहे मर जाना। तेरा यह प्राण त्याग का मार्ग सुरक्षित ही हे, कही जाता तो है नही। तुझे जब भी आवश्यकता मालूम हो, इस मार्ग का आश्रय ले सकती है। इस समय तेरे मरने से मुझ पापी के पापो का नाश न होगा, इसलिए मेरा उद्धार करने तू जीवित ही रह।

यह कहकर रथी वसुमति के पेरो पर गिर पडा ओर फूट–फूट कर रोने लगा। उसका कथन सुनकर ओर उसे इस तरह विलाप करते देखकर वसुमति का हृदय करुणा से द्रवित हो उठा। वह सोचने लगी कि माता ने अपनी शिक्षा को कार्यान्वित करके इस रथी का सुधार कर दिया। उसका बलिदान इसके हृदय–परिवर्तन का कारण बन गया ओर जहा यह मेरे लिए भक्षक की तरह था वहा अब पिता की तरह रक्षक हो गया। इसका मलीन हृदय अब निर्मल तथा पवित्र हो गया हे इसी से यह पाप का पश्चाताप कर रहा है। ऐसे समय मे मुझे प्राण त्याग की आवश्यकता नही हे किन्तु इसको सान्त्वना देने की आवश्यकता हे।

इस प्रकार विचार कर वसुमति ने रथी स कहा–पिताजी आप घबराओ मत। जो होना था वह हो चुका। अब उसके लिए इस प्रकार का रुदन व्यर्थ हे। माता ने अपना प्राण क्या त्यागा हे मुझ आपकी गोद म [illegible] आपको मेरा धर्म–पिता बना दिया। यदि माता न प्राण न त्यागे होते तो न आप मुझे पुत्री मानते, न आपका सुधार ही हाता। माता के मरने से ही आप मेरे धर्म–पिता बने हें ओर म आपकी पुत्री बनी हू। अब आप [illegible] विस्मृत कर डालो और माता क शरीर की अन्त्येष्टि [illegible]

वसुमति की बात सुनकर रथी का [illegible]
सोचने लगा कि यह ता इसकी माता स भी बढकर [illegible]

मेरे दुर्वाक्य सुनकर क्रोध नही किया था, न प्राण त्याग कर मेरे लिए कोई अपशब्द या दुराशीषरूप बात कही। इसी तरह यह भी मुझे आश्वासन दे रही है मुझ मातृघाती को उपालम्भ के दो शब्द भी नही कहती। किन्तु मुझे और यह कह रही है बीती बात को विस्मृत कर दो। धन्य है इसको और इसके माता–पिता को।

वसुमति का उपकार मानकर रथी उठा। उसने और वसुमति ने वही वन मे से सूखी लकडिया एकत्रित कीं। फिर चिता बना कर दोनो ने उस चिता पर धारिणी का शव रखा और चिता मे आग लगा दी। चिता धाय–धाय करके जल उठी। यह सब देखकर भी वसुमति धीर ही बनी रही। उसके मुख पर, विषाद का चिन्ह भी नही था। वह तो यही विचारती रही कि माता ने मुझे जो शिक्षा दी थी, वह शिक्षा उसने तो व्यवहृत कर दिखाई लेकिन वह दिन कब होगा, जब मै भी माता की शिक्षा के अनुसार व्यवहार करके मातृभूमि पर लगा हुआ कलक मिटाऊ। इस प्रकार वसुमति तो भविष्य के विषय मे विचार कर रही थी लेकिन रथी धारिणी के शव को भस्म होते देखकर अधीर हो उठा। वह जोर–जोर से रोने लगा और वसुमति से कहने लगा कि हे पुत्री तेरी माता की मृत्यु का कारण मै पापी ही हू। मेरे से रक्षा पाने के लिए ही उसे शरीर त्यागना पडा है और अप्सराओ को भी लज्जित करने वाला उसका सुन्दर शरीर अकाल मे ही भस्म हो रहा है। इस सती की हत्या का पाप मुझे सदा ही सन्तप्त करता रहेगा। उससे बचने के लिए मैं यही ठीक समझता हू कि इसी चिता मे पडकर चला जाऊ। इसलिए तुम इस मेरे रथ मे बेठकर जाओ। मै तो इसी चिता मे जल कर भस्म हो जाऊगा और इस प्रकार अपने पाप का यत्किचित प्रायश्चित्त करूगा।

वसुमति से यह कह रथी चिता मे कूदने के लिए अपने शरीर पर से [illegible] निकालने लगा। वसुमति ने सोचा कि इस समय यह बहुत दु खी है। यदि इसे समझाया न गया तो यह चिता मे कूद पडेगा। इस प्रकार विचार करके रथी का हाथ पकड उससे कहने लगी–पिताजी! आप यह क्या कर रहे है? जिस काम के करने से आपने अभी मुझे रोका था वही काम आप स्वय [illegible] कर रहे है? इस प्रकार अग्नि मे जलने का क्या परिणाम होगा? इस तरह [illegible] बाल–मरण है जो अनन्त ससार बढाने वाला है। आप पाप से घबरा [illegible] जल मरना चाहते है लेकिन इस तरह जल मरने से पाप कम नही [illegible] और पाप बढाना है। माता ने तो अपना शरीर त्याग कर [illegible] और अब सुधरे हुए आप निष्कारण ही आग मे जल मरे

यह कैसे ठीक होगा? पहले तो अब आप मे पाप रहा ही नही है। पश्चात्ताप के कारण आपका पाप मिट गया है। कदाचित् फिर भी आप अपने मे पाप रहा समझते हैं तो वह पाप इस तरह नही मिट सकता। उस पाप को निकालने का उपाय तो, सदाचार पूर्वक दीन–दुःखी की सेवा करना और पहले किए हुए पाप का पश्चात्ताप करना ही है। इसलिए आप आत्महत्या का कायरतापूर्ण विचार त्यागिये। इसके सिवा आपने मुझे पुत्री तथा मैंने आपको पिता माना है। इसलिए मेरी रक्षा का भार आप ही पर है। यदि आप जल मरेंगे तो फिर मेरी रक्षा और मेरा पालन कौन करेगा? उस दशा मे आप अपने कर्त्तव्य का पालन भी न कर सकेंगे। इसलिए आपका प्राणत्याग करना किसी भी दृष्टि से उचित नही है।

वसुमति ने इस प्रकार रथी को समझा कर उसे धैर्य दिया और मरने से रोका। वसुमति के समझाने से रथी वसुमति को रथ मे बैठा कर कौशाम्बी की ओर चला। मार्ग मे वसुमति धर्मोपदेश द्वारा रथी का सन्ताप मिटाती जाती थी। उसने रथी से यह भी कहा कि आप, माता के मरने आदि का समाचार और मेरा परिचय किसी को भी न सुनाइयेगा। ऐसा करने से अनिष्ट और अकल्याण की सम्भावना है। इसलिए आप इन सब बातो को हृदय मे इस तरह दबा रखियेगा, जैसे ये बाते हुई ही नहीं है। और मेरा परिचय भी इस प्रकार गुप्त रखियेगा, जैसे आप मुझे जानते ही नहीं है। मैं भी अनिश्चित काल तक के लिए न तो किसी को अपना परिचय ही दूगी, न किसी से यह वृत्तान्त ही कहूगी।

रथी को इस प्रकार समझा कर उसके रथ मे बैठी हुई वसुमति रथी के घर आई। रथी के घर पर रथी की स्त्री रथी के आने की प्रतीक्षा ही कर रही थी। वह सोचती थी कि चम्पा की लूट हुई है और साधारण सैनिकों के यहा भी बहुत द्रव्य आया है। मेरे पति तो रथी हैं इसलिए वे अवश्य ही बहुत–सा माल लावेगे। इस प्रकार विचारती हुई वह रथी की प्रतीक्षा ही कर रही थी इतने ही मे रथ लिए हुए रथी भी आ गया। अपने पति को आया देखकर रथी की स्त्री बहुत प्रसन्न हुई। वह सोचती थी कि [illegible] मे रथ मे से निकाल कर मेरे घर मे विपुल धन लाया जावेगा लेकिन [illegible] यह आशा कुछ ही देर मे लुप्त हो गई। उसने देखा कि रथ मे से [illegible] एक सुन्दर कन्या घर मे आई है और खाली रथ रथ–शाला को [illegible] वसुमति को देखकर रथी की स्त्री का आश्चर्य भी हुआ और [illegible] रूप–सौन्दर्य को देखकर [illegible] आश्चर्य करती थी और [illegible]

देव कन्या हे या गन्धर्व कन्या है। साथ ही उसको यह सदेह भी होता था कि कही यह कन्या मेरा सुहाग–सुख छीनने और मेरे पति के हृदय पर अपना अधिकार करने के लिए तो नहीं आई है।

वह इस प्रकार विचार ही रही थी, उसी समय वसुमति ने उसके पास जाकर उसको प्रणाम किया। प्रणाम का उचित उत्तर देकर रथी की स्त्री ने वसुमति से यह प्रश्न किया कि तुम किसकी कन्या हो और यहा कैसे आई हो? रथी की स्त्री के इस प्रश्न के उत्तर मे वसुमति ने कहा–माता, मैं आप ही की कन्या हू, और यह घर मेरा ही है। मैं आपकी सेवा करने के लिए आई हू।

वसुमति और रथी की स्त्री मे ये बाते हो ही रही थी, उसी समय वहा पर रथी भी आ गया। रथी ने अपनी स्त्री से कहा कि अपने कोई सन्तान नही है इसलिए मैं इस कन्या को लाया हू। इसको अपनी ही कन्या समझकर सब तरह से इसका प्रबन्ध रखना, और इसे किसी प्रकार का कष्ट न हो, इसका ध्यान रखना। इस कन्या का तो दुर्भाग्य ही है जो इसे अपनी कन्या बनकर जीवन बिताना पडेगा, लेकिन अपना तो सद्‌भाग्य ही है जो अपने को ऐसी कन्या मिली है। अपने यहा ऐसी कन्या जन्म ले ऐसा अपना भाग्य नही है, फिर भी किन्ही पूर्वकालीन पुण्य के प्रभाव से अपने को यह कन्या प्राप्त हुई है। इसलिए इसके खान–पान आदि के सबध मे सावधानी रखना।

यह कहकर रथी चुप हो गया। रथी की स्त्री ने भय–वश रथी से तो यही कहा कि मै आपकी आज्ञानुसार सावधानी रखूगी और इसका पालन अपनी पुत्री की तरह ही करूगी, लेकिन उसके हृदय में वसुमति की ओर से सन्देह बना ही रहा। वह सोचती थी कि यह सुन्दरी है और युवती है। यद्यपि पति इसे पुत्री कहते हैं लेकिन मुझे पति के कथन पर विश्वास नहीं होता। मेरा हृदय तो यही कहता है कि यह मेरी सोत बनकर मेरा सुखसुहाग छीनने के लिए ही आई है। जो भी हो परन्तु इस समय पति युद्ध से आ रहे हैं, उनकी आखें लाल हैं इसलिए इस समय तो पति जो कुछ कहें, उसे स्वीकार करने मे ही कल्याण है फिर भी मुझे इसकी ओर से सावधान रहना चाहिए।

रथी की स्त्री के हृदय मे वसुमति के प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया था, लेकिन वसुमति ने इस ओर ध्यान तक नही दिया। वह तो यही सोचती थी, मुझे तो इन माता–पिता की सेवा करनी है। मैं इनकी पुत्री हू, इसलिए मेरा कर्तव्य इनकी सेवा करना ही है। इस प्रकार वसुमति के हृदय मे कोई दूसरा विचार नही हुआ।

यह कैसे ठीक होगा? पहले तो अब आप मे पाप रहा ही नही हे। पश्चात्ताप के कारण आपका पाप मिट गया है। कदाचित् फिर भी आप अपने मे पाप रहा समझते हैं, तो वह पाप इस तरह नही मिट सकता। उस पाप को निकालने का उपाय तो, सदाचार पूर्वक दीन–दु खी की सेवा करना, ओर पहले किए हुए पाप का पश्चात्ताप करना ही है। इसलिए आप आत्महत्या का कायरतापूर्ण विचार त्यागिये। इसके सिवा, आपने मुझे पुत्री तथा मैंने आपको पिता माना है। इसलिए मेरी रक्षा का भार आप ही पर है। यदि आप जल मरेगे तो फिर मेरी रक्षा ओर मेरा पालन कोन करेगा? उस दशा मे आप अपने कर्त्तव्य का पालन भी न कर सकेगे। इसलिए आपका प्राणत्याग करना किसी भी दृष्टि से उचित नही है।

वसुमति ने इस प्रकार रथी को समझा कर उसे धेर्य दिया ओर मरने से रोका। वसुमति के समझाने से रथी वसुमति को रथ मे बैठा कर कौशाम्बी की ओर चला। मार्ग मे वसुमति धर्मोपदेश द्वारा रथी का सन्ताप मिटाती जाती थी। उसने रथी से यह भी कहा कि आप, माता के मरने आदि का समाचार, और मेरा परिचय किसी को भी न सुनाइयेगा। ऐसा करने से अनिष्ट ओर अकल्याण की सम्भावना है। इसलिए आप इन सब बातो को हृदय मे इस तरह दबा रखियेगा, जैसे ये बाते हुई ही नहीं हैं। और मेरा परिचय भी इस प्रकार गुप्त रखियेगा, जैसे आप मुझे जानते ही नहीं हैं। मैं भी अनिश्चित काल तक के लिए न तो किसी को अपना परिचय ही दूगी, न किसी से यह वृत्तान्त ही कहूगी।

रथी को इस प्रकार समझा कर उसके रथ मे बैठी हुई वसुमति रथी के घर आई। रथी के घर पर रथी की स्त्री रथी के आने की प्रतीक्षा ही कर रही थी। वह सोचती थी कि चम्पा की लूट हुई है ओर साधारण सेनिको के यहा भी बहुत द्रव्य आया है। मेरे पति तो रथी हें इसलिए वे अवश्य ही बहुत–सा माल लावेगे। इस प्रकार विचारती हुई वह रथी की प्रतीक्षा ही कर रही थी इतने ही मे रथ लिए हुए रथी भी आ गया। अपने पति को आया देखकर रथी की स्त्री बहुत प्रसन्न हुई। वह सोचती थी कि बस थोडी ही दर मे रथ मे से निकाल कर मेरे घर मे विपुल धन लाया जावेगा लेकिन उसकी यह आशा, कुछ ही देर मे लुप्त हो गई। उसने देखा कि रथ म से उतर कर एक सुन्दर कन्या घर मे आई है ओर खाली रथ रथ–शाला को चला गया ह। वसुमति को देखकर रथी की स्त्री को आश्चर्य भी हुआ ओर सदह भी। उसक रूप–सोन्दर्य को देखकर तो आश्चर्य करती थी ओर सावती थी कि यह काई

देव कन्या है या गन्धर्व कन्या है। साथ ही उसको यह सदेह भी होता था कि कहीं यह कन्या मेरा सुहाग–सुख छीनने ओर मेरे पति के हृदय पर अपना अधिकार करने के लिए तो नहीं आई है।

वह इस प्रकार विचार ही रही थी उसी समय वसुमति ने उसके पास जाकर उसको प्रणाम किया। प्रणाम का उचित उत्तर देकर रथी की स्त्री ने वसुमति से यह प्रश्न किया कि तुम किसकी कन्या हो ओर यहा केसे आई हो? रथी की स्त्री के इस प्रश्न के उत्तर मे वसुमति ने कहा–माता, मे आप ही की कन्या हू, और यह घर मेरा ही हे। मै आपकी सेवा करने के लिए आई हू।

वसुमति और रथी की स्त्री मे ये बाते हो ही रही थीं, उसी समय वहा पर रथी भी आ गया। रथी ने अपनी स्त्री से कहा कि अपने कोई सन्तान नही है इसलिए मैं इस कन्या को लाया हू। इसको अपनी ही कन्या समझकर सब तरह से इसका प्रबन्ध रखना, और इसे किसी प्रकार का कष्ट न हो, इसका ध्यान रखना। इस कन्या का तो दुर्भाग्य ही है जो इसे अपनी कन्या बनकर जीवन बिताना पडेगा, लेकिन अपना तो सद्‌भाग्य ही है जो अपने को ऐसी कन्या मिली है। अपने यहा ऐसी कन्या जन्म ले ऐसा अपना भाग्य नही है, फिर भी किन्ही पूर्वकालीन पुण्य के प्रभाव से अपने को यह कन्या प्राप्त हुई है। इसलिए इसके खान–पान आदि के सबध मे सावधानी रखना।

यह कहकर रथी चुप हो गया। रथी की स्त्री ने भय–वश रथी से तो यही कहा कि मैं आपकी आज्ञानुसार सावधानी रखूगी और इसका पालन अपनी पुत्री की तरह ही करूगी लेकिन उसके हृदय मे वसुमति की ओर से सन्देह बना ही रहा। वह सोचती थी कि यह सुन्दरी है ओर युवती है। यद्यपि पति इसे पुत्री कहते हैं, लेकिन मुझे पति के कथन पर विश्वास नहीं होता। मेरा हृदय तो यही कहता है कि यह मेरी सौत बनकर मेरा सुखसुहाग छीनने के लिए ही आई है। जो भी हो परन्तु इस समय पति युद्ध से आ रहे हैं, उनकी आखे लाल है इसलिए इस समय तो पति जो कुछ कहे, उसे स्वीकार करने मे ही कल्याण है फिर भी मुझे इसकी ओर से सावधान रहना चाहिए।

रथी की स्त्री के हृदय मे वसुमति के प्रति सन्देह उत्पन्न हो गया था लेकिन वसुमति ने इस ओर ध्यान तक नही दिया। वह तो यही सोचती थी, मुझे तो इन माता–पिता की सेवा करनी है। मैं इनकी पुत्री हू, इसलिए मेरा धर्म इनकी सेवा करना ही है। इस प्रकार वसुमति के हृदय मे कोई दूसरा विचार नहीं हुआ।

वसुमति ने, रथी की स्त्री से कहा—माता, इस समय मुझे भूख लग रही है, इसलिए कुछ खाने को दीजिए। रथी के आने की सूचना न होने के कारण रथी के यहा भोजन तेयार नही था लेकिन पहले का बचा हुआ कुछ भोजन रखा था। रथी की स्त्री ने वसुमति को वही भोजन दिया। वसुमति राजकन्या थी। इस कारण अब तक वह अच्छा ही भोजन करती रही थी। इस समय उसके सामने जो भोजन आया, वेसा भोजन उसने कभी नहीं किया था। फिर भी उसने बिना किसी सकोच या आनाकानी के रथी की स्त्री का दिया हुआ वह भोजन किया। वास्तव मे भूख होने पर ऐसा ही होता हे। जब भूख होती है तब चाहे जैसा भोजन हो अच्छा ही लगता है, और भूख न होने पर अच्छा भोजन भी स्वादिष्ट नहीं लगता। यदि लोग भूख मिटाने के लिए भोजन करते हो तो उन्हे अनेक प्रकार के साग, चटनी आचार ओर पापड आदि चीजो की आवश्यकता कदापि न हो। इनकी आवश्यकता तो भूख न होने पर भी भोजन करने के समय ही, हुआ करती है।

भोजन करके वसुमति ने रथी के घर को एक साधारण दृष्टि से देखकर यह जान लिया कि इस घर मे किस—किस सुधार की आवश्यकता है। यह सोचती हे कि अब यह घर मेरा ही हे। इसलिए इसको व्यवस्थित ओर स्वच्छ रखना मेरा कर्त्तव्य हे। मैं इस कर्त्तव्य को पालन करने की तन—मन से चेष्टा करूगी।

इस प्रकार विचारती हुई वसुमति रात के समय सो गई। वह नित्य ही महल मे कोमल शेय्या पर सोया करती थी उसके सोने के स्थान पर सुगन्ध उडा करती थी, ओर उसकी सेवा के लिए दासिया प्रस्तुत रहती थी, लेकिन परिस्थितिवश वह रथी के घर मे सो रही हे, जहा महल की सी सामग्री नही हे। फिर भी उसको किसी प्रकार का खेद नहीं हे। उसका ध्यान इस तरह की बातो की ओर गया ही नही हे। वह तो यही सोचती हे कि मुझे माता कि शिक्षा के अनुसार बहुत से काम करने हें। वह समय कब होगा जब मै माता की शिक्षा को सफल कर दिखाऊगी।

वसुमति सूर्योदय से पहले ही उठ खडी हुई। शोचादि से निवृत होकर वह गृहकार्य मे लग गई। उसने धारिणी से गृहकार्य सबधी जो शिक्षा पाई थी, उसे वह कार्यान्वित कर दिखाने लगी। यद्यपि उसने माता से शिक्षा ही शिक्षा पाई थी, दासियो के कारण उसे स्वय को गृहकार्य कभी नहीं करने पडे थे फिर भी उनके करने मे उसको किसी भी प्रकार की अरुचि नहीं हुई। न उनका करना भार ही जान पडा। उसने अपने हाथ से घर का कूडा—कचरा

साफ किया, सब चीजो को साफ करके व्यवस्थित रखा पानी छाना पशुशाला आदि साफ करके, दूध–दही की व्यवस्था की और यह सब करके रसोई बनाने लगी।

चतुर स्त्री साधारण वस्तुओ से भी विशेष भोजन बना देती हे और मूर्ख स्त्री विशेष वस्तुओ को भी खराब कर देती हे। वे ही वस्तु चतुर–स्त्री के हाथ मे आने पर, वह चतुर स्त्री उन वस्तुओ से श्रेष्ठ सुस्वादु ओर सात्विकतापूर्ण भोजन बना देती है, लेकिन मूर्ख स्त्री उन्ही वस्तुओ से कुस्वादु तामसी ओर हानि करने वाला भोजन बनाती है। इस तरह भोजन का अच्छा ओर बुरा बनना केवल वस्तुओ के ही अधीन नही हे किन्तु बनाने वाली के अधीन भी है।

वसुमति ने रथी के घर भोजन बनाया। रथी, रथी की स्त्री तथा रथी के यहा के और सब लोग वसुमति का बनाया भोजन करके बहुत प्रसन्न हुए। सब लोग यही कहने लगे कि वस्तुए तो वे ही हैं, जिनसे नित्य भोजन बनता था लेकिन आज का जैसा सुस्वादु भोजन कभी नहीं हुआ था। यह कन्या तो जेसे साक्षात् सरस्वती ही हे। इस तरह सब लोग वसुमति की प्रशसा करने लगे। वसुमति सब लोगो को प्रसन्न रखती हुई रथी के यहा रहने लगी। जिस तरह धारिणी ने अपने बलिदान से रथी के हृदय का परिवर्तन कर दिया था, उसी तरह वसुमति ने अपने परिश्रम से रथी के घर का परिवर्तन कर दिया। उसने रथी के घर को स्वच्छ और पवित्र बना दिया। सब लोग कहने लगे कि पुत्री ने तो इस घर को देवसदन–सा बना दिया। इस प्रकार सब लोगो द्वारा वसुमति की प्रशसा होने लगी।

कसौटी पर

विपत्ति धैर्य की कसोटी है। धीर आदमी की परीक्षा विपत्ति के समय ही होती है। जो विपत्ति के समय भी न घबरावे उस समय भी साहस रखे, वही धीर है। विपत्ति के न होने पर, सम्पत्ति के समय तो सभी लोग धीर रहते ही हैं, लेकिन वास्तव मे धीर वही है, जो विपत्ति के समय भी निश्चल रहे, अपने ध्येय से पतित न हो, ओर उस विपत्ति को भी तुच्छ समझे। तुलसीदासजी ने कहा भी है–

धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपति काल परखिये चारी।

विपत्ति के समय जो धैर्य रखता है, वास्तव मे वही धीर है। जिसमे धैर्य है, वही विपत्ति का सामना कर सकता है, वही धर्म की आराधना कर सकता है, और वही निश्चित ध्येय तक पहुच सकता है। जिसमे धेर्य नही हे जो विपत्ति से घबरा जाता है, वह कुछ भी नही कर सकता है चाहे उसका ध्येय, कितना ही श्रेष्ठ और उच्च क्यो न हो। ससार मे ऐसा कोई कार्य नही है, जिसमे यत्किचित विघ्न, या विपत्ति न आती हो। उन विघ्न या विपत्ति का सामना करने वाला उन पर विजय प्राप्त करने वाला ही कार्य कर सकता हे, जो उनसे परास्त हो जाता हे, वह कार्य नही कर सकता। इसलिए लोकिक और अलौकिक दोनो ही प्रकार के कार्यों मे धैर्य की आवश्यकता हे तथा जिसमे धेर्य हे वही सच्चा वीर हे।

वसुमति बडी ही धेर्यवती थी। एक राजकन्या के लिये पिता का छूटना माता का असमय मे मरना, ओर स्वय को दूसरे के घर का आश्रय लेकर जो काम कभी नही किये उन कामो को करना पडे, तो वह कैसा विपति का समय माना जाता है। ऐसे समय मे कोन न घबरा जावेगा? किसका धेर्य छूट न जावेगा? लेकिन वसुमति को धारिणी ने धैर्य की जो शिक्षा दी थी उसक प्रताप से, न तो वसुमति इन सब बातो को कष्ट मानकर घबराई ही न अपन ध्येय से ही विस्मृत हुई। वह घबराती भी क्यो? घबराती तब जब वह इन सब

कसौटी पर

विपत्ति धेर्य की कसोटी हे। धीर आदमी की परीक्षा विपत्ति के समय ही होती हे। जो विपत्ति के समय भी न घबरावे उस समय भी साहस रखे, वही धीर हे। विपत्ति के न होने पर, सम्पत्ति के समय तो सभी लोग धीर रहते ही हैं, लेकिन वास्तव मे धीर वही हे, जो विपत्ति के समय भी निश्चल रहे, अपने ध्येय से पतित न हो, ओर उस विपत्ति को भी तुच्छ समझे। तुलसीदासजी ने कहा भी है–

धीरज धर्म मित्र अरु नारी, आपति काल परखिये चारी।

विपत्ति के समय जो धेर्य रखता हे, वास्तव मे वही धीर हे। जिसमे धैर्य है, वही विपत्ति का सामना कर सकता है, वही धर्म की आराधना कर सकता है, और वही निश्चित ध्येय तक पहुच सकता हे। जिसमे धेर्य नही हे जो विपत्ति से घबरा जाता हे, वह कुछ भी नही कर सकता हे, चाहे उसका ध्येय, कितना ही श्रेष्ठ ओर उच्च क्यो न हो। ससार मे ऐसा कोई कार्य नही हे, जिसमे यत्किचित विघ्न, या विपत्ति न आती हो। उन विघ्न या विपति का सामना करने वाला उन पर विजय प्राप्त करने वाला ही कार्य कर सकता हे जो उनसे परास्त हो जाता हे, वह कार्य नही कर सकता। इसलिए लोकिक और अलोकिक दोनो ही प्रकार के कार्यों मे धेर्य की आवश्यकता हे तथा जिसमे धेर्य है वही सच्चा वीर हे।

वसुमति बडी ही धेर्यवती थी। एक राजकन्या क लिय पिता का छूटना माता का असमय मे मरना ओर स्वय को दूसरे के घर का आश्रय लकर जो काम कभी नही किये उन कामो को करना पडे तो वह केसा विपति का समय माना जाता हे। ऐसे समय मे, कोन न घबरा जावगा? किसका धेय छूट न जावेगा? लेकिन वसुमति को धारिणी ने धेर्य की जा शिक्षा दी थी उसके प्रताप से, न तो वसुमति इन सब बातो को कष्ट मानकर घबराइ ही न अपने ध्येय से ही विस्मृत हुई। वह घबराती भी क्या? घबराती तब जब वह इन सब

बातो को कष्ट मानती। उसने इन सब बातो म से किसीको भी कष्ट नही माना। घर राज्य, दास–दासी पिता आदि के छूटने, माता के मरने तथा रथी के घर का काम करने आदि मे से उसने किसी मे भी कष्ट नही माना इसलिय वह इन सब बातो के होने पर भी प्रसन्न ही रही। वास्तव मे विपत्ति के समय तभी धैर्य रह सकता है, जब विपत्ति को विपत्ति ही न माने। जो विपत्ति को विपत्ति मानता हे वह कभी धैर्य भी त्याग बेठता है।

रथी के घर को अपना ही घर रथी को पिता तथा उसकी पत्नी को माता मान कर वसुमति घर के सब काम–काज अपने हाथ से किया करती थी। छोटे से छोटा या बडे से बडा काम करने मे न तो उसे आलस्य होता था न सकोच होता था, न थकावट ही होती थी। यद्यपि रथी के घर म नोकर–चाकर भी थे लेकिन वसुमति, उन पर आज्ञा चलाकर ही नही रह जाती थी किन्तु स्वय ही हाथ से काम करती थी। जब वसुमति स्वय भी हाथ से काम करती तब नोकर–चाकर भी, केसे बेठे रह सकते थे? वे भी काम करते ही। वसुमति उनके खान–पान आदि का बराबर ध्यान रखती, सुख–दु ख मे उनकी सहायता करती उनका सम्मान करती ओर उन्हे आत्मीय मानती, हल्की दृष्टि से न देखती। इन कारणो से, नोकर–चाकर भी वसुमति से प्रसन्न रहते। गृहकार्य से निवृत्त होकर वसुमति सबके साथ बैठ जाती, ओर सबको धर्म–विषयक बाते सुनाती। वह सबको खिला–पिला कर स्वय खाती–पीती, सबको सुलाकर स्वय सोती, ओर सबसे पहले उठकर गृहकार्य मे लग जाती। इस तरह उसने अपने सद्व्यवहार से घर के सब लोगो का हृदय जीत लिया। सब लोग उसकी प्रशसा करते, तथा प्रत्येक कार्य के विषय मे, उसीसे कहते ओर पूछते।

वसुमति द्वारा अपने घर की इस प्रकार उन्नति ओर सुव्यवस्था देखकर रथी भी बहुत प्रसन्न रहता था। वह सोचा करता, यह राजकन्या हे, इसलिये अनेक दासियो से सेवित रहकर राजमहल मे रहती थी, फिर भी मेरे यहा किस प्रकार काम कर रही हे। इसने मेरे घर को कैसा बना दिया हे। इसको अपनी तो चिन्ता ही नही हे। न तो स्वय के खाने–पीने की ओर ध्यान देती हे न पहनने–ओढने या सोने–जागने की ओर। साथ ही मेरे और मेरी स्त्री के प्रति यह वेसी ही भक्ति रखती है, जैसी भक्ति माता–पिता के प्रति सन्तान रखती है। मेरे कारण इसकी माता की मृत्यु हुई, यह बात तो इसने बिल्कुल ही विस्मृत कर दी है। इसके किसी भी व्यवहार से यह नही जान पडता कि इसको उस घटना का स्मरण है। इसने मुझे भी पवित्र बना दिया

है, ओर मेरे घर को भी पवित्र कर दिया हे। इसीके प्रताप से मेरे मे पहले वाले दुर्गुण नहीं हैं। मेरे पर इसका बहुत उपकार हे, बहुत भार हे, ओर इस प्रकार गृहकार्य करके, यह मेरे पर अधिक भार चढा रही हे। मेरे लिए तो यह पुत्री ही नही, किन्तु आराध्य देवी के समान जीवन दात्री हे। में इसके ऋण से केसे मुक्त हो सकता हू?

इस प्रकार वसुमति से रथी भी प्रसन्न रहता तथा रथी के घर म रहने वाले दूसरे लोग भी प्रसन्न रहते, लेकिन वसुमति के प्रति रथी की स्त्री के हृदय मे जो सन्देह उत्पन्न हुआ था, वह दिन–प्रतिदिन वृद्धिगत ही होता जाता था ओर इस कारण वह वसुमति से अप्रसन्न रहती। उसको, पति तथा नोकर–चाकर आदि लोगो द्वारा की जाने वाली वसुमति की प्रशसा असह्य होती। वह सोचती कि यह कौन हे, कहा जन्मी तथा बडी हुई हे, किसकी लडकी हे, इसका क्या नाम है, आदि बाते तो कोई पूछता ही नही हे, सब लोग केवल इसकी प्रशसा ही करने लगते हें। यह भी ऐसी चालाक हे कि इसने थोडे ही दिनो म सारे घर पर आधिपत्य, ओर घर के सब लोगो को जादू से अपने अधीन कर लिया हे। पति भी इसके अगुल के इशारे पर नाचते–से जान पडते हे। यह घर पर का काम भी इस तरह करती है कि जेसे स्वय के घर का ही काम करती हो। अपने घर का काम भी इस तरह मन लगा कर कोई नही करता। लेकिन यह तो, काम के आगे शरीर ओर खाने–पीने आदि किसी भी बात का ध्यान नही रखती। मेरा घर है, फिर भी में इस तरह काम नही करती, ओर यह इस तरह काम क्यो करती हे? अवश्य ही, इसके हृदय मे दुर्भावना हे। यह इस घर की स्वामिनी बनने की इच्छा न रखती होती, तो इतना काम क्या करती? घर के सब लोगो को अपने हाथ मे क्यो कर लेती तथा पति भी इसस प्रम क्या करत? मुझे इसकी ओर से सावधान हो जाना चाहिए। इस काटे को अभी स उखाड फेकना चाहिए, अन्यथा मुझे अपने सुख–सुहाग से वचित हो जाना पडेगा ओर मेरा स्थान यह ले लेगी।

रथी की स्त्री के हृदय मे, वसुमति की ओर स इस प्रकार का सन्देह उत्पन्न हो गया था, इस कारण वह वसुमति से ईर्ष्या करन लगी। वह सोचती थी कि घर मे इसी की पूछ होती हे, मुझे ता कोई पूछता भी नही हे। जेसे घर की मालकिन यही हे। में मालकिन तो एक ओर बैठी रहती हू, ओर यह मालकिन बनी हुई हे। सबसे पहले तो इसका यह गोरव घटाना चाहिए। ओर फिर जिस तरह भी हो इसका घर से निकालना चाहिए। यह घर स निकले। तभी मेरा दु ख मिट सकता हे।

लोग समझते हैं कि प्रतिस्पर्द्धा करने मे तो परिश्रम करना होता है लेकिन ईर्ष्या करने मे कुछ नही करना होता। इस प्रकार के विचार वाले लोग काम द्वारा किसी से बढकर नही होना चाहते, किन्तु दूसरे को गिरा कर स्वय बडे बनना चाहते हैं। रथी की स्त्री ने भी इसी मार्ग का अवलम्बन लिया। वह वसुमति को सबकी दृष्टि से गिराने का प्रयत्न करने लगी। इसके लिए कभी वह स्वय ही किसी स्थान पर कूडा–करकट डाल देती ओर फिर वसुमति को बुलाकर उससे कहने लगती कि तू तो स्वय को घर की सफाई रखने वाली कहती है फिर यह कचरा–कूडा केसे रहने दिया? कभी किसी वर्त्तन को स्वय ही गन्दा कर देती कभी किसी वस्तु को अस्त–व्यस्त डाल देती ओर कभी भोजन के पदार्थ मे कुछ मिला देती। ऐसा करके फिर वह उसके लिए वसुमति को अपराधिन बताने लगती तथा उसकी निन्दा ओर भर्त्सना करने लगती। यद्यपि वसुमति रथी की स्त्री की करतूत समझ चुकी थी, फिर भी वह कभी आवेश मे न आती किन्तु यही कहती कि माता, क्षमा करो। भूल से यह अपराध हुआ होगा। भविष्य मे मे इस विषय मे अधिक ध्यान रखूगी। अव तक आप मेरे काम मे दोष नही निकाला करती थी, इसी से मुझ मे असावधानी आ गई होगी। अब सावधानी रखूगी।

वसुमति को उसकी माता ने यह शिक्षा दे रखा थी कि किसी भी समय और किसी भी स्थिति मे क्रोध नही करना होगा। वसुमति को माता की यह शिक्षा याद थी वह सेवाधर्म की गहनता ओर उसमे होने वाली कठिनाइयो को भली प्रकार समझती थी। वह जानती थी कि सेवा धर्म किन कारणो से कठिन माना गया है। सेवा धर्म कार्य की लघुता–गुरुता के कारण गहन नही हे किन्तु इस कारण गहन है कि कभी–कभी अच्छे काम को भी बुरा, ओर अधिक काम को भी थोडा बताकर, व्यर्थ की डाट–डपट बताई जाती हे। अधिक या अच्छा काम करना कठिन नही है, कठिन तो अच्छे काम को भी बुरा और अधिक काम को थोडा सुनना है। ऐसे समय मे शाति रहना कठिन है इसलिए सेवाधर्म को गहन बताया गया है। इन बातो को जानने के कारण, वसुमति किसी भी समय रथी की स्त्री के व्यवहार से क्रुद्ध न होती, किन्तु नम्रतापूर्वक अपना अपराध स्वीकार करके, क्षमा माग लेती और उस कार्य को पुन कर डालती।

रथी की स्त्री सोचती थी कि मैं इसके साथ ऐसा कठिन व्यवहार करूगी तो यह किसी समय क्रुद्ध होकर मुझसे लडाई करने लगेगी और जब लडने लगेगी, तक इसको घर से निकालना सुगम होगा, लेकिन रथी की स्त्री

का यह प्रयत्न भी निष्फल रहा। इसी बीच मे एक ऐसी बात हो गई, जिसे लेकर रथी की स्त्री ने कोलाहल करना शुरू कर दिया और कलह मचा दिया।

वसुमति को तन–मन से गृहकार्य करती देखकर रथी सोचा करता कि यह दधिवाहन और धारिणी की पुत्री होकर भी, मेरे घर मे इतना काम करती है कि जितना काम अनेक दासी–दास भी नहीं कर सकते। इतना काम करके भी अपने खान–पान ओर पहनने–आढने की चिन्ता नही रखती। मेने भी आज तक इससे इस विषय मे कुछ नही कहा, न विशेष प्रकार से इसकी खबर ही ली। इसलिए किसी दिन इसको अवकाश मे देखकर, इससे इस विषय मे कुछ कहूगा।

रथी इसी प्रकार विचार करता था। एक दिन उसने वसुमति को कामकाज से निपट कर बैठी हुई देखा। उस समय वसुमति गृहकार्य के विषय मे ही विचार कर रही थी। वह सोच रही थी कि मैंने कोन–कोन से काम कर लिए हैं, ओर कौन–कोन से काम करना शेष है। रथी ने इस समय को वसुमति से बात करने के लिए उपयुक्त समझा, इसलिए वह वसुमति के सामने आया। रथी की स्त्री तो इस चिन्ता मे ही रहती थी कि मेरे पति इस लडकी को क्यो लाये हैं? इसको लाने का उद्देश्य क्या हे? यह भेद किसी तरह मालूम करना चाहिए। यद्यपि धारिणी के बलिदान ओर वसुमति के उपदेश से रथी बिल्कुल ही पवित्र जीवन बिताने वाला गृहस्थ हो गया था, उसके हृदय म किंचित भी पाप–भावना नही थी, ओर वह वसुमति को ही नही, किन्तु ससार की समस्त परस्त्री को माता ओर बहन के समान मानने लगा था लेकिन रथी की स्त्री को यह क्या मालूम? वह तो अपने पति को वेसा ही दुराचारी, तथा परदार–लम्पट समझती थी, जेसा कि पहले समझती थी। इसलिए वह तो वसुमति के विषय मे भी यही अनुमान करती थी कि मेरे पति इसको ऊपर से तो पुत्री कहते हैं, लेकिन वास्तव मे ये इसको सुख–सुहाग देने के लिए ही लाये हैं। रथी की स्त्री इस प्रकार का अनुमान करती थी लेकिन इस अनुमान को पुष्ट करने के लिए उसे कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नही मिला था। इसलिए वह अपने अनुमान के विषय मे किसी प्रत्यक्ष प्रमाण की खोज म ही रहती थी। वसुमति को बेठी हुई ओर अपने पति को उसके सामने आते देखकर रथी की स्त्री ने सोचा कि आज सच्चा ओर पूरा भेद मालूम हो सकेगा। इस प्रकार विचार कर वह रथी ओर वसुमति की पारस्परिक बातचीत सुनने के लिए छिप गई ओर दोनो क्या बात करते है यह ध्यान लगाकर सुनने लगी।

जो पुरुष या स्त्री काम करती रहती है, उसके वस्त्र न तो बहुत बढिया ही हो सकते है न बिलकुल स्वच्छ ही रह सकते है और काम करने वाला अपने पर आभूषणो का बोझ तो रखेगा ही क्यो? काम करने वाले को यह विचार रहता है कि बढिया वस्त्र पहनने से शरीर मे आलस्य आता है। फिर तो यही सूझता है कि मेरे यह वस्त्र काम करने से खराब हो जावेगे इसलिए जहा तक भी हो सके मुझे काम से बचते ही रहना चाहिए। यदि विचार किया जावे तो बहुत कुछ अश मे यह विचार ठीक भी ठहरता है। किसी बढिया कपडे पहने हुई स्त्री को स्वय के दूध पीते बालक को गोद मे लेने मे भी हिचकिचाहट होगी। वह सोचेगी कि कहीं यह बालक हग–मूत देगा या दूध उगल देगा तो मेरे ये कपडे खराब हो जावेगे। इस तरह कपडो की रक्षा के विचार से उसे अपनी प्रिय सन्तान को लेने मे भी सकोच होगा, हा किसी दूसरे वस्त्र द्वारा अपने बढिया वस्त्रो की रक्षा का प्रवन्ध करने के पश्चात् चाहे ले ले। माता के लिए सन्तान से अधिक प्रिय तो कोई नही माना जाता। जब बढिया कपडे होने पर, अपनी सन्तान को लेने मे भी सकोच होता है तो दूसरे कार्य करने की इच्छा तो हो ही केसे सकती है? यही बात पुरुषो के लिए भी है। इस कारण जो स्त्री–पुरुष काम करने वाले होते है, वे बढिया कपडे नही पहनते, या पहन ही नहीं सकते अथवा उनके बढिया कपडे स्वच्छ नही रह सकते। वे आभूषणो को भी कार्य का बाधक समझते हें ओर वस्त्र तो चाहे जितने स्वच्छ तथा बढिया हो काम करने पर उनमे शीघ्र ही दाग, या मेलापन आना स्वाभाविक है।

वसुमति भी काम किया करती थी, इसलिए उसके शरीर पर भी न तो बढिया वस्त्र ही थे न आभूषण ही थे। वह जो साधारण वस्त्र पहने थी वे भी बहुत स्वच्छ न थे लेकिन ऐसे गन्दे भी न थे जो स्वास्थ्य खराब करे अथवा जिनसे घृणा हो। बहुत लोग काम के नाम पर स्वास्थ्य–नाशक या घृणोत्पादक वस्त्र पहने रहते हें लेकिन वसुमति इसे ठीक नही समझती थी। वह समय–समय पर अपने वस्त्रो को साफ करना आवश्यक समझती थी फिर भी काम करने वाले के वस्त्र काम न करने वाले के वस्त्रो के समान स्वच्छ केसे रह सकते हैं?

विचारमग्न वसुमति के सामने रथी जा खडा हुआ ओर हाथ जोडकर उससे कहने लगा–हे पुत्री हे भगवती, तू कोन है किसकी कन्या हे ओर अपने यहा किस प्रकार रहती थी इसे में अच्छी तरह जानता हू। मुझे मालूम है कि तेरे को किस स्थितिवश मेरे यहा आना पडा हे। तेरे को मेरे यहा आने से पहले

कोई गृहकार्य न करना पडा होगा। तू सेकडो सहस्रो दासियो से सेवित थी। इसलिए तेरे को कोई कार्य करने की आवश्यकता ही क्या हो सकती थी। मेरे यहा आकर तू गृह–सबधी जो कार्य करती हे उसके कारण मेरे पर बोझ चढ रहा हे। मेरे पर वेसे ही तेरा असीम उपकार हे। मेरे घर के सब काम करके तू मेरे पर अधिक भार चढा रही हे। तेरे को मेरे घर के काम के आगे न तो अपने खाने–पीने का ध्यान हे, न पहनने–ओढने का ही। इस प्रकार तू मेरे यहा कष्ट उठाकर मुझ पर ओर भार लाद रही हे। मेरे से न तो तेरा यह कष्ट ही देखा जाता हे, न तेरे द्वारा किये गये उपकारो से में उऋण ही हो सकता हू। इसलिए मेरी यह प्रार्थना हे, तू गृहकार्य मे इतना परिश्रम मत किया कर। गृहकार्य करने को दासिया हैं ही, ओर यदि अधिक दासियो की आवश्यकता हो तो में और दासिया रख दू। यदि तेरी इच्छा हो तो दासियो पर तू चाहे नियन्त्रण रखाकर, ओर उन्हे व्यवस्था चाहे दिया कर परन्तु स्वय श्रम मत किया कर, तू तो श्रम करना छोड कर अच्छे–2 वस्त्र पहना कर आभूषण धारण किया कर, और समय पर अच्छा भोजन करके शरीर को सुख मे रखाकर। इस पर भी यदि काम करने की इच्छा हो तो धर्म–कार्य किया कर ओर माला लेकर परमात्मा का स्मरण किया कर।

रथी की स्त्री अपने पति द्वारा वसुमति से कही गई बाते सुन रही थी। यद्यपि रथी की बातो मे ऐसी एक भी बात नही थी, जिसम दुर्भावना की गन्ध भी हो, बल्कि रथी की बातो से रथी की भावना जानकर तथा वसुमति की पूर्व स्थिति का यत्किचित परिचय पाकर रथी की स्त्री का भ्रम दूर हो जाना चाहिए था, लेकिन जो आदमी अपनी आखा पर किसी रग–विशेष का चश्मा चढा लेता हे, उसको प्रत्येक चीज उसी रग की दिखने लगती हे। इसके सिवा दुर्जन मनुष्य अच्छाई नही देखते, वे तो अच्छाई मे भी बुराई ही ढूढते हैं। कहावत हे, कि–

अति रमणीये वपुषि व्रणमेव हि माक्षिकानिकर ।

अर्थात्–उत्तम ओर सुन्दर शरीर म भी, मक्खिया फाडा या घाव ढूढा करती हैं।

इसीके अनुसार रथी की पवित्र हृदय स कही गई बातो म भी उसकी स्त्री को बुराई जान पडन लगी। रथी की बात सुनकर वह सोचती थी कि पति इस लडकी को क्या लाय हे? इसका सच्चा रहस्य [illegible] हे। ये तो इसे भगवती मानत ह। इसका का[illegible] स मुक्त करके [illegible] कराना चाहते हैं आर अच्छ–2 वस्त्राभूषण पहनाना चाहत हैं। [illegible]

जेसे सम्मान पूर्ण शब्द कहते हें, वेसे शब्द इन्हाने मुझसे तो कभी भी नही कहे न कभी यही कहा कि मैं ओर दासिया रख दूगा तुम काम मत किया करो किन्तु अच्छे–2 वस्त्राभूषण पहनकर सुख से रहो, बल्कि में स्वय जब भी इनसे ओर दासी रखने, या कोई अच्छा वस्त्र अथवा बढिया आभूषण लाने के लिए कहती हू, तभी ये उत्तर दिया करते हें कि बहुत दासिया तो हे कुछ काम स्वय भी किया करो। इस वस्त्राभूषण के लिए भी, कोई न कोई बहाना बना लिया करते हें लेकिन इसके लिए तो स्वय ही कहते हें। इसके प्रति पति की कैसी भावना हे, यह तो मालूम हो ही गया लेकिन अब देखती हू कि यह क्या कहती हे। मेरा यह अनुमान सही ही निकला कि यह लडकी मेरा सुख–सुहाग छीनने के लिए आई है।

आज की अधिकाश स्त्रिया जिन विचारो की हे, वेसे ही विचार यदि वसुमति के भी होते, तब तो वह रथी का कथन सुनकर प्रसन्न होती। सोचती कि अच्छा हे, जो मुझे काम से फुरसत मिल रही हे। में इतना काम भी करती हू, कष्ट भी उठाती हू, ओर ऊपर से इनकी स्त्री द्वारा कही गई बात भी सुननी होती हे। इनकी बात मान लेने पर, इन कष्टो से भी मुक्त हो जाऊगी नित्य के होने वाले आरम्भ–समारम्भ के पाप से भी बच जाऊगी, सुख से खा–पहन–भी सकूगी ओर धर्मध्यान द्वारा परलोक के लिए भी कुछ करती रहूगी।

यदि वसुमति आज की स्त्रियो के विचारो की तरह विचार रखती होती तब तो वह इस प्रकार सोचकर रथी का कथन स्वीकार कर लेती, परन्तु उसके विचार ऐसे विचारो से भिन्न थे। इसलिए रथी की बातो के उत्तर मे वह कहने लगी–पिताजी, आज आपकी बाते सुनकर मुझे बहुत ही आश्चर्य हो रहा है। आप धर्म को समझ चुके हें, फिर भी इस तरह की बात कहेगे, यह मेने कभी कल्पना भी न की थी। पिताजी, सबसे पहली बात तो यह हे कि मे आपको 'पिता' ओर आप मुझे 'पुत्री' क्या झूठ ही कहते हैं? क्या मे आपकी पुत्री ओर आप मेरे पिता नही हे? क्या धर्म जानने पर भी अपने मे मिथ्याचार शेष हे जो ऊपर से तो कुछ कहे ओर हृदय मे कुछ रखे। मुझे अपने लिए तो वह विश्वास हे कि में जेसा कहती हू, वेसा ही व्यवहार मे भी लाती हू, लेकिन आपकी बातो से जान पडता हे कि अभी आप मे भेदभाव भरा हुआ हे। अन्यथा आप यह न कहते कि मेरे घर का काम करके मुझ पर बोझ चढाती है। यह घर आपका हे तो क्या मेरा नही हे? जब में आपकी पुत्री हू, तो यह घर मेरा क्यो नही हे? आप अपने मे से इस तरह का भेदभाव दूर कर दीजिये। आपमे, इस तरह का भेद रहना अनुचित हे। रही, आप पर बोझ चढने की बात, लेकिन

आप पर बोझ तो तभी चढ सकता है, जब में इस घर को अपना न मानकर काम करती होऊ। में अपने घर का काम करू उसका बोझ आप पर क्यो चढेगा? इसी प्रकार अपने घर का काम करने मे दु ख भी क्यो हो? दु ख तो तब हो जब में इन कामो को दूसरे के मानू, मेरे ही घर के काम करने मे मुझे दु ख नही होता, किन्तु उसी प्रकार प्रसन्नता होती हे जिस प्रकार सबको अपने घर के काम करने मे प्रसन्नता होती हे।

आप कहते हैं कि 'घर के काम करना छोड दो ओर अच्छे गहने–कपडे पहनकर, परमात्मा का भजन करो, घर का काम दासिया करेगी। लेकिन पिताजी, ऐसा कहना, धर्म का अपमान करना हे। घर मे तो रहना घर के कामो का लाभ तो लेना, ओर काम न करना किन्तु काम करने के लिए दासियो को समझना, धर्म का मर्म न जानने का ही कारण हे। जो लोग ऐसा करते हैं, वे धर्म के मर्म को नहीं जानते, अच्छा खाना–पहनना ओर आराम करना छूटता नही, और केवल काम करना छोड बैठना, क्या उचित हे? यदि कोई व्यक्ति ससार–व्यवहार से अपना सबघ ही तोड दे सब ममत्व त्याग कर साधु हो ही जावे, ओर उस दशा मे गृहकार्य न करे तो यह ठीक भी हे लेकिन इस कारण के बिना गृहकार्य न करना ओर निरुद्योगी बन बेठना कदापि उचित नही हो सकता। धर्म का मर्म यही हे कि सदा उद्योग मे रत रहे। जब तक ससार–व्यवहार मे हें, तब तक तो ससार–व्यवहार मे सावधानीपूर्वक उद्योग करे, ओर जब ससार–व्यवहार त्याग कर सयम स्वीकार कर ले तब परलोक के लिए उद्योग करे, लेकिन निरुद्योगी बन बेठना धार्मिकता नही हे। ससार–व्यवहार मे रहने वाला, ससार–व्यवहार के उद्योग से अवकाश मिलने पर, अथवा अवकाश लेकर भी परलोक के लिए तो उद्योग कर सकता हे परन्तु जिसने ससार–व्यवहार से सबध त्याग दिया हे वह ससार–व्यवहार के कार्यों मे उद्योग नही कर सकता। लेकिन ससार–व्यवहार तो त्यागा नहीं है, 'यह मेरा घर हे' ये मेरे बालक हें ये मेरे नोकर हे यह मेरे लिए भोजन बना हे', आदि व्यवहार तो छूटा नहीं हे फिर भी गृहकार्य नोकरो के लिए समझकर स्वय को पाप से बचा हुआ मान लेना यह धर्म से अनभिज्ञ होने का ही कारण हे।

पिताजी, जब यह घर मेरा हे तब इसके कार्य भी मुझे करने ही चाहिए। यह बात दूसरी हे कि सब कार्य स्वय न कर सकने पर दूसरों की भी सहायता ले ली जावे लेकिन यह कार्य मेरे करने योग्य नहीं हे यह तो दासी के करने योग्य हे में घर की मालकिन हू, इसलिए मुझे काम न करना चाहिए

जो दासी होगी वह करेगी आदि विचार से कार्य त्याग बेठना काम मे भेद समझना, काम न करने मे ही स्वामित्व मानना इसीसे ससार डूब रहा हे। इसी भावना से पाप आता हे। इस तरह की भावना से ही अभिमान होता हे ओर स्वय को बडा, तथा दूसरे को छोटा समझने लगता हे। इसके सिवा अपने घर का काम जब मैं स्वय करती हू तब तो पाप कम होता हे लेकिन जब दूसर से ही कराने लगूगी, स्वय न करूगी तब ज्यादा पाप होगा। क्योकि म धर्म का विचार रखकर विवेकपूर्वक काम करती हू। दासी–दास मेरी तरह विवेक नही रख सकते, इसलिये जो काम में अल्प पाप मे ही कर लेती हू, वे ही काम महापाप से होगे। एक बात ओर हे। दासी–दास भी पूरी तरह ओर अच्छा काम करेगे, जब स्वामी या स्वामिनी स्वय भी काम करती हो। केवल उन्हीं के सहारे काम छोड देने पर ओर स्वय काम न करने पर परतन्त्र भी होना पडेगा। दासी–दास भी स्वामी को अपने सहारे जानकर लापरवाही करग ओर काम न करने के कारण अकर्मण्य रहने से अपने शरीर मे रोग भी होगे। स्वय काम करने पर केवल दूसरो पर आज्ञा चलाते रहने पर मनस्ताप भी रहेगा ओर काम भी अच्छा न होगा। फिर या तो वे लोग जेसा काम करे उनसे सन्तुष्ट रहना होगा या उनसे कलह करना होगा। मेरी समझ से नित्य का कलह भयकर पाप हे।

पिताजी, में घर के किसी भी काम के विषय मे यह भेद नही समझती कि काम मेरा नही है दासी का हे। में सभी काम करती हू, मुझे अपने हाथ से काम करती देखकर दास–दासी इस बात को जानती हैं कि यह हमारे ही भरोसे नही हे किन्तु स्वय हाथ से भी काम कर सकती है। इस कारण वे स्वय भी बिना कहे ही कर डालते हैं। उनको इस बात का ध्यान रहता हे कि यदि हम लोग काम न करेगे तो यह स्वय ही हाथ से काम कर लेगी। इस तरह काम भी बिना कहे ही हो जाता हे ओर उसी तरह का अच्छा तथा विवेक से होता हे जेसा में स्वय करती हू। में अपने हाथ से काम करके उनके सामने आदर्श रख देती हू। आदर्श रखकर मे अकर्मण्य होकर बेठ जाऊ तब तो दास–दासी भी उस आदर्श के अनुसार काम न करेगे लेकिन मैं स्वय भी काम करती रहती हू, इससे आदर्श के अनुसार काम भी होता हे काम मे भेदभाव भी नही होता तथा दास–दासी के मन मे भी किसी काम को हल्का, या नीच समझकर उसे करने की ओर से अरुचि नही होती। इस तरह मुझे अपने घर का काम करने मे आनन्द होता हे। में यदि स्वय काम न करके दूसरो पर आज्ञा ही चलाया करती तो सब लोगो की दृष्टि मे भी गिर जाती तथा मिथ्याचारिणी

भी होती। में सबसे कहू तो यह कि मेरा ओर तुम्हारा आत्मा समान हे लेकिन व्यवहार करके विपरीत रखू, दास–दासी के आत्मा को हल्का या नीच समझू ओर स्वय के आत्मा को बडा मानू, तो यह मिथ्याचार होगा। में इस तरह का पाप करना ठीक नही समझती।

पिताजी, आपने कहा है, कि माला लेकर परमात्मा का भजन किया करो। में परमात्मा का भजन करना बुरा नहीं मानती, यह तो अच्छा ही हे लेकिन तब, जब कर्त्तव्य–पालन के साथ हो। अपने पर जिस कार्य का भार है, उस कार्य को पूरा करके, परमात्मा का भजन करना अच्छा हे परन्तु परमात्मा का भजन करने के नाम पर, अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा करना अपने पर जो भार हे, उसे न उठाना तथा ऊपर से परमात्मा का नाम लेकर हृदय मे दूसरे ही विचार चलने देना, यह ईश्वर–भजन के नाम पर ढाग हे। में, अपना काम करती हुई, परमात्मा को याद रखती हू, ओर परमात्मा को याद रखती हुई ही सब काम करती हू। परमात्मा का भजन करने का उद्देश्य व्यवहार म उसको याद रखना हे। कुछ समय बेठकर परमात्मा का स्मरण कर लेना परन्तु व्यवहार मे परमात्मा को भूल जाना यह सच्चा स्मरण नही हे। व्यवहार क समय परमात्मा को याद रखने से, उसे विस्मृत न होने स, झूठ–कपट आदि पाप भी नहीं होते, कार्य मे विवेक रहता हे ओर इस कारण किसी अल्पारम्भ से हो सकने वाले कार्य मे महारम्भ नही होता। इस तरह में कार्य करती हुई ही परमात्मा का भजन कर लेती हू। आप कार्य छोडकर परमात्मा का स्मरण करने के लिए मुझसे मत कहिए। मेरी माता ने मुझे कर्मवाद की जो शिक्षा दी थी, में उसका पालन कर रही हू। जो लोग वेसे तो परमात्मा का स्मरण करते हे, लेकिन कार्य–व्यवहार मे परमात्मा को भूलकर एसा व्यवहार करते हैं कि जैसे परमात्मा हे ही नही, वे लोग धर्म का अपमान कराते हैं। मे धर्म का अपमान नही कराना चाहती। आप मुझे काम करती दखकर समझते होंगे कि यह दु ख उठा रही हे ओर शायद यह समझ कर करुणा भाव स प्रेरित हो आपने मुझ से काम त्यागने का कहा हे परन्तु मे दु ख नहीं उठा रही हूं किन्तु आनन्द मे हू। आप मेरे विषय मे किसी प्रकार की चिन्ता मत करिए।

वसुमति का कथन सुनकर रथी का खेद भी हो रहा था और प्रसन्नता भी। उसको यह विचार कर तो खद हुआ कि मैंने इसके अपने [illegible] के भेद की बात क्या कही? ओर वसुमति स जो उपदेश सुनने को मिला था उसके कारण रथी का प्रसन्नता थी। वह हाथ जोड़कर वसुमति से [illegible] लगा– हे भगवती! ह आराध्या! मुझे क्षमा कर! मेरे [illegible]

भेदभाव नही है। मैंने तो साधारणतया ही यह कहा था कि मेरे पर तेरे द्वारा किये गये उपकारो का बोझ चढता है। मै समझता हू कि मेरा यह कहना भी अच्छा रहा। यदि मैंने इस तरह न कहा होता, तो तेरा जो उपदेश सुनने का मिला है, वह कैसे मिलता? धर्म का मर्म तो आज तेरे से ही सुनने को मिला है। अब तक मैं आलस्य मे ही धर्म मानता था लेकिन आज तूने मुझे बुद्धि दी ओर बता दिया कि धर्म–आलस्य मे नही है किन्तु उद्योग मे है। आज तेरे उपदेश के कारण मेरा जीवन बदल गया। आज से मैं अपना जीवन आलस्य मे न खोऊगा, दूसरो पर ही आज्ञा न चलाऊगा नोकरो सेवको को हल्का ओर स्वय को बडा न मानूगा, किन्तु उद्योगरत रहा करूगा तथा किसी भी कार्य के विषय मे यह न समझा करूगा कि यह काम, मेरे करने योग्य नही है, नौकरो के करने योग्य है।

इस प्रकार वसुमति का उपकार मानकर ओर उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हुआ, रथी वहा से चला गया। वसुमति भी उठकर काम मे लग गई लेकिन रथी की स्त्री के हृदय मे एक प्रकार की खलबली मची हुई थी। कहावत है कि–

अवगुण को उमगी गहत, गुण न गहत खल लोग।
रक्त पियत पय ना पियत, लगी पयोधर जोक।।

इसके अनुसार रथी ओर वसुमति की बातचीत जीवन को दूसरे ही सॉचे मे ढाल देने वाली थी परन्तु रथी की स्त्री ने उनकी बातो मे से कुछ ही बाते ली ओर उनका अर्थ भी अपनी रुचि के अनुसार ही लगाया। वह सोचती थी कि बस अब तो सब बात स्पष्ट ही हो गई। यह, पति की देवी, भगवती–आराध्या है ओर इस घर की मालकिन है। पति से कहती है कि यह घर मेरा ही है। आपके मन मे भेद क्यो है? पति ने भी इसके सब कथन को स्वीकार किया है। अब बाकी ही क्या रहा? अभी इनका व्यवहार प्रकट मे नही आया है लेकिन यदि यह इस घर मे कुछ दिन ओर रही, तब तो फिर प्रत्यक्ष ही मालकिन बन बेठेगी। पति ओर नोकर–चाकर आदि सब लोग इसके अधीन ही है। घर का सब काम–काज भी इसी के हाथ मे है, मेरे हाथ मे तो कुछ भी नही है। इसलिए कुछ समय पश्चात् या तो इस घर से मुझे निकल जाना होगा या इसकी दासी बनकर जीवन बिताना होगा। इस अवस्था वाली इस रूप–योवन वाली ओर ऐसी सुकुमारी कोई दूसरी स्त्री कदापि इतना काम नही कर सकती लेकिन यह तो स्वय को इस घर की मालकिन समझती है इसीसे इतना काम करती है। अपने शरीर आदि की चिन्ता नही रखती। मेरे

लिए यह बगल की नागिन–सी हे। यदि मुझे स्वय को सकट से बचाना हे भविष्य अच्छा रखना हे, तथा जीवन दु खी नहीं बनने देना हे, तो इसे इस घर से शीघ्र ही निकाल देना चाहिए, ओर ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे फिर इसकी ओर पति की मुलाकात भी न हो सके।

इस प्रकार अनेक सकल्प–विकल्प के पश्चात् रथी की स्त्री ने यह निश्चय किया कि सबसे पहले तो यह जानना चाहिए कि यह हे कोन? किसकी लडकी है, इसका नाम क्या हे, तथा मेरे घर मे क्यो रहती हे? आजतक पति इसे पुत्री ही पुत्री कहते हें न तो कभी उन्हाने इसका नाम–पता बताया, न इसने ही स्वय का परिचय दिया। इसका नाम–पता न बताने मे भी अवश्य ही कोई रहस्य हे। इसलिए इससे इसका नाम–पता पूछना चाहिए।

रथी को एक नूतन उपदेश सुनाकर वसुमति नित्य की भाति एकाग्र मन से अपने काम मे लगी हुई थी। उसके हृदय मे किसी भी प्रकार का दूसरा विचार न था। वह काम कर रही थी, इतने ही मे उसके सामने सहसा रथी की स्त्री आ खडी हुई। उस समय रथी की स्त्री क्रोध के कारण राक्षसी के समान भयकर हो रही थी। ओर उसकी आखे लाल थी आकृति बिगड रही थी, ओर वस्त्र भी अस्त–व्यस्त हो रहे थे। उसने आते ही वसुमति का हाथ पकडकर उससे कहा लडकी, तेरा नाम बता ओर यह भी बता कि तू किस जाति–कुल की है, कहा जन्मी हे, तेरे माता–पिता का नाम क्या हे तथा वे कहा रहते हें? रथी की स्त्री का अनायास यह व्यवहार देखकर, ओर उसके प्रश्न सुनकर वसुमति कारण के विषय मे कुछ निश्चय न कर सकी। वह तो स्वय जेसी सरल थी वेसी ही सरल रथी की स्त्री को भी समझती थी। इसलिए रथी की स्त्री के व्यवहार, ओर उसके प्रश्न सुनकर वसुमति को आश्चर्य तो हुआ, फिर भी वह घबराई नही किन्तु उसने स्वाभाविक सरलता ओर नम्रता से कहा माता, आप अपनी पुत्री स ये केस प्रश्न कर रही हे? मेरी माता आप ही तो हें। जो पालन करे वे ही माता–पिता हें ओर मेरा पालन आप, तथा पिता कर रहे हे, इसलिए आप मेरी माता हें आर पिताजी मेरे पिता हें। मेरा घर भी, यही हे। इसी प्रकार मेरी जाति भी वही हे जो आपकी जाति हे, तथा जिस नाम से आप मुझ सम्बोधन कर वही मेरा नाम हे। आपने तथा पिता ने मेरा नाम 'पुत्री रखा हे। इसी नाम स आप मुझ सम्बोधन करती हें ओर में बोलती हू इसलिए मेरा नाम पुत्री हे। ये सब बात तो आप [illegible] हे, तथा पहिले भी मुझसे पूछ चुकी हें फिर आज आपको ये प्रश्न करने का कष्ट पुन क्या उठाना पडा?

वसुमति ने जो उत्तर दिया, वह हृदय को द्रवित कर देने वाला था लेकिन क्रोध से भरी हुई रथी की स्त्री पर उस उत्तर का कोई प्रभाव नही हुआ। वसुमति का उत्तर सुनकर वह एकदम से भडक उठी ओर वसुमति का हाथ छोडकर जोर–जोर से कहने लगी कि वडी मेरी पुत्री बनने चली हे? न मालूम किस जाति की हे, किसकी पेदा की हुई हे कुल का कुछ पता नही बताती ओर कहती है कि मे तो आपकी पुत्री हू, तथा यह घर मेरा ही हे। ऊपर से तो मेरी पुत्री बनी है ओर हृदय मे मेरी सोत बनने की भावना हे। मेने आज सब बाते सुनकर सारा भेद मालूम कर लिया हे। अब मे तुझ कुलटा के भुलावे मे नही आ सकती। मे जान चुकी हू कि तू मेरा सुख–सुहाग छीनने के लिये ही आई हे।

रथी की स्त्री इसी तरह की बाते बकने लगी ओर कहने लगी कि अब मैं तभी अन्न–जल लूगी, जब तू मेरे घर से निकल जायेगी। चम्पा पर चढाई करके जाने वाले सभी लोगो के यहा कुछ न कुछ माल आया ही हे लेकिन मेरे यहा यह मरी सोत आई हे। कहती हे कि यह तो मेरा ही घर हे। इस तरह यह इस घर की मालकिन बनने के लिए आई हे। यदि इसकी ओर से मैं सावधान न होती तब तो कुछ ही दिनो मे यह घर से बाहर निकाल देती या मुझे अपनी दासी बनाकर रखती। अच्छा हुआ जो मे समय पर चेत गई। अब इसको बाजार मे बिकवा कर ही, मैं अन्न–जल लूगी। उस समय तक न तो अन्न ग्रहण करूगी, न जल ही लूगी।

रथी की स्त्री ने इस तरह की बातो से सारा घर गुञ्जा दिया। घर के सब लोग उसका विकराल रूप देखकर दग रह गये ओर वसुमति पर कलक लगाने के कारण उसको धिक्कारने लगे। रथी की स्त्री त्रियाचरित्र फेलाकर बैठ गई। उसके कुपित होने का समाचार रथी के पास आया। रथी दौडा हुआ अपनी पत्नी के पास आया। अपनी स्त्री का डरावना रूप देखकर उसे बहुत आश्चर्य हुआ। उसने अपनी स्त्री से पूछा कि आज ऐसी कौनसी बात है जिसके कारण तुमने ऐसा विकराल रूप बनाया है। पति का यह प्रश्न सुनकर तो रथी की स्त्री का पारा ओर चढ गया। वह कहने लगी, कि मेरा रूप तो विकराल है ओर इस कुलटा का रूप अच्छा हे, जिसको लाकर घर मे रखा हे। यह अच्छी हे ओर मैं बुरी हू। वास्तव में यदि मेरे को बुरी न समझा होता तो इसको लाते ही क्यो ओर घर की मालकिन ही क्यो बनाते? इसको, मेरी सौत बनाने के लिए ही तो लाये हो? इसने आकर मेरे सुख–सुहाग को सकट मे डाल दिया है इसलिए मेंने निश्चय किया हे कि इस घर मे या तो

यही रहेगी, या मैं ही रहूगी। मैं अन्न–जल भी तभी ग्रहण करूगी, जब मेरे इस घर से यह निकल जावेगी। बल्कि, इसको घर से निकालने मात्र से मुझे सन्तोष न होगा। इस घर से निकालकर यदि आपने इसे दूसरे घर मे रख दिया तो आपका ओर इसका सबध बना ही रहेगा तथा मेरे लिए जो सकट है, वह दूर न होगा। इसके सिवाय यदि आप चम्पा की लडाई के पश्चात् इसको न लाते तो जेसे ओर सब लोग वहा से द्रव्य लाये उसी तरह आप भी द्रव्य लाते। इस दुष्टा के कारण ही मेरे घर मे चम्पा की लूट का माल नही आया हे। इसलिए जब इसको बाजार मे बेचकर मुझे 20 लाख सोनेया ला दोगे, तभी मैं अन्न–जल लूगी, नही तो अन्न–जल भी न लूगी, ओर सब जगह यह पुकार करूगी कि मेरे पति, न मालूम किसकी लडकी पकड लाये हैं तथा घर मे रखे हुए हैं। अब तक मैं भोलेपन मे थी। इसके ओर आपके कपट को नही समझी थी, लेकिन अब मैं सब बाते जान गई हू। आप तो सदा के कपटी हैं ही, यह कुलटा भी ऐसी कपटिन हे कि कुछ कहा नही जा सकता। यह ऐसी मीठी बोलती हे, इस तरह की सहनशील हे, कि मे इसके काम मे अनेक दोष बताती हू, इसको अनेक बाते कहती हू फिर भी हसती ही रहती है क्रोध तो करती ही नहीं है। क्रोध करे भी केसे? इसको तो इस घर की मालकिन बनना था। यदि क्रोध करके झगडा करने लगती तो घर की मालकिन केसे बन सकती? इसका ओर आपका कपट मुझको मालूम हो गया हे। इसलिए अब मुझे तभी सन्तोष होगा, ओर मैं तभी अन्न–जल लूगी, जब इसको बेचकर मुझे बीस लाख सोनैया ला दोगे।

बाजार मे

न वेत्ति यो यस्य गुण प्रकर्षम् स त सदा निन्दति नाऽत्र चित्रम्।
यथा किराती करिकुम्भ लब्धाम् मुक्ता परित्यज्य विभर्ति गुजाम्।।

संसार मे यह देखा जाता हे कि जो व्यक्ति जिस वस्तु का महत्व उसकी विशेषता और उसके गुण नही जानता, वह उस वस्तु का आदर नही करता अपितु अनादर करता है। आदर तो वही करता हे जो उस वस्तु के गुणो को जानता एव समझता हे। इसके लिए यह कहावत प्रसिद्ध हे कि भीलनी जगल मे गजमुक्ता को देखकर उसे किसी पक्षी का अण्डा समझ फोडने को उस पर चरण–प्रहार करती हे और जब वह नही फूटता हे तब उसको उठाकर देखकर तथा निकम्मा समझकर फेक देती हे। लेकिन घुगचियो को बडे चाव से बीन कर उनकी माला बना शोक से पहनती हे। ससार मे मोती कीमती माना जाता है और घुघची की कोई कीमत नही मानी जाती। परन्तु भीलनी मोती की विशेषता उसके गुण तथा महत्व को नहीं जानती इसलिए उसको तो फेक देती हे और घूघची बीनती फिरती हे।

ठीक यही बात रथी की स्त्री के विषय मे भी थी। वह भी नही जानती थी कि वसुमति कोन हे इसमे क्या विशेषता है, इसके कारण मेरे पति का केसा सुधार हुआ है, तथा इसने घर को भी केसा बना दिया है। यद्यपि वसुमति ने जो सुधार कर दिया था वह प्रत्यक्ष दिखता था लेकिन रथी की स्त्री उस सुधार को देखती हुई भी न देखती हुई सी थी। उसमे वसुमति के प्रति सन्देह ओर ईर्ष्या का आधिक्य था, इस कारण उसकी दृष्टि वसुमति की किसी भी विशेषता पर गई ही नहीं। वह तो उसमे दोष ही ढूढती रही।

रथी की स्त्री वसुमति के साथ जो व्यवहार कर रही थी, वह तो अज्ञानवश वास्तविकता से अपरिचित होने के कारण कर रही थी लेकिन वसुमति तो सब बातो को जानती थी। मे कौन हू, यहा कैसे आई हू, ओर यहा

की रानी मेरी कौन है, आदि बाते उसे मालूम थी, फिर भी वह रथी की स्त्री द्वारा स्वय के साथ किया जाने वाला दुर्व्यवहार क्यो सहती थी? इसी कारण सह रही थी कि वास्तविकता प्रकट हो जाने पर रथी को–जिसे मैंने अपना पिता माना है–आपत्ति मे पडना पडेगा। वसुमति किसी नीच जाति–कुल की न थी, जो उसे रथी की स्त्री के पूछने पर अपना नाम–पता बताने मे सकोच हो, और इस कारण उसने नाम–पता न बताया हो। उसने अपना नाम–पता इसलिए नही बताया, कि यह रथी की स्त्री मेरा नाम पता जानकर सब से प्रकट कर देगी, जिससे मेरे रथी पिता के प्राण सकट मे पड जावेगे। क्योकि यहा कि रानी मृगावती मेरी मोसी हे। मेरा नाम सुनकर वे मुझे अवश्य बुलावेगी, और फिर लाख शत्रु होने पर भी मेरे मोसा सतानिक, इन रथी पिता को मेरा तथा माता का अपहरण करने, ओर माता के प्राणनाश का कारण होने से अवश्य ही दण्ड देगे। इसी विचार से उसने, रथी की स्त्री की सब बाते सुनी, सही, फिर भी अपना नाम–पता नही बताया। रथी की स्त्री के दुर्व्यवहार से वह घबराई भी नही। वह तो सोचती थी कि माता ने मुझे जिन–जिन परिस्थिति का सामना करने का उपदेश दिया है उनमे से यह तो एक बहुत नगण्य बात है। इसके सिवा हो सकता हे कि जिस तरह राम को कार्यक्षेत्र मे ले जाने के लिए कैकेयी मे उन्हे वन भेजने की बुद्धि उत्पन्न हुई थी उसी तरह यह स्थिति भी मुझे अनुकूल कार्य–क्षेत्र मे ले जाने के लिए ही उत्पन्न हुई हो। नही तो, माता को मुझे घर से निकलवाने बाजार मे बिकवाने ओर बदले मे 20 लाख सोनैया मगवाने की बात न सूझती। मेरे लिए प्रसन्नता की सबसे पहली बात तो यह है कि माता ने मेरी कीमत 20 लाख सोनेया समझी। मुझे थोडी कीमत की तो नही मानी। छोटे मुह से बडी बात निकलना कठिन है। माता के मुह से 20 लाख सोनेया की जो बात निकली हे वह मेरे अच्छे भविष्य की सूचना देती हे। इसलिए मुझे माता की बातो से प्रसन्न होना चाहिए, और माता का उपकार मानना चाहिए। इस तरह विचार कर वसुमति उस समय भी प्रसन्न थी।

रथी से उसकी स्त्री ने कहा कि मैं प्रण कर चुकी हू कि जब आप इस लडकी को बेचकर मुझे 20 लाख सानेया ला देगे तभी मैं अन्न–जल लूगी, अन्यथा अन्न–जल न लूगी ओर जाकर चोराहे पर पुकार करूगी कि मेरा पति दुराचारी हे वह न मालूम किसकी लडकी उडा लाया है। इस लडकी का रूपरग बताता हे कि यह किसी बडे घर की ही लडकी है। मेरी पुकार

राजा आदि सुनेगे तब इस लडकी के अपहरण करने के अपराध मे आपको दण्ड भी देगे और आपकी सारी पतिष्ठा भी मिट्टी मे मिल जावेगी।

अपनी स्त्री की बाते सुनकर रथी को क्रोध होना स्वाभाविक था लेकिन धारिणी और वसुमति के उपदेश से उसका जीवन दूसरे ही साचे मे ढल गया था। इस कारण उसने अपनी स्त्री से कहा—हे सुभगे! सुनयने! आज तेरे को क्या हो गया है जो तू इस तरह की बात कर रही है और ऐसी लक्ष्मी रूप कन्या को घर से निकालने को कह रही है? इसके साथ इतने दिन रह कर भी तू इसका महत्व नही समझ पाई? मेरे स्वभाव मे जो परिवर्तन हुआ है क्या तू उसे नही जान पाई? तू तो जानती ही है कि मैं पहले कैसे स्वभाव का था? मुझ मे कैसी-कैसी बुराइया थी और मैं कैसा अभिमानी तथा दुराचारी था? लेकिन इस सती के प्रताप से मेरा स्वभाव बिल्कुल ही बदल गया है। यह घर भी पहले कैसा था और इसके आने के बाद कैसा हो गया? यह मगलमयी जब से आई है तब से अपने यहा सब तरह से आनन्द रहता है। फिर आज तुझे यह कैसी कुबुद्धि आई जो तू इसको निकालने को कह रही है। तू इसके बदले 20 लाख सोनेया चाहती है। इससे यह तो स्पष्ट है कि तूने इसे 20 लाख सोनेया कीमत की तो मानी है परन्तु वास्तव मे 20 लाख सोनेया लेकर इसको बेचने का विचार वैसा ही मूर्खतापूर्ण है जैसा मूर्खतापूर्ण विचार कोडियो के बदले चिन्तामणि देने का होता है। तू बुद्धिमती है सब बातो को जानती समझती है फिर भी आज यह क्या करने पर उतारू हुई है इसको सोच और अपने निश्चय के विषय मे, एक बार पुन शाति से विचार कर। मैं जो कुछ कह रहा हू वह तेरी दी हुई धमकी से भय खाकर नही कह रहा हू, किन्तु इसलिए कह रहा हू कि ऐसी सती अपने यहा से न जावे, तथा तेरे द्वारा इसको निकालने का पाप न हो।

रथी की सरलता और नम्रतापूर्ण बातो से रथी की स्त्री का साहस और बढ गया। वह सोचने लगी कि अब ये मेरे सामने नम्र हुए है, और मेरे को सुभगे सुनयने आदि कह रहे है। इन्होने मेरे लिए ऐसे अलकारपूर्ण शब्द आज तक कभी भी नहीं कहे। केवल आज ही इस दुष्टा को घर मे रहने देने के लिए, मेरे वास्ते इस तरह के सम्मानपूर्ण शब्द कह रहे हैं। परन्तु मैं इस तरह की बातो के भुलावे मे आने वाली नहीं हू।

रथी की बातो के उत्तर मे रथी की स्त्री कडक कर कहने लगी कि बस आपकी ये सब बाते रहने दो आपके लिए सुभगे और सुनयना जो होगी सो होगी। आपकी दृष्टि मे यदि मैं सुभगे और सुनयना होती, तो मेरे को

सुख-सुहाग से वचित रखने के लिये इस दुष्टा को क्यो लाते? आपके लिए तो यह कुलटा ही सुभगा सुनयना हे। इसी से तो इसकी इतनी प्रशसा कर रहे हैं, कि ससार मे जेसे एक यही सर्वोत्कृष्ट हे। दूसरी सब स्त्रिया तो निकृष्ट ही हैं, जो व्यक्ति प्रिय होता हे, उसका प्रत्येक काम अच्छा लगता हे उसम बुराई तो दीख ही नही पडती, फिर चाहे वह केसा ही बुरा क्यो न हो। इसी के अनुसार आपको यह प्रिय हे, इसीसे आप इसकी इतनी प्रशसा करते हैं लेकिन मेरी दृष्टि मे तो यह पतित, कुलटा ओर कुलक्षणा हे। इसने मेरे घर मे आते ही मेरे लिए तो नरक का सा दु ख उत्पन्न कर दिया। इसके आते ही मेरी तो पूछ ही नही रही। जेसे घर की मालकिन यही हे। यदि मे समय पर सावधान न हो जाती, तो इसने ओर आपने मेरे को सुख-सुहाग से वचित करके, इस घर से निकालने का ही प्रपच रचा था। अब में यही कहती हू कि मेरे से ओर कुछ मत कहलाओ किन्तु भलाई इसी मे हे कि इसको बाजार मे बेचकर, मुझे 20 लाख सोनेया ला दो। नहीं तो मे अभी जाकर सब जगह पुकार करूगी, जिससे आपको न मालूम केसी विपत्ति मे पडना पडेगा।

यद्यपि धारिणी ओर वसुमति की कृपा से रथी क स्वभाव मे बहुत कुछ नम्रता आ गई थी, परन्तु कहावत हे कि-

अतिशय रगर करे जो कोई। अनल प्रकट चन्दन ते होई।।

इसके अनुसार अपनी पत्नी द्वारा दी गई धमकी ओर वसुमति पर किये गये आपेक्षो को सुनकर रथी को भी क्रोध आ ही गया। उसन अपनी स्त्री से कहा, कि-में तो तेरे को नम्रता से समझाना चाहता था ओर मेरी इच्छा थी कि किसी तरह तू मान जावे, लेकिन तू तो मेरी नम्रता का दुरुपयाग कर रही है। इस सती पर भी कलक चढा रही हे ओर मुझे भी डर बता रही हे। में, तेरी इस तरह की बातो से भय खाने वाला नही हू। जा तर को जा कुछ करना हो, वह कर। राजा आदि से फरियाद करनी हो तो प्रसन्नता स कर। मुझे किसी तरह का भय नही हे, ओर तुझसी दुष्टा घर से निकल जाव यही अच्छा हे। किसी ने ठीक ही कहा हे कि

वर न दारा, न कुदार दारा

अर्थात्-स्त्री का न होना ता अच्छा हे लेकिन कर्कशा स्त्री का हो।। अच्छा नही हे।

इसके अनुसार तेरा न हाना ही अच्छा हे। मं ता तर का नम्रता स समझा रहा था परन्तु तू नीच स्वभाव की हे। इस कारण नम्रता त स [illegible] पर केसे मान सकती हे। वड अनुभव क पश्चात ही किसी ने कहा हे कि [illegible]

पर नव नीच। नीच लोग नम्रता से नही माना करते, वे तो डाटने पर ही झुकते हैं। इसलिए मै तेरे से स्पष्ट कहता हू, कि तू मेरे घर से अभी निकल जा, और तेरी इच्छा हो वहा जा, तेरा मन चाहे उससे पुकार कर तथा तेरे को अच्छा लगे वहा रह। तेरे कहने से मै अपनी पुत्री को पृथक् नही कर सकता।

रथी भी इस तरह क्रुद्ध हो उठा। पति–पत्नी मे वाकयुद्ध होने लगा। वसुमति दोनो की बातो को सुन ही रही थी। वसुमति के स्थान पर यदि कोई दूसरी होती, तो वह तो रथी की बाते सुनकर प्रसन्न हो जाती। सोचती कि यह स्त्री मुझसे अनावश्यक द्वेष रख कर कलह किया करती है, और मुझ पर मिथ्या कलक लगाती है इसलिए अच्छा है जो पिता इसको घर से निकालने का दण्ड दे रहे है। यह घर से निकल जावेगी तो मेरा रात–दिन का क्लेश भी मिट जावेगा और इसको अपने कृत्य का दण्ड भी मिल जावेगा। पिता की सेवा मे कर लूगी। साधारण स्त्री को इस तरह का विचार होना स्वाभाविक था लेकिन वसुमति को ऐसा विचार नही हुआ। यदि वसुमति को इस तरह का विचार हो आता तब तो वह रथी की स्त्री से जिस तरह भी चाहती बदला ले सकती थी। क्योकि रथी वसुमति को श्रद्धा तथा आदर की दृष्टि से देखता था। वसुमति पर पूर्ण विश्वास रखता था उसको आराध्य देवी मानता था, इसलिये वसुमति के कथन पर वह अपना सिर तक काट कर दे सकता था, अपनी स्त्री को निकालना, या उसे किसी प्रकार का दण्ड देना, यह तो बहुत सरल बात थी। लेकिन वसुमति के मन मे रथी की स्त्री के विरुद्ध कोई विचार नही हुआ। वह तो रथी की स्त्री की बाते सुनकर, यह विचारती थी कि माता जो कुछ कह रही है, वह ठीक ही है। इनके हृदय मे मेरे प्रति विश्वास नही रहा। ये समझती है कि यह मेरी सौत बनने, मेरे पति को मुझसे छीनने, और मुझे सुख–सुहाग से वचित करने के लिए आई है। इस सन्देह के कारण ही, माता मुझे घर से निकालना चाहती है। इनका कार्य वैसा ही है, जैसा अपनी सौत को हटाने, और उसके दु ख से स्वय को बचाने के लिये, स्त्रियो का कार्य हुआ करता है। पिताजी इन पर व्यर्थ ही रुष्ट होते हैं। मेरे कारण माता को किसी प्रकार का कष्ट हो यह मेरे लिए कलक की बात है। सन्तान का कर्त्तव्य है, कि वह माता–पिता को सन्तुष्ट रखे। मैं इनकी पुत्री हू, और यह मेरे माता–पिता है, इसलिए मेरा कर्त्तव्य भी यही है। मै तो समझती हू, कि माता, मेरे कल्याण के लिए, मुझे कार्य–क्षेत्र मे भेजने के लिए ही यह सब कुछ कर रही है, और मेरे किन्ही पूर्व सुकृत्यो की प्रेरणा से ही, माता मे ऐसी भावना उत्पन्न हुई है। इसलिए माता की इच्छानुसार मेरे लिए बिक जाना ही श्रेयस्कर है।

इस प्रकार विचार कर वसुमति रथी ओर उसकी स्त्री के बीच मे खडी हो गई। वह नम्रता पूर्वक रथी की स्त्री से कहने लगी माता! आप धेर्य रखिये, मैं अभी आपकी आज्ञा का पालन करूगी। आपके हृदय मे मेरे लिए जो यह सन्देह हुआ हे, कि यह मेरी सोत बनेगी ओर मुझे आपकी सोत बनना नहीं हे। ऐसी दशा मे आपकी आज्ञा का पालन करके बिक जाने ओर आपको भ्रम रहित तथा सन्तुष्ट करने मे मुझे क्या आपत्ति हो सकती हे? बल्कि, मैं आपकी पुत्री हू, इसलिए आपको सन्तुष्ट करना, मेरा साधारण कर्त्तव्य हे। फिर इस विशेष कारण के उपस्थित होने पर में आपकी आज्ञा का पालन न करू, आपको सन्तुष्ट न करू, यह केसे सम्भव हे? आप थोडी देर के लिए शान्त हो जाइये, मैं पिताजी को समझा लू।

रथी की स्त्री से यह कह कर, वसुमति रथी से कहने लगी– पिताजी आप माता पर निष्कारण ही क्रुद्ध हो रहे हैं। माता ने मुझे बेचने का कहकर अनुचित क्या किया हे? इन्होने इतने दिन तक मेरी रक्षा की, फिर यदि मेरे बदले 20 लाख सोनैया चाहती हे, तो बुरा क्या करती है? इनकी मुझ पर असीम कृपा है, इसीसे ये मुझे 20 लाख सोनेया मे ही छुटकारा दे रही हे नही तो में, अनेक जन्म तक इनके ऋण से मुक्त नही हो सकती थी। इसलिए आप मेरे साथ चलिए, मैं बिकने के लिए चलती हू। माता ने मेरी कीमत 20 लाख सोनैया की है, परन्तु वास्तव मे मेरी कीमत क्या हे, यह तो बाजार म ही मालूम होगा। मेरे बिके बिना माता को सन्तोष न होगा। माता के हृदय म मेरे को बिकवाने की जो बात आई है वह न मालूम किस प्रेरणा से आई हे। मेरे द्वारा आगे न मालूम कैसे–केसे काम होने हें, इसीसे माता ने मुझे बाजार म बिकवाने का निश्चय किया हे। यदि केकेई ने राम को वन मे न भेजा होता तो राम को कोई न जानता। इसी प्रकार यदि माता मुझे बिकने के लिए न भेज तो मे भी इसी घर की रह जाऊगी। इस घर म अब मेरी कुछ जरूरत भी नहीं रही। इस घर का सुधार हो चुका हे। अब तो मेरी जरूरत उस जगह हे जहा सुधार की आवश्यकता हे। दीपक की आवश्यकता उसी घर म हे जिस घर मे अधेरा हे। जहा प्रकाश मोजूद हे वहा दीपक रखना अनावश्यक हे। इसी तरह अब मेरा भी यहा रहना अनावश्यक हे इसलिए आप मेरे साथ शीघ्र ही चलिए जिसमे माता को अधिक देर तक कष्ट म न रहना पडे।

वसुमति की बातो से वहा उपस्थित सभी लोगो का हृदय पसीज उठा लेकिन रथी की स्त्री पर कोई प्रभाव नही हुआ। वसुमति की बातो को सुनकर, वह अपने मन म ओर न मालूम क्या–क्या विचार करने लगी। वह

रथी से चुप न रहा गया। उसने वसुमति से कहा–पुत्री! तू यह क्या कह रही है? क्या इस कर्कशा के कहने से मैं तेरे को बिकने दू? तुझ ऐसी मगलमयी सती को, अपने यहा से चली जाने दू? क्या मैं तुझे बेचकर कन्या–विक्रेता कहाऊं? मै ऐसा कदापि नहीं कर सकता। यह कर्कशा यदि मेरे घर से निकलती हो तो आज ही भले निकल जावे परन्तु इसके कहने से मैं तेरे को केसे बेच सकता हूं?

रथी के कथन के उत्तर मे वसुमति बोली–पिताजी, आप भूल कर रहे हे। माता ने आपको जो उपदेश दिया था उससे आप विस्मृत हो रहे हें। मैंने भी अभी ओर पहले आपसे जो कुछ कहा हे वह भी आपके ध्यान म नही हे। जब आप मुझे सती–मगलमयी ओर लक्ष्मी मान रहे हें तब मेरे विषय म किसी प्रकार की चिन्ता क्यो करते हैं? मैं जो कुछ कहती हू, उस पर विश्वास क्यों नही करते। मुझे आप नहीं बेच रहे हैं किन्तु मैं स्वय ही बिक रही हू। मेरे विषय मे माता को जो सन्देह हुआ हे, वह सन्देह मिटाना मेरा भी कर्त्तव्य हे ओर आपका भी कर्त्तव्य है। यदि माता का सन्देह न मिटा, तो निष्कारण मेरे को भी कलक लगेगा ओर आपको भी। इसलिए आप किसी प्रकार का दूसरा विचार न करके मेरे साथ चलिए। मनुष्य का कर्त्तव्य हे कि वह प्रत्येक सम्भव उपाय से स्वय को कलक से बचावे। फिर क्या अपन अपने पर मिथ्या कलक लगने दें? उससे बचने का उपाय न करे? मै प्रत्येक दृष्टि से यही ठीक समझती हू कि माता की आज्ञानुसार मुझे बाजार मे बिक जाना चाहिए, ओर इस प्रकार माता का सन्देह मिटाकर स्वय को तथा आपको मिथ्या कलक से बचाना चाहिए इसलिए आप मेरे साथ चलिए। मैं स्वय को बेचकर 20 लाख सोनैया दिलवा दूगी वे लाकर माता को दे दीजिये।

वसुमति ने रथी को इस प्रकार समझा कर, शात कर दिया। रथी ओर कुछ न कह सका। उसने केवल यही कहा, कि 'आप जेसा उचित समझे वेसा करे मैं आपकी आज्ञा का पालन करना अपना कर्त्तव्य समझता हू। इस प्रकार रथी को अनुकूल बनाकर वसुमति ने रथी की स्त्री को प्रणाम किया। उसने रथी की स्त्री से कहा–माता! मेरे कारण आपको अनेक कष्ट सहने पडे हें। मे उन सबके लिए आपसे क्षमा मागती हू और प्रार्थना करती हू कि इस पुत्री पर आपकी कृपा दृष्टि बनी रहे।

वसुमति ने रथी की स्त्री को प्रणाम भी किया और क्षमा भी मागी, लेकिन रथी की स्त्री नागिन की सी फुफकार छोडती हुई चुपचाप ही बैठी रह कुछ भी नहीं बोली। हा अपने मन मे यह अवश्य कहती रही, कि इस कुलटा

ने मेरे पति को थोडे ही दिनो मे केसा वश मे कर लिया है, कि इसके कथन के विरुद्ध पति कोई कार्य नहीं करते। मुझको इस तरह विफरी देखकर यह डर गई है कि मेरी सब पोल खुल जावेगी, इसीलिए इसने बिकना ओर पति के साथ जाना स्वीकार किया हे। मैने यदि ऐसा उग्र रूप न, दिखाया होता तो यह कभी न निकलती किन्तु कुछ दिनो मे, मुझको ही घर से निकाल देती। पति की बातो से यह स्पष्ट है, कि पति इसको घर मे रखने की प्रतिज्ञा करके ही लाये थे। तभी तो कहते थे कि मैं तुझको नही निकाल सकता। बल्कि इसके लिये मुझे निकालने को तेयार हो गये थे। अच्छा हुआ, कि यही डर कर बिकने के लिए तैयार हो गई, नहीं तो पति ने तो एक भयकर स्थिति उत्पन्न कर दी थी।

रथी की स्त्री इस प्रकार अपने स्वभावानुसार विचार करती रही ओर वसुमति की ओर, लाल–लाल आखे किये देखती रही। उसको प्रणाम ओर उससे क्षमा–प्रार्थना करके वसुमति, गृह के अन्य लोगो–नोकर–चाकर आदि से मिली, और फिर बाजार मे जाने के लिए निकल पडी। उसने घर से निकलने के पहले उसी प्रकार के वस्त्र पहन लिये जैसे वस्त्र दासिया पहना करती थी। घर से निकलने के समय, उसको किचित भी विषाद नही था, किन्तु प्रसन्नता ही थी। उसने रथी से कहा–पिताजी आइये मेरे साथ चलिए। यह कह कर वसुमति घर से चल दी। वसुमति के उपदेश से प्रभावित रथी भी कुछ न बोल सका। वह भी आखो से आसू गिराता हुआ चुपचाप वसुमति के पीछे हो गया।

रथी को साथ लिये हुई वसुमति कोशाम्बी के प्रमुख बाजार मे आई। वह बाजार के बीच मे–चोराहे पर–खडी हो गई ओर पुकार–पुकार कर कहने लगी–भाइयो, में दासी हू, मुझको खरीद लो।

नीची दृष्टि किये वसुमति बाजार मे खडी हुई इस प्रकार पुकार–पुकार कर कह रही थी ओर रथी एक ओर खडा हुआ यह विचार कर आखो से आसू बहा रहा था, कि 'हाय, आज यह सती उस दुष्टा के कारण मेरे घर से जा रही हे। वसुमति की आवाज सुनकर उसके आसपास बहुत से लोग एकत्रित हो गये। सब लोग उसकी अवस्था उसका सोन्दर्य उसकी शारीरिक बनावट ओर कोमलता देखकर दग हो रहे थे। वे सोच रहे थे कि यह कौन है कहीं कोई देव–कन्या हम सबको छलने के लिए तो नहीं आई? अथवा कोई अप्सरा तो स्वर्ग से पतित होकर नही आई? एसी कन्या हम लोगों ने तो कभी देखी ही नही। इस प्रकार के आश्चर्य मे पडकर लोग वसुमति से [illegible]

लगे–देवी! तुम कौन हो, और इस प्रकार बाजार मे क्यो खडी हो? लोगो के इस प्रश्न के उत्तर मे वसुमति ने कहा–भाइयो! मै दासी हू। यहा बिकने के लिए खडी हुई हू। मैं घर के सभी काम कर सकती हू। ऐसा कोई गृहकार्य नही हे जिसे मै न कर सकती होऊ। मुझे जो भी चाहे खरीद सकता है। जो भी मेरा मूल्य दे मै उसी के यहा जा सकती हू। मुझे, जो खरीद कर ले जावेगा, मैं उसके घर के सब काम करूगी और उसका घर सुधार दूगी।

'यह दासी है और बिकने के लिए खडी हे यह जानकर, बहुतो की इच्छा वसुमति को खरीदने की हो गई। अनेक लोग वसुमति से कहने लगे कि–हम तुम्हे खरीद लेगे, लेकिन तुम्हारा मूल्य क्या देना होगा? लोगो के इस प्रश्न के उत्तर मे वसुमति ने रथी की ओर सेन करके कहा कि–वे मेरे पिता खडे हैं जो उन्हे 20 लाख सोनैया दे वही मुझे खरीद सकता हे।

वसुमति के मुह से 20 लाख सोनैया सुनकर खरीदने की इच्छा रखने वाले लोग हक्के–बक्के से हो गए। वे वसुमति के रूप–लावण्य आदि की तो पशसा करते थे और यह भी कहते थे कि–

यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति।

अर्थात्–जहा आकृति हे वहा गुण भी हे।

लोग यह कहते तो थे, फिर भी उन्हे 20 लाख सोनैया बहुत मालूम होते थे इसलिए वे वहा से यह कहते हुए चल देते थे कि 20 लाख सोनैया मे दासी खरीद कर क्या करेगे? दासी, कितनी भी होशियार ओर अच्छी हो, तब भी करेगी तो गृहकार्य ही। कुछ वाणिज्य–व्यवसाय करके द्रव्योपार्जन करने से तो रही। इसलिए इतने सोनैया देकर केसे खरीद सकते हैं?

इस प्रकार लोग वसुमति की प्रशसा करते हुए, उसे खरीदने के लिए तो तैयार होते थे परन्तु मूल्य सुनकर चल देते थे। उसे खरीदने का साहस किसी का भी नही होता था।

सती बसुमति
भाग—2

आत्म–बल

ससार मे ऐसे बहुत कम धनवान निकलेगे जो गुण ग्राहक हो। गुणो की अपेक्षा द्रव्य को तुच्छ समझने वाले गुणो पर द्रव्य को न्योछावर कर सकने वाले ओर द्रव्य व्यय करके गुणो का आदर तथा प्रचार करे ऐसे धनिक बहुत कम होगे। अधिकाश धनिक तो धन को ही बडा समझते हैं। उनकी दृष्टि मे गुणो का कोई मूल्य ही नही हे। वे केवल लोकिक गुणो ओर ससार की अन्य समस्त बातो को ही नही किन्तु धर्म को भी धन से ही तोलते हैं ओर उस तुलना मे धन को ही भारी समझते हे। ऐसे लोग यदि कभी गुणो से प्रभावित भी हुए तो गुणी की मोखिक प्रशसा चाहे कर दे, लेकिन वह भी कठिनाई ओर सकोच के साथ। मुक्त हृदय से मौखिक प्रशसा करना भी उन्हे बहुत भारी लगता हे। उन्हे यह भय रहता है कि हमारे मुख से प्रशसा निकलने पर कोई हमे उदारता दिखाने ओर धन त्याग करने को न कहे। इस भय से कृपण स्वभाव के कारण वे वाणी मे भी कृपणता रखते है। यहा तक कि सामान्य शिष्टाचार का आवश्यक कर्त्तव्य भी ठुकरा देते हैं और मुह से आइये 'बेठिये आदि शब्द भी नही निकालते। किन्तु इस प्रकार का निष्ठुर व्यवहार करते हें कि जेसे धन ने उन मे हृदय रहने ही नहीं दिया हे, अथवा उनके हृदय को पत्थर की तरह कठोर बना दिया हे, जिसमे कि द्रवित होने का स्वभाव ही नहीं हे तथा किसी कारण वह हृदय न तो गुणियो के गुण पर आकर्षित होता हे न गरीबो की आह और दु खियो के करुण क्रन्दन की ओर। वे अपनी ही तरह के धनवानो के सिवा दूसरे लोगो को मनुष्य भी नही मानते। गरीबो के साथ तो ऐसा व्यवहार करते हें जैसा व्यवहार पशु के साथ भी न किया जाना चाहिए। उनकी दृष्टि मे गरीबो की वेदना वेदना ही नही है न गरीबो की आवश्यकता आवश्यकता ही हे। अपनी वेदना मिटाने ओर अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए तो वे सब कुछ कर डालते हें लेकिन गरीबो की वेदना

मिटाने, ओर उनकी आवश्यकता पूरी करने मे सहायक होने के बदले ओर बाधक हो जाते हैं। ऐसे ही कारणो से तो, परिग्रह को पाप का कारण माना गया है।

वसुमति को अब तक जितने भी व्यक्ति मिले थे वे ऐसे ही स्वभाव के मिले। इसलिए 20 लाख सोनैया का नाम सुनकर वे, उस स्थान से इस तरह चल देते थे, कि जिसमे फिर किसी की दृष्टि मे न आवे। वे सोचते थे कि एक दासी का मूल्य 20 लाख सोनेया। इतने मे तो 20 दासिया खरीदी जा सकती है, फिर एक के लिए इतना धन केसे व्यय कर सकते हैं। इस तरह वे लोग केवल 20 लाख सोनेया का विचार करते थे। यह नही समझते थे कि इसकी समता 20 क्या, सेकडो-हजारो दासिया भी नही कर सकती। उनकी दृष्टि पर, धन का पर्दा पडा हुआ था, इसी कारण ऐसी बाते उनकी नजर मे नहीं आती थी, किन्तु धन ही दिखाई देता था।

उसी कोशाम्बी मे, एक वेश्या भी रहती थी। वह वेश्या नाच गान और सौन्दर्य मे अपने समय की एक ही थी इसलिए 'नगर नायिका' मानी जाती थी। अवस्था का परिवर्तन होना तो ससार का नियम ही हे। जो आज बालक हे, वह युवक ओर वृद्ध होगा ही। इस प्राकृतिक नियम से वेश्या भी कैसे बच सकती थी। वेसे तो वह, अपने नृत्य-गान ओर कटाक्ष हाव-भाव आदि से कामियो के मन को अपनी ओर आकर्षित करने मे कुशल थी फिर भी वह सोचती थी कि मेरी अवस्था बढती जा रही हे कुछ ही दिनो मे मे बूढी हो जाऊगी ओर इस कारण अपने ग्राहको को मुग्ध करने मे असमर्थ हो जाऊगी। आज तो नगर के बडे-बडे लोग भी मेरे द्वार की धूल छानते हैं लेकिन जब मैं वृद्धा हो जाऊगी तब वे मेरे यहा क्या आवेंगे? यद्यपि मेरे यहा मेरा व्यवसाय करने वाली अनेक लडकिया हैं लेकिन उनमे से एक भी [illegible] ऐसी नही दिखती जो मेरा स्थान लेकर मेरे घर की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रख सके। मेरे व्यवसाय के लिए, रूप-लावण्य का होना विशेष आवश्यक है। और उसके साथ नृत्य-गान कला तथा चातुरी की भी आवश्यकता है। मेरे यहा जो लडकिया हैं उनमे से एक मे भी ये सब बात नहीं है।

उस वेश्या को इस बात की चिन्ता रहा करती थी कि मेरा [illegible] कोन लेगी। यदि मेरे जीते जी मेरा पद नगर की दूसरी वेश्या ने [illegible] मेरे घर की प्रतिष्ठा किसी दूसरी के घर चली गई तो यह मेरे [illegible] की बात होगी। मेरे पास द्रव्य की तो कमी नही है। यदि कोई [illegible] मिले तो मैं उसके बदले मे चाहे जितना धन दे सकती हूँ [illegible] कोई लडकी दिखाई ही नहीं देती।

इस प्रकार वह वेश्या किसी योग्य ओर सुन्दर कन्या की खोज मे रहा करती थी। जिस समय वसुमति बाजार म खडी हुई बिक रही थी उसी समय पालकी मे बेठी हुई अपनी दासियो के साथ वेश्या उस जगह स हाकर निकली। भीड देखकर पालकी रुकवा दी, ओर लोगा से पूछा कि यह भीड क्यो हे? लोगो के उत्तर से यह जानकर कि यहा एक दासी बिक रही हे इस विचार से वह भीड को चीर कर वसुमति के पास गई। वसुमति को देखकर उसे आश्चर्य भी हुआ ओर प्रसन्नता भी। उसे इस विचार से तो प्रसन्नता थी कि मे जैसी सुन्दरी की तलाश मे थी यह तो उससे भी बढ कर हे। वसुमति का रूप-सोन्दर्य आदि देखकर वह आश्चर्य करती थी। वह सोच रही थी कि ऐसी सुन्दरी तो मेंने आज तक देखी भी नहीं। में स्वय को सुन्दरी मानकर गर्व करती थी परन्तु में तो इसकी सुन्दरता के एक अश इतनी भी सुन्दर नही हू। मेरा भाग्य अच्छा हे जो आज में इस ओर आ गई। चाहे जो हो, चाहे जितना भी मूल्य देना पडे मे इस दासी को अवश्य खरीदूगी। इसको खरीद कर में मेरी उत्तराधिकारिणी की ओर से निश्चित हो जाऊगी तथा अपने पद एव प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखूगी। यह ऐसी योग्य मालूम होती हे, जिसम मे अपनी नृत्य-गान-कला पूरी तरह स्थापित कर सकू। पहले तो इसका रूप ही ऐसा हे जिस पर बडे-बडे सदाचारी कहलाने वाले भी आकर्षित हो जावे। फिर जब मे सोने मे सुगन्ध मिलाने की तरह इसको अपनी सब कला सिखा दूगी तब इसके आगे कोन पुरुष नत मस्तक न होगा?

इस प्रकार कल्पना-जगत मे विचरण करती हुई वेश्या ने वसुमति से पूछा कि तू कौन हे ओर किस उद्देश्य से बाजार मे खडी है? वसुमति नीची दृष्टि किये हुई थी। उसने, जिस तरह ओर सब को उनकी ओर बिना देखे ही उत्तर दिया था उसी तरह वेश्या को भी उत्तर दिया, कि- में दासी हू, तथा बिकने के लिए खडी हू। वेश्या ने पूछा, कि-तेरा मूल्य क्या हे? वसुमति ने उत्तर दिया कि-वे मेरे पिता खडे हे। जो कोई उनको 20 लाख स्वर्ण मुद्रा देगा में उसी के साथ जा सकती हू, ओर उसके यहा का सब गृहकार्य करके, उसका घर सुधार सकती हू। वेश्या ने पूछा-क्या अभी तक कोई तेरे बदले मे 20 लाख सोनेया देने वाला नही आया? वसुमति ने उत्तर दिया, कि-हा अब तक तो पूछने वाले ही आये है, देने वाला कोई भी नही आया है। वसुमति का उत्तर सुनकर वेश्या कुछ गर्व के साथ कहने लगी कि जो जिसका परीक्षक ही नही हे वह उसका आदर करना क्या जाने? अब तक जो लोग यहा आये हे, उनमे से यदि कोई स्त्री-पुरुष के लक्षणो का जानकार होता

वसुगति का प्रश्न सुनकर, वेश्या ठहाका मार कर हसने लगी और कहने लगी–सरले, गेरा आचार क्या पूछती हे? मेरा आचार क्या हे और गेरे यहा तुझे क्या काग करना होगा यह वात सर्व प्रसिद्ध ही हे। तेरा भाग्य अच्छा हे, इसी से तेरे को में ले जा रही हू। लोग तेरी परीक्षा नही कर सके, इसलिए तुझे दासी वनाने तक को नही खरीदा लेकिन वास्तव गे क्या तू दासी वनने योग्य हे? तुझसी सुन्दरी, दासी वनकर जीवन व्यतीत करे यह केसे ठीक। यदि मे नही आती तव तो तुझे दासी वनना ही पडता, अभी तक तो कोई तुझे दासी वनाने तक के लिए भी तेयार नही हुआ था लेकिन तेरे सद्भाग्य से में आ गई। दूसरे लोग तो वीस लाख सोनेया के सागने तुझे तुच्छ समझते हें, परन्तु मे तेरे सागने वीस लाख सोनेया तुच्छ सगझती हू।

भोली लडकी! मेरा आचार क्या हे, ओर गेरे यहा तुझे क्या करना होगा यह सुन। नित नया सुख भोगने का काग ही गेरे यहा का आचार हे, ओर तेरे को भी मेरे यहा चल कर, नित नया सुख भोगने का काम करना होगा। मेरे यहा जो सुख हे, वे सुख किसी दूसरी स्त्री की तो वात ही क्या बडे से बडे राजा–रानी को भी प्राप्त नही हे। मेरे यहा कल जो सुख भोगा, आज उससे बढकर सुख भोगना हे। ससार मे जिसको अविचल सोभाग्य कहा जाता है वह अविचल सोभाग्य मेरे ही यहा हे। मेरे यहा दुर्भाग्य का तो नाम ही नही हे। मे अपने यहा के सुख–सोभाग्य का वर्णन करने लगू तो, एक ग्रन्थ वन जावे फिर भी पार नही आ सकता। इसलिए मे, सब सुखो का वर्णन न करके उनमे से कुछ का वर्णन करती हू।

मेरे यहा सवसे पहला सुख सदा सुहाग का हे। विधवा होने का तो, भय ही नही हे। ससार मे ऐसी पद्धति चल रही हे, कि बेचारी स्त्रिया, अपने गा–वाप का घर छोडकर किसी एक पुरुष के यहा जाती हे उसकी सेविका बन कर जिस तरह भी वह रखता हे, उसी तरह रहती हे। उसके साथ दु ख उठाती हे, फिर भी पुरुष, मर कर अपनी ओरत को राड बना जाता हे, ओर उसे जीवन भर के लिए दु ख मे डाल जाता हे। इसके विपरीत जिस स्त्री ने इतना त्याग किया हे, साथ दिया हे, ओर दु ख उठाया है उस स्त्री के मरने पर, पुरुष स्वय विधुर नही रहते, किन्तु दूसरी स्त्री विवाह लेते हे। ससार मे इस तरह की विषमता फेल रही हे। मेरे यहा ऐसी विषमता को स्थान ही नही हे। न विधवा होने का भय ही हे। विधवा तो तव होना पडे जब किसी एक पुरुष की दासी होकर रहे। मेरे यहा पुरुषो की गुलामी नही करनी पडती। पुरुष ही सेवक की तरह मेरे यहा आखोकी सेन पर नाचा करते हे। में जिस

तब तो तेरे को अवश्य ही खरीद लेता, परन्तु जान पडता हे कि अब तक ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं आया ओर कोई जाने या न जाने, तेरे लक्षणो से में तो यह जानती हू, कि तेरे मे क्या विशेषता हे। मे तेरे गुण ओर तेरे सोन्दर्य का पहचानने वाली हू। में कहती हू कि तेरे सामने 20 लाख सोनेया कुछ भी नही है। 20 लाख सोनैया तो, तेरे एक ही अग पर न्योछावर किये जा सकते हे। ले चल, मेरे साथ चल, बेठ पालकी मे, में अभी तेरे पिता को 20 लाख सोनेया दिये देती हू। में वणिक स्वभाव की नही हू, जो कोडी–कोडी के लिए झिक्–झिक् करू। में जिस चीज को पसन्द करके लेना चाहती हू, उसका मुह मागा दाम देती हू। तुमने अपना मूल्य 20 लाख सोनेया मागा हे इसलिए में 20 लाख सोनैया दूगी, एक भी सोनेया कम न दूगी? इसलिए चल देर मत कर।

वेश्या की उदारतापूर्ण ओर आत्मश्लाघाभरी बात सुनकर वसुमति को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसने सोचा कि अब तक तो जितने भी लोग आये सभी ने बीस लाख सोनेया बहुत बताये, लेकिन यह स्त्री होकर भी बीस लाख सोनैया देने को तेयार है, तथा बीस लाख सोनेया को ओर कम बता रही हे। देखू तो सही, कि यह हे कोन? इस तरह विचार कर वसुमति ने अपनी नीची दृष्टि ऊपर करके वेश्या को देखा, वेश्या का शृगार देखकर वसुमति ने यह तो जान लिया कि यह धनवान हे, लेकिन यह खरीदती किस उद्देश्य से है इस विषय मे वह कुछ निश्चय न कर सकी। उसने विचार किया कि माता को सन्तुष्ट करने के लिए पहले तो में इसके हाथ बिककर पिता का बीस लाख सोनेया दिलवा दू, ओर फिर यह काम कहे, वह काम न करू उस काम के करने मे आनाकानी करू तो यह ठीक न होगा। एसा करना विश्वासघात हे। इसलिए मुझे पहले ही इसका आचार जान लेना चाहिए ओर यह मालूम कर लेना चाहिए, कि मुझे इसके यहा जाकर कोन–कोन स काम करने होगे। किस काम के विषय मे अभी ही स्पष्ट कह देना ही ठीक हे कि में अमुक काम कर सकूगी या न कर सकूगी।

वसुमति ने वेश्या से कहा–माता में जब बिकने के लिए [illegible] जो भी बीस लाख सोनेया दे उसके साथ मुझे जाना चाहिए परन्तु [illegible] (खरीददार) को किसी प्रकार का धोखा न हो मे उसका कार्य न कर सक [illegible] इस कारण उसका द्रव्य व्यर्थ जावे इसलिए मे आपसे यह जानना चाह[illegible] कि आपका आचार क्या हे? तथा आप मुझे किस कार्य के लिए [illegible] चाहती हें? यह जानने के पश्चात् यदि मुझे उचित जान पड़ा तो [illegible] साथ अवश्य चलूगी।

वसुमति का प्रश्न सुनकर वेश्या ठहाका मार कर हसने लगी, और कहने लगी—सरले, मेरा आचार क्या पूछती है? मेरा आचार क्या है और मेरे यहा तुझे क्या काम करना होगा यह बात सर्व प्रसिद्ध ही है। तेरा भाग्य अच्छा है, इसी से तेरे को मै ले जा रही हू। लोग तेरी परीक्षा नही कर सके इसलिए तुझे दासी बनाने तक को नही खरीदा लेकिन वास्तव मे क्या तू दासी बनने योग्य है? तुझसी सुन्दरी, दासी बनकर जीवन व्यतीत करे यह कैसे ठीक। यदि मै नही आती तब तो तुझे दासी बनना ही पडता, अभी तक तो कोई तुझे दासी बनाने तक के लिए भी तैयार नही हुआ था लेकिन तेरे सद्भाग्य से मै आ गई। दूसरे लोग तो बीस लाख सोनैया के सामने तुझे तुच्छ समझते है परन्तु मै तेरे सामने बीस लाख सोनैया तुच्छ समझती हू।

भोली लडकी! मेरा आचार क्या है, और मेरे यहा तुझे क्या करना होगा यह सुन। नित नया सुख भोगने का काम ही मेरे यहा का आचार है, और तेरे को भी मेरे यहा चल कर नित नया सुख भोगने का काम करना होगा। मेरे यहा जो सुख है वे सुख किसी दूसरी स्त्री की तो बात ही क्या, बडे से बडे राजा—रानी को भी प्राप्त नही है। मेरे यहा कल जो सुख भोगा आज उससे बढकर सुख भोगना है। ससार मे जिसको अविचल सौभाग्य कहा जाता है वह अविचल सौभाग्य मेरे ही यहा है। मेरे यहा दुर्भाग्य का तो नाम ही नही है। मै अपने यहा के सुख—सौभाग्य का वर्णन करने लगू तो, एक ग्रन्थ बन जावे फिर भी पार नही आ सकता। इसलिए मै, सब सुखो का वर्णन न करके उनमे से कुछ का वर्णन करती हू।

मेरे यहा सबसे पहला सुख सदा सुहाग का है। विधवा होने का तो, भय ही नही है। ससार मे ऐसी पद्धति चल रही है, कि बेचारी स्त्रिया, अपने मा—बाप का घर छोडकर किसी एक पुरुष के यहा जाती है उसकी सेविका बन कर जिस तरह भी वह रखता है उसी तरह रहती है। उसके साथ दु ख उठाती है, फिर भी पुरुष मर कर अपनी औरत को राड बना जाता है, और उसे जीवन भर के लिए दु ख मे डाल जाता है। इसके विपरीत जिस स्त्री ने इतना त्याग किया है साथ दिया है और दु ख उठाया है उस स्त्री के मरने पर पुरुष स्वय विधुर नही रहते, किन्तु दूसरी स्त्री विवाह लेते है। ससार मे इस तरह की विषमता फैल रही है। मेरे यहा ऐसी विषमता को स्थान ही नहीं है। न विधवा होने का भय ही है। विधवा तो तब होना पडे जब किसी एक पुरुष की दासी होकर रहे। मेरे यहा पुरुषो की गुलामी नही करनी पडती। पुरुष ही सेवक की तरह मेरे यहा आखोकी सैन पर नाचा करते है। मैं जिस

पुरुष को अपना सेवक बना लेती हू, वह पुरुष स्वय को सद्‌भागी मानता हे ओर मुझ पर अपना तन मन धन न्योछावर कर देता हे। फिर भी मैं उसको सदा के लिए पसन्द नही करती, किन्तु जब भी इच्छा होती हे उसको हटा कर दूसरे को अपना सेवक बना लेती हू। बडे–बडे राजा रईस मेरे एक कटाक्ष पर क्रीतदास की तरह उपस्थिति रहते हे। जो स्वय को शूरवीर तथा मानी समझते हैं अपनी मूछो को ऐंठी हुई रखते हैं वे लोग भी मेरे आगे नतमस्तक हो जाते हैं।

पहने–ओढने ओर खाने–पीने के विषय मे तो कहू ही क्या? मेरा घर श्रृगार का उद्‌गम–स्थल है। नये श्रृगारो का आविष्कार मेरे ही यहा होता हे। नूतन प्रकार के वस्त्र तथा नूतन प्रकार के आभूषण, सबसे पहले मेरे ही यहा बनते हे, ओर लोग तो, मेरे यहा के वस्त्राभूषणो का अनुकरण ही करते हैं। मेरे यहा नित्य नये श्रृगार किया जाता हे बल्कि दिन भर म अनेक बार श्रृगार बदला जाता हे। भोजन का सुख भी जो मेरे यहा हे वह दूसरे के यहा नही हे। मेरे यहा का भोजन स्वादिष्ट, बलप्रद ओर कामोत्तेजक होता हे। इस तरह का भोजन करके, इच्छानुसार श्रेष्ठ श्रृगार करना इच्छानुसार नये–नये पुरुषो के साथ सुख–भोगना, ओर रग हिडोले मे बेठा झूला करना यही मेरे यहा का आचार हे, तथा मैंने जो सुख बताये हे वे सुख भोगना ही मेरे यहा का काम हे। एक बात ओर हे–मे नृत्यकला ओर गान कला को विशेष जानती हू। म अपनी ये सब कलाए तुझे सिखा दूगी। ससार म ऐसा कोन हे जो नृत्यगान पर मुग्ध न हो। मनुष्य की तो बात ही क्या हे पशु भी गीत पर मुग्ध हो जाते हैं। साप ऐसा भयकर ओर घातक प्राणी भी गीत के वश म हो जाता हे। जब तू भी मेरी नृत्य, गान कला सीख जावेगी तब सब लोग तेरे वश म हो जायेगे ओर इस प्रकार जो सुख मुझे प्राप्त हैं, जिस तरह मेरी प्रतिष्ठा हे उसी तरह का सुख, ओर वेसी ही प्रतिष्ठा तुझे भी प्राप्त होगी। मेरे यहा तुझे क्या करना होगा यह मैंने तेरे को बता दिया। अब यदि तेरे म बुद्धि हो चतुर हो ओर तेरा भाग्य अच्छा हो, तो उठ खडी हो देर मत कर। मेरे यहा तुझे जमीन पर पाव भी न रखना होगा किन्तु इसी तरह पालकी म बैठ कर चला करेगी ओर तेरे आगे–पीछे अनेक दासी दास चला करेगे। इसलिए जल्दी [illegible] पालकी म बेठकर मेरे साथ चल। तेरे पिता को भी [illegible] लाख सोनेया दे दूगी।

वेश्या की बातो से वसुमति [illegible] गई। [illegible] उद्देश्य से 20 लाख सोनेया खर्च करती हे तथा मुझे [illegible]

का कथन समाप्त होते ही वसुमति ने उससे कहा—माता आप जिस उद्देश्य से मुझे खरीदना चाहती हे और मेरे से जो कार्य कराना चाहती हैं मेरे द्वारा न तो आपका वह उद्देश्य ही पूरा हो सकता हे न मे आपका वह कार्य ही कर सकती हू। इस कारण मुझे खरीदने पर आपका द्रव्य व्यर्थ जावेगा। आप मुझे खरीद ले मैं आपके यहा चलू, पिता को बीस लाख सोनेया भी दिलवा दू और फिर आपका कहा हुआ काम न करू यह ठीक नही हे। उस समय आप कहेगी मुझे धोखा दिया इसलिए अभी स्पष्ट कह देती हू कि आप मुझे खरीदने का विचार छोडकर अपने घर जाइये। मैं आपके यहा नही चल सकती।

वसुमति का उत्तर सुनकर, वेश्या को कुछ निराशा हुई फिर भी वह—निराशा को दबाकर—कहने लगी कि तेरा दुर्भाग्य ही ऐसा हे कि जिसके कारण तेरी समझ मे मेरी बात नही आई। तेरे भाग्य मे तो दासीपना ही जान पडता हे। मैं तो सोचती थी, कि तुझे ले जाकर स्वर्गीय सुखो से तेरी भेट कराऊ लेकिन सद्भाग्य के बिना मेरे चाहने पर भी तुझे वे सुख नही मिल सकते हैं। मैं देखती हू, कि मेरी स्त्री—बहनो पर पुरुष लोग, बहुत अत्याचार करते हैं। मेरा उद्देश्य हे कि मैं पुरुषो का अभिमान भग कर दू, और उन्हे झुका दू। इस कार्य मे मेरी सहायता करने वाली कोई नही है। मैं तुझे अपनी सहायिका बनाना चाहती हू, और इसीलिए मुह मागे दाम देने को तेयार हुई हू, लेकिन तू मेरी बातो को समझी ही नही। मैं तेरे से फिर कहती हू कि तू मेरी बात मान कर जल्दी से पालकी मे बेठकर चल। बचपन की बाते मत कर। यह तो सोच कि मेरे सिवा, तेरे बदले मे कोई बीस लाख सोनैया देता भी हे। और मैंने बीस लाख सोनेया देने मे किसी तरह की आनाकानी भी की हे।

वेश्या के कथन के उत्तर मे वसुमति कहने लगी—माता, मै आपके साथ कैसे चल सकती हू। मेरा मार्ग दूसरा हे ओर आपका दूसरा है। आप पुरुषो को मोह के चक्कर मे डालने का प्रयत्न करती हैं और मै पुरुषो को मोह के चक्कर से निकालने का प्रयत्न करती हू। आपने अपने यहा का जो आचार बताया जिस खान—पान और साज श्रृगार की प्रशसा की, वह सब पुरुषो को मोह के चक्कर मे डालने, और उनका जीवन नष्ट और उन्हे आचारभ्रष्ट करने के लिए हे तथा मे इसका विरोध करने वाली हू। इस कारण मेरे द्वारा, आपका उद्देश्य तो पूरा होगा ही नही, अपितु आपके कार्य मे ओर बाधा पहुचेगी। आप जिसे अपने जाल मे फसाना चाहेगी उसे मे बचाने का प्रयत्न करूगी आपके जाल मे न फसने दूगी। इस प्रकार मुझे ले जाने से आपको लाभ न होगा,

किन्तु हानि होगी, ओर जब तक आप पुरुषो को मोह–ग्रस्त करने के कार्य करती हें, तब तक में भी आपके साथ नही चल सकती। हा यदि आप इस मार्ग को त्यागकर सदाचार को अपनाती हो तो में आपके साथ चलने के लिए तेयार हू। यदि आपको ऐसा करना स्वीकार नही हे तो में भी आपके यहा नही चल सकती। जबकि आप बुरा मार्ग भी नही छोड सकती तब मे अच्छा मार्ग केसे छोड सकती हू।

वसुमति का उत्तर सुनकर वेश्या अपने मन मे कहने लगी कि यह लडकी केवल सुन्दर ही नही हे, किन्तु बुद्धिमती भी हे ओर बातचीत करने म भी कुशल हे। यदि यह मेरे यहा चले, तो अवश्य ही मेरे घर की प्रतिष्ठा बढ सकती हे। इस प्रकार विचार करती हुई, वह कुछ रुष्ट होकर वसुमति से कहने लगी कि–बडी सदाचारिणी बन रही हे, मुझे सदाचार का उपदेश दे रही हे। यह नही देखती, कि मे कौन हू, ओर ये बाते किससे कर रही हू? तू दासी मुझे उपदेश दे। बिकने के लिए तो खडी हे, ओर मुझे उपदेश दे रही हे। तू मेरे को उपदेश नही दे सकती। तेरी तरह की दासिया मेरे यहा बहुत हे ओर यह देख इतनी तो यही खडी हें। इसलिए अपने उपदेश को स्वय के पास ही रहने दे। इसके सिवा, तू मुझसे तो सदाचार का पालन करने को कहती हे लेकिन स्वय ही पालन क्यो नही करती? सदाचार म सत्य भी हे तू सत्य का पालन क्यो नही करती? अभी तूने ही कहा था कि म दासी हू, बिक रही हू ओर जो 20 लाख सोनेया दे उसी के साथ जाने को तेयार हू। तेरे इस कथन के अनुसार मेंने बीस लाख सोनेया देना स्वीकार किया फिर तू मेरे साथ चलने से इकार केसे कर सकती हे? खरीद लेने पर म तेरे से सभी काम कराने का अधिकार रखती हू। तू किसी भी काम के करने से इन्कार नही कर सकती। मने तेरे मागे हुए बीस लाख सोनेया देना स्वीकार किया ओर [illegible] भी अपनी इस स्वीकृति पर दृढ हू, लेकिन तू अपनी कही हुई बात से हट रही हे। अब तू ही बता कि सत्य का पालन म नही करती हू, या तू [illegible] करती हे। ओर इस कारण सदाचारणी म हू या तू हे? तू दूसरे को तो उपदेश [illegible] हे परन्तु यह भी देखती हे कि म जो उपदेश दूसरे को देती हू, उसका [illegible] स्वय भी करती हू या नही? यह क्या नही सोचती कि जो उपदेश [illegible] देती हू, उसका पालन स्वय ही क्यो न करू? तू मेरे [illegible] चलना चाहे अब तो तुझे मेरे साथ चलना ही होगा। [illegible] चुका हे तूने बीस लाख सोनेया मागा ओर [illegible] इसलिए सोदा पक्का हो चुका। अब तू [illegible] यदि तू चाहे तो यहा जो लोग खडे हे [illegible]

यह कह कर वेश्या हाव–भाव बताती हुई वहा खडे हुए लोगो की ओर देखने लगी। उसने सकेत से किसी को तो यह समझाया कि में तुम्हे प्रसन्न कर दूगी तथा किसी को यह समझाया कि यह मेरे यहा चलेगी तो तुम भी इससे आनन्द ले सकोगे। उसके कटाक्ष ओर सकेत से वहा खडे हुए लोगो मे से बहुत से लोग प्रभावित हो गये। ऐसे लोग सोचने लगे कि वास्तव मे यदि यह लडकी वेश्या बन जावे तो नगर की शोभा बढ जावेगी ओर कभी हम भी इसके स्पर्श का आनन्द ले सकेगे। वेश्या ने जब देखा कि यहा मेरे समर्थक लोग ज्यादा है तब वह सब लोगो से कहने लगी, कि आप सब प्रतिष्ठित सज्जनो के सामने ही यह सोदा हुआ है। आप ही कहिए कि मे कुछ गलत तो नही कह रही हूँ? यदि में गलत कहती होऊ, तब तो आप लोग मुझे कहिए नही तो बताईये कि क्या अब यह मेरे साथ चलने से इन्कार कर सकती है?

वेश्या के सकेत और हाव–भाव से जो कामी लोग प्रभावित हो चुके थे वे वेश्या का पक्ष समर्थन करते हुए कहने लगे कि वास्तव मे सोदा तय हो चुका हे इसलिए इसको तुम्हारे यहा जाना ही चाहिए। यह तुमसे केवल बीस लाख सोनेया दिला सकती हे, तुम्हारे साथ जाने से इन्कार नही कर सकती। कामी लोग इस प्रकार की बाते कहकर वेश्या का पक्ष समर्थन करने लगे। हा जो लोग दुराचार को बुरा समझने के कारण वेश्या के सकेत–कटाक्ष आदि से प्रभावित नही हुए थे उन्होने अवश्य वेश्या का कथन अनुचित बताकर कहा कि–किसी के साथ जबरदस्ती नही हो सकती। यह वेश्या के यहा जावे या न जावे इसकी इच्छा पर निर्भर है। इसने वेश्या के यहा जाना स्वीकार नही किया हे, किन्तु वेश्या से उसका आचार सुनकर वेश्या के यहा जाना अस्वीकार कर दिया हे। ऐसी दशा मे यह भी नही कहा जा सकता कि सोदा तय हो चुका।

इस प्रकार कुछ लोग तो वेश्या के पक्ष का समर्थन करने लगे और कुछ लोग वसुमति के पक्ष का। वहा उपस्थित लोगों के दो दल बन गये परन्तु वेश्या का साथ देने वाले अधिक थे ओर वसुमति का पक्ष समर्थन करने वाले कम थे। अपने पक्ष मे बहुत लोगो को देखकर वेश्या प्रसन्न हुई। उसने सोचा कि अब तो चाहे जिस तरह इसको जल्दी ही ले जाना चाहिए विलम्ब न करना चाहिए।

इस प्रकार निश्चय करके वेश्या वसुमति से कहने लगी–ले देख ले ज्यादा लोग मेरी बात को ठीक कहते हैं या तेरी बात को। सत्य की अवहेलना

तू कर रही है, या मैं कर रही हू। तू सत्य की अवहेलना करके मेरे साथ चलने से इन्कार भले कर, लेकिन मैंने तेरे कहे हुए 20 लाख सोनेया देना स्वीकार कर लिया है, इसलिए अब तो तेरे को मेरे साथ चलना ही पडेगा। तू प्रसन्नता से चल, चाहे अप्रसन्नता से चल, चलना अवश्य होगा। अच्छाई तो इसी मे हे कि प्रसन्नता से मेरी पालकी मे बेठ जा, अन्यथा मैं किसी भी तरह तेरे को ले अवश्य जाऊगी।

वेश्या के कथन के उत्तर मे वसुमति बोली—माता, मैं इस तरह कच्चे विचारो की नही हू, जो बहुत आदमी समर्थन करते हैं, इसलिए किसी बुरी बात को मान लू। चाहे सारा ससार भी बुरे काम को अच्छा कहने लगे फिर भी मे उसको अच्छा नही मान सकती। मैं बीस लाख सोनेया देने वाले के साथ चलने को तैयार हू, लेकिन गृहकार्य करने के लिए। तुम्हारी बुरी कामना पूरी करके लोगो को दुराचार के गड्ढे मे गिराने ओर किसी के हाथ अपना सतीत्व बेचने के लिए जाना न तो मैंने स्वीकार किया हे, न स्वीकार कर सकती हू। इसके लिए कोई बीस लाख सोनैया के स्थान पर 40 लाख सोनेया भी दे तब भी मैं नहीं जा सकती। इसलिए आप, मुझे ले जाने का अपना विचार छोडिये। मैं आपके साथ नही जा सकती। मुझे दासी बनना ओर कष्ट उठाना तो स्वीकार हे, लेकिन तुम्हारे साथ जाकर, तुम जिन सुखो का प्रलोभन देती हो वे सुख स्वीकार नही हैं!

वसुमति का सूखा उत्तर सुनकर वेश्या ने सोचा कि यह ऐसे न चलेगी, इसको जबरदस्ती से ही ले जाना ठीक हे। यहा जितने लोग मौजूद हैं, उनमे से अधिकाश मेरे ही सहायक हैं। कुछ लोग इसका पक्ष समर्थन करने वाले भी हे, लेकिन वे थोडे से ही हैं ओर जब मे इसे जबरदस्ती ले जाने लगूगी, उस समय वे इसकी सहायता को आवे यह भी सम्भव नही है। इसलिए इसको जबरदस्ती पालकी मे बेठाकर ले जाना ही ठीक हे। एक बार इसको अपने घर तक ले जा पाऊ, फिर तो मै इससे अपनी बात किसी न किसी तरह मनवा ही लूगी।

वसुमति को जबरदस्ती ले जाने का निश्चय करके वेश्या [illegible] करती हुई कहने लगी—नही केसे चलेगी? नही चलना था तो [illegible] बाजार मे क्यो खडी हुई? जब बाजार मे खडी होकर [illegible] मागा दाम देना स्वीकार कर चुकी हू तब क्या नही [illegible] जब तक बने तेरे को प्रसन्न रखू, लेकिन तू तो और [illegible] देख मैं तेरे को अभी लिये जाती हू ओर देखती हू कि तेरा [illegible] आता हे?

यह कहकर वेश्या ने अपनी दासियो ओर अपने नोकरो से कहा कि इसको पकडकर पालकी मे डाल लो, तथा अपने यहा ले चलो। यह कहती हुई वह अपनी दासियो सहित वसुमति की ओर उसे पकडने के लिए बढी। वेश्या ओर उसकी दासियो को बल प्रयोग के लिए उतारू देखकर वसुमति उनसे बचने के लिए कुछ पीछे की ओर हट गई।

वसुमति ओर वेश्या की बातचीत को रथी भी सुन रहा था। अब तक उसने न तो कुछ वेश्या से ही कहा था न वसुमति से ही। वह चुपचाप सब बाते सुनता हुआ अपनी असमर्थता ओर स्त्री की मूर्खता पर दु ख कर रहा था लेकिन जब उसने वसुमति को पकडने के लिए वेश्या को वसुमति की ओर बढती तथा वसुमति को पीछे हटती देखा, तो उससे चुप न रहा गया। उसने वही से वेश्या को डाटते हुए कहा– सावधान! मेरे रहते यदि इस मेरी पुत्री को हाथ लगाया तो यह मेरी तलवार देख लेना। यह प्रसन्नता से तेरे साथ जाती हो तो में नही रोकता लेकिन यदि जबरदस्ती की तो इस तलवार से तेरे टुकडे–टुकडे कर दूगा। इस प्रकार कहकर रथी म्यान से तलवार निकालकर नगी तलवार हाथ मे लिये हुए, वसुमति ओर वेश्या के बीच मे आ खडा हुआ ओर वेश्या से कहने लगा क्या तूने इसको अरक्षित समझ लिया? क्या इसका कोई रक्षक नही हे? मुझे देखती है, या नहीं? मेरे रहते इसे हाथ लगाया तो कुशल नही।

रथी को इस प्रकार लाल–लाल आखे किये हुए क्रुद्ध और हाथ मे तलवार लिए हुए देखकर वेश्या डर गई। भय की मारी वह पीछे की ओर हट गई ओर चिल्लाने लगी कि–देखो देखो ये तलवार से मुझे मारते हैं। जब सोदा हुआ तब तो ये सुनते रहे ओर बीच मे जबरदस्ती आ कूदे हें। इनका, इस लडकी की कीमत लेने के सिवा इस बात मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने का अधिकार नही है। मेंने इस लडकी से सौदा तय कर लिया है, अब ये बोलने वाले कोन हें?

वेश्या ऐसी ही बाते चिल्लाने लगी। वेश्या के पक्ष–समर्थक लोग भी, वेश्या की हा मे हा मिलाकर उसकी ओर बोलने लगे। रथी को वसुमति की रक्षा के लिए तलवार निकालते हुए उद्यत देखकर वसुमति के पक्ष–समर्थक लोग भी चुप न रहे। वे भी रथी की बातो का समर्थन करने लगे। इस प्रकार वहा दो दल हो गये ओर दोनो मे वाग्युद्ध होने लगा।

उस समय वहा सात्विक राजस ओर तामस तीनो ही प्रकृति एकत्रित हो रही थी। वेश्या और उसके समर्थक जो केवल बुरी कामना से घिरे

हुए थे—तामस प्रकृति के थे। रथी ओर उसके समर्थक—जो वसुमति की रक्षा के लिए खडे थे तथा मारने—मरने को उद्यत थे—राजस प्रकृति के थे। वसुमति सात्विक प्रकृति की थी, जो चुपचाप खडी थी। उसके हृदय मे न तो स्वय पर अत्याचार करने के लिए उतारू हुई वेश्या तथा उसके समर्थका के प्रति द्वेष था, न उनसे बचाने के लिए तत्पर रथी ओर उसके समर्थको के प्रति राग था। वह तो यही चाहती थी, कि किसी भी तरह अशान्ति न हो तो अच्छा। वह सोचती थी, कि इस समय दोनो ही पक्ष के लोग तन गये हैं। मे दोनो म से किसे समझाऊ ? वेश्या मुझे ले जाने के लोभ मे पड रही हे और पिता मेरी रक्षा के लिए खडे हुए हैं। इस समय वेश्या को तो कुछ समझाना व्यर्थ होगा। वह, मेरी बात न मानेगी। मान भी केसे सकती हे? उसका मेरे पर विश्वास नहीं है। इसलिए, पिता को ही समझाना ठीक हे। पिता को मेरे पर विश्वास हे इस कारण ये मेरी बात मान लेगे।

इस प्रकार सोचकर वसुमति रथी से कहने लगी—पिताजी शात होइए क्रोध करके इस तरह मारने—मरने के लिए तेयार हो जाना ठीक नही है। माता ने आपको जो शिक्षा दी थी, इस समय आप शायद उसे भूल रहे हैं। माता शस्त्र चलाना या क्रुद्ध होना नहीं जानती थी, यह बात नही हे लेकिन उसने उस कठिन समय मे भी क्रोध नही किया न शस्त्र प्रयोग ही किया। आप माता की उस शिक्षा को याद करके शात होइये और तलवार को म्यान मे कीजिये।

रथी कहने लगा—पुत्री, तू क्या कह रही हे? क्या मैं इस समय भी कायरता दिखाऊ ? इस दुष्टा को तुझ पर जबरदस्ती करने दू। वसुमति ने उत्तर दिया—पिताजी, ऐसा ही समय तो उस शिक्षा के उपयोग का होता है। अनुकूल स्थिति मे तो सभी शात रहते हैं। विशेषता तो तभी हे जब प्रतिकूल परिस्थिति मे भी शात रहे, क्रोध न करे और धेर्य तथा क्षमा न त्यागे। माता की दी हुई शिक्षा को आपने कहा तक समझा हे इसकी परीक्षा का समय भी यही हे। इसलिए आप, अपनी इस तलवार को म्यान मे कर लीजिए। मेरे रग—रग मे माता की शिक्षा रमी हुई हे अत मेरी रक्षा के लिए तलवार की आवश्यकता नही हे।

रथी के हृदय मे वसुमति के प्रति पूर्ण श्रद्धा थी। [illegible] वसुमति के कथन की उपेक्षा न कर सका। उसने वसुमति [illegible] तलवार म्यान मे कर ली। यह देखकर वेश्या प्रसन्न [illegible] लगी—यह लडकी ऊपर के मन से ही [illegible]

है, वास्तव मे इसका मन मेरे यहा चलने का है। फिर भी यह पुरुष इसकी रक्षा के नाम पर बीच मे आ खडा हुआ है। देखो, इस लडकी ने, निकली तलवार को म्यान मे करा दी हे। यदि यह इस पुरुष द्वारा अपनी रक्षा चाहती होती तो ऐसा क्यो करती?

वेश्या के इस कथन का, उसके सहायक लोग भी अनुमोदन करने लगे, वे भी कहने लगे, कि–वास्तव मे यह लडकी तो इस नायिका के यहा ही जाना चाहती है लेकिन ये लोग, व्यर्थ ही बीच मे झगडा कर रहे हैं। वेश्या और उसके सहायको का यह कथन सुनकर वसुमति कहने लगी–हे प्रभो! मैंने तो शाति के लिए ऐसा किया परन्तु ये सब लोग, मेरे इस शान्ति के उपाय का भी उल्टा अर्थ लगा रहे हैं। ऐसी दशा मे, इन लोगो को समझाने की शक्ति मुझ मे कहा से हो सकती हे? इन तामस प्रकृति के लोगो को समझाने मे, मेरी सात्विक शक्ति इस समय असमर्थ हो रही है। इस समय, तामस–शक्ति का प्राबल्य है इसलिए मै असमर्थ हू।

यह कहकर वसुमति, उसी प्रकार निर्बल होकर चुपचाप खडी हो गई जिस तरह चीर हरण के समय द्रौपदी निर्बल हो गई थी। जो व्यक्ति अपना बल त्याग कर पूरी तरह परमात्मा की शरण हो जाता है, उसका अनिष्ट कोई किसी भी समय, और केसी भी स्थिति मे नही कर सकता। सुदर्शन श्रावक अपना बल त्याग कर पूरी तरह परमात्मा की शरण हो गया था, तो 1141 मनुष्यो का घातक अर्जुन माली उसका कुछ भी नही बिगाड सका। उसका मुद्गर ऊपर उठा ही रह गया यक्षावेष्ठित उसकी शक्ति भी, सुदर्शन पर मुद्गर गिराने मे समर्थ नही हुई। चीर–हरण के समय द्रौपदी भी अपना सब बल त्यागकर पूर्णत परमात्मा की शरण हो गई थी, इस कारण, दु शासन जेसा बलवान भी उसको वस्त्र–विहीन करने मे समर्थ नही हुआ। इस विषय मे अजैन भक्तो का बनाया हुआ एक भजन भी है, जो इस प्रकार है–

सुने री मैने निर्बल के बल राम।
पिछली साख भरू सन्तन की, अडे सवारे काम ।। देखे.
जब लग गज बल अपनौ राख्यो नेक सर्यो नही काम।
निर्बल हो बल राम पुकारे, आये आधे नाम।। देखे.
द्रुपद सुता निर्बल भई जा दिन, गहि लाए निज धाम।
दु शासन की भुजा थकित भई, वसन रूप भये श्याम।। देखे.
अप बल तप बल और बाहुबल, चौथो बल है दाम।
'सूर' श्याम सुन्दर ते सब बल, हारे को हरिनाम।। देखे.

इस भजन का अर्थ यही हे, कि जो व्यक्ति–भोतिक वल त्याग देता हे, उसकी सहायता नही लेता हे, उसको आध्यात्मिक वल प्राप्त होता हे ओर फिर उसकी रक्षा के लिए अनायास ही कोई न कोई शक्ति आ जाती हे।

वसुमति के लिए भी ऐसा ही हुआ। वह अपना सब वल त्यागकर ओर निर्वल बनकर खडी हो गई। वेश्या ने सोचा कि इसकी इच्छा मेरे यहा चलने की है, लेकिन यह, प्रकट मे प्रसन्नता से नही जाना चाहती। यदि यह तलवार धारी पुरुष, इसको बचाने के लिए बीच मे न आ जाता तव तो मैं इस लडकी की आन्तरिक इच्छा के अनुसार इस पकडकर पालकी म डाल ही लेती, ओर उस दशा मे यह कुछ भी न कहती परन्तु यह पुरुष बीच म आ खडा हुआ, इससे विघ्न हो गया। अब तो इस लडकी ने इस पुरुष को भी शात कर दिया हे, ओर स्वय भी चुप हे, अब इसकी सहायता करने वाला कोई नही हे। इसलिए इसे पकडकर पालकी मे डाल लेने, ओर घर ले जान के लिए यह अवसर उपयुक्त है।

इस प्रकार विचारकर वेश्या वसुमति को पकडने के लिए उसकी ओर चली। उसने वसुमति की ओर एक ही पाव रखा था कि इतने म ही उस पर बहुत से बन्दर टूट पडे, तथा उसके शरीर वस्त्र आदि नोचन लगे। वेश्या सहायता के लिए चिल्लाने लगी, लेकिन बन्दरो के उत्पात स ऐसा आतक छा गया था कि वहा उपस्थित लोग जिधर मार्ग मिला उधर ही भाग खडे हुए। वेश्या की सहायता के लिए न तो उसका कोई सहायक ही आया न उसके दास–दासी मे से ही कोई आया। वेश्या सहायता के लिए चिल्लाती ही रही ओर बन्दर उसकी दुर्दशा करते ही रहे। किसी बन्दर न वेश्या के नाक का आभूषण खीच लिया, जिससे उसकी नाक फट गई। किसी न कानो के आभूषण खीच लिये जिससे कान फट गये। किसी न गाल नोच लिए। किसी ने, मुह पर थप्पड मारे ओर किसी न उसके वढिया कपडो को नोच डाला। वेश्या बरावर रोती चिल्लाती रही परन्तु सब व्यर्थ। अन्त म वह [illegible] पर गिर पडी। फिर भी बन्दरो न उस नही छोडा।

वेश्या पर बन्दरो का आक्रमण ओर उसका करुण [illegible] सुनकर वसुमति से न रहा गया। वह वेश्या की सहायता के लिए [illegible] बन्दरो को डाटते हुए कहा–अरे बन्दरो इस माता को कष्ट क्यो [illegible] हटो। माता को छोड दो। वसुमति न इस प्रकार हाक मारकर [illegible] अवश्य लेकिन वसुमति की हाक पहुचने से पहले बन्दरो [illegible] कर दिया था। वसुमति की हाक पहुचते ही वेश्या को [illegible]

प्रकार भाग खडे हुए जिस प्रकार बन्दूक की आवाज सुनकर पक्षी भाग जाते हे। वसुमति वेश्या के पास गई। बन्दरो के नोचने आदि से वेश्या का सारा शरीर भग्न हो रहा था। उसके शृगार–वर्द्धक वस्त्राभूषण, टूटे–फूटे इधर उधर पडे थे ओर उसके सारे शरीर मे, महान् वेदना हो रही थी। वसुमति ने वेश्या का हाथ पकडकर उठाया, तथा उसके शरीर पर अपना हाथ फिराया। सती वसुमति का हाथ फिरते ही वेश्या के शरीर मे जो वेदना हो रही थी शात हो गई। वेश्या के शरीर पर हाथ फिराकर ओर उसकी वेदना शात करके वसुमति उससे कहने लगी–माता, आपको बहुत कष्ट हुआ। बन्दरो ने आपके सब अगो को बुरी तरह नोच डाला।

वसुमति वेश्या से इस प्रकार कह रही थी, ओर वेश्या कृतज्ञता की दृष्टि से वसुमति की ओर देखती हुई सोच रही थी, कि यह तो कोई साक्षात् देवी हे इसीसे मुझ अपकार करने वाली पर भी उपकार कर रही है। इस शक्ति ने पहले मुझे समझाया फिर भी में नही समझी, इसी का यह फल मिला हे।

वसुमति वेश्या को सात्वना दे रही थी ओर वेश्या इस प्रकार सोच रही थी इतने ही मे वेश्या के दासी–दास और सहायक लोग भी वहा आ गये। कोई वेश्या से समवेदना दिखाने लगा, कोई घावो पर पट्टी बाधने लगा, ओर कोई उसके बिखरे हुए आभूषण एकत्रित करने लगा। लेकिन वेश्या के हृदय पर वसुमति की सहृदयता का जो प्रभाव पडा था, उसके सामने इन ओर लोगो की सहानुभूति का कोई असर नही हुआ।

धनावा सेठ के घर

आत्मा को जानने वाले करुणालु व्यक्ति, किसी का भी अपकार नही करते। वे अपने अपकारी पर भी उपकार ही करते हैं। उनके हृदय मे किसी के प्रति द्वेष तो होता ही नही। चाहे कोई उसके प्राण लेने को भी तैयार हो जावे, और प्राण भी ले, तब भी वे उसका उपकार ही करते है उसका भला ही चाहते हैं। यह बात दूसरी है कि उनमे विशेष उपकार करने की शक्ति न हो, ओर इस कारण वे विशेष उपकार न कर सके, लेकिन जितनी भी शक्ति होगी, उसके अनुसार सदा उपकार के लिए ही तत्पर रहेगे। कदाचित् किसी का उपकार न भी कर सके, तब भी शक्ति होते हुए भी किसी का अपकार तो कदापि नही करेगे, यदि कर सकेंगे तो उपकार ही करगे। अर्जुन माली सुदर्शन श्रावक पर प्राणघातक आक्रमण करने के लिए तेयार हुआ था। यदि उसकी शक्ति चलती तो वह सुदर्शन को मार ही डालता लेकिन उसकी तामसी शक्ति सुदर्शन की आध्यात्मिक शक्ति के सामने नहीं चली। वह परास्त शक्तिहीन होकर गिर गया। उसके शरीर से निकल कर यक्ष भाग गया। वह शारीरिक शक्ति मे, सुदर्शन से कमजोर हो गया। यदि सुदर्शन चाहता तो बदला लेने की इच्छा से अर्जुन माली को दण्ड दे सकता था [illegible] सकता था लेकिन सुदर्शन के मन मे एसी भावना तक नहीं हुई। [illegible] अर्जुन को भगवान की सेवा मे ले गया और उसे अपना पूज्य [illegible] मोक्ष मार्ग का पथिक बना दिया। मुनि श्री गजसुकुमार [illegible] ने आग रख दी थी। गजसुकुमार मुनि मे न तो शारीरिक [illegible] न लब्धि की शक्ति की ही। यदि वे चाहते तो [illegible] अथवा एक हुकार मात्र कर देते तब भी [illegible] सोमल को अपना उपकारी माना तब उसका [illegible] रही। भगवान महावीर का चण्डकौशिक [illegible]

चाहते तो, उसे अपनी दृष्टि मात्र से भस्म कर सकते थे परन्तु भगवान ने उसे बोध देकर उसको कल्याण मार्ग बताया। इसी प्रकार के सेकडो–हजारो उदाहरण ऐसे है जिससे यह सिद्ध होता हे कि आध्यात्मिक शक्ति को जानने वाले करुणालु व्यक्ति, किसी भी दशा मे स्वय के साथ शत्रुता रखने वाले का भी अपकार नही करते किन्तु उसका भी उपकार ही करते हैं।

वसुमति के प्रति वेश्या ने, किसी प्रकार का सद्व्यवहार नही किया था हा दुर्व्यवहार अवश्य किया था। उसने वसुमति को कटुवचन भी कहे थे और उसे बलात पकडे ले जाने के लिए भी तेयार हुई थी। इस प्रकार वह वसुमति का अपकार करने वाली थी, फिर भी बन्दरो से उसकी रक्षा करने के समय वसुमति के हृदय मे उसके अपराधो का किचित् भी ध्यान नही हुआ। यदि वसुमति चाहती तो पडी हुई वेश्या पर ओर प्रहार कर सकती थी, अथवा बन्दरो को न भगा कर वेश्या की दुर्दशा होने दे सकती थी, लेकिन यदि वह ऐसा करती तो फिर न तो उसकी गणना सतियो मे ही होती न यही कहा जा सकता कि उसने आत्मा को जाना था ओर उसमे दया थी। लेकिन वह जानती थी कि सभी प्राणियो मे मेरी तरह की आत्मा है, दु खी मात्र पर दया करना मेरा साधारण कर्त्तव्य है और मेरी हानि मेरा उपकार या अपकार करने की शक्ति किसी दूसरे मे है ही नहीं में ही स्वय का उपकार भी कर सकती हू, और अपकार भी। इसलिए मुझे किसी के प्रति द्वेष न रखना चाहिए। इस प्रकार के विचारो के कारण ही वसुमति उस कष्ट पाती हुई वेश्या के पास दौडी हुई गई उसे नोचने वाले बन्दरो को उसने भगा दिया और वेश्या को उठाकर उसके शरीर पर हाथ फिरा उसे वेदना रहित कर दिया।

यह बात तो लगभग सभी के अनुभव मे है कि अपने साथ बुराई करने वाले के साथ भलाई करने पर वह बुराई करने वाला अपने और उस भलाई करने वाले के कार्य की तुलना करके स्वय ही ऐसा लज्जित होता है कि फिर उसका सिर ऊपर नहीं उठता। तलवार से दबाया हुआ सिर तो समय पर उठ भी जाता हे लेकिन उपकार से दबाया हुआ सिर कभी भी ऊपर नहीं उठता। यह नियम ही हे। इसी नियम के अनुसार वसुमति द्वारा स्वय की रक्षा होने से वेश्या भी लज्जित हुई। उसकी आखे वसुमति की ओर नही उठती थी। वह सोचती थी कि मेंने तो इसके साथ केसा व्यवहार किया था लेकिन इसने मेरे पर कैसा उपकार किया? यदि यह बन्दरो को न भगाती तो बन्दर मेरी ओर न मालूम केसी दुर्दशा करते तथा मुझे जीवित भी रहने देते या न रहने देते। इसी प्रकार बन्दरो के नोचने से मेरे शरीर मे केसी भयकर वेदना

हो रही थी परन्तु इसका हाथ फिरने से मेरी वह वेदना भी मिट गई। इस तरह यह एक तो मुझ पर उपकार करने वाली हे दूसरे जिसके हाथ मे ऐसी शक्ति हे कि फिराने से ही वेदना मिट गई, वह अवश्य ही कोई उच्चात्मा हे। इसलिए बुरी भावना त्यागकर इसने पहले मुझे जो शिक्षा दी हे उसके अनुसार कार्य करने मे ही मेरा कल्याण हे। मेने पहले इसकी शिक्षा नही मानी लेकिन अ[illegible] तो वन्दरो ने मुझे इस योग्य रहने ही नही दिया हे कि मे वेश्यावृत्ति कर सकू। मे अपने जिन अगोपाग, आकृति ओर रूप आदि पर गर्व करती थी तथा मेर भक्त लोग जिनकी प्रशसा करके मुझ पर मुग्ध होते थे, उन सबको बन्दरो ने विकृत कर डाला है। इसलिए अब अनायास ही मुझसे वेश्यावृत्ति का पाप छूट गया।

इस प्रकार विचारती हुई वेश्या ने हाथ जोडकर वसुमति से कहा हे सती! मेने आपका कहना नही माना, आपकी शिक्षा का उपहास किया ओर आप पर अत्याचार करने के लिए उतारू हुई, उसीका दण्ड बन्दरा ने मुझे दिया है। ऐसा होते हुए भी आपने मुझ पर जो दया की उसके लिए मैं आपकी सदा ऋणी रहूगी ओर जिस सदाचार का पालन करने के लिए आपने कहा था अब में उसका पालन करूगी। यद्यपि जब में सदाचार का पालन करू तब आपको मेरे यहा चलने ओर रहने मे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं हो सकती फिर भी में सोचती हू कि सुधार हुआ हे तो मेरा हुआ हे, मेरे यहा रहने वाले दूसरे लोग तथा मेरे यहा का वातावरण तो वेसा ही हे। मेरे यहा रहने वाले लोगों को सुधारने मे ओर मेरे यहा का वातावरण बदलने मे कुछ विलम्ब होना स्वाभाविक हे। इसलिए अब मे स्वय ही आपको मेरे यहा न ले जाना अच्छा समझती हू।

यह कहकर वेश्या वसुमति के प्रति कृतज्ञता प्रगट करती हुई अप[illegible] घर चली गई। वेश्या के पश्चात्ताप से उसके सहायक लोग भी [illegible] ओर अपनी तरफ चले गये। वसुमति के बिकने, वेश्या के [illegible] और बन्दरों के कूदने आदि घटना की खबर सारे नगर मे फैल गई। कोशाम्बी में [illegible] धनावा नाम का सेठ रहता था। वह धनिक भी था और धर्मात्मा भी था लेकिन था नि सन्तान। वसुमति से सबधित समाचार सुनकर [illegible] किया कि जिसने अपने अपकारी के साथ भी उपकार किया [illegible] हाथ फिरते ही वेश्या के शरीर की वेदना मिट गई वह [illegible] हे। ऐसी सती यदि मेरे यहा हो तो मुझे [illegible] उसके बदले मे दिये जाने वाला धन भी [illegible]

इस प्रकार विचारकर धनावा सेठ उस स्थान [illegible] बिकने के लिए खडी हुई थी। उस स्थान पर [illegible]

उसने वसुमति की प्रशसा सुनी। वेश्या की घटना के साथ वसुमति की प्रशसा सुनकर ओर वसुमति को देखकर, धनावा सेठ ने निश्चय किया कि इस कन्या को अवश्य ही अपने घर ले जाना चाहिए। इसकी आकृत्ति वताती हे कि यह गुणवती हे ओर इसके द्वारा मेरे यहा धर्म की वृद्धि होगी।

वेश्या के जाने के पश्चात् रथी, हाथ जोडकर वसुमति से कहने लगा कि हे पुत्री! तेरी माता ने स्वय के प्राण देकर मेरा हृदय अवश्य बदल दिया था लेकिन वह परिवर्तन स्थाई न था। कभी–कभी फिर मेरा हृदय पहले की तरह का हो जाता था ओर मुझे क्रोध आ जाता था। जैसे तुझे घर से निकालने की बात कहने के कारण मेरी स्त्री पर ओर अभी इस वेश्या पर क्रोध आ गया था। लेकिन तेरे उपदेश ने मेरे मे से इस दुर्गुण को भी सर्वथा निकाल दिया हे। मैं अब तक तेरे को केवल पुत्री ही समझता था परन्तु आज तेरा उपदेश सुनकर ओर वेश्या का सुधार देखकर मेरे को यह मालूम हुआ कि तू एक देवी हे। देवी मे जो गुण होने चाहिए, वे सब तेरे मे विद्यमान है। तू ही दूसरे की बुरी वृत्ति मिटाकर उसे सुमार्ग पर ला देती हे। मै नही चाहता कि तुझ जेसी सती मेरे घर से जावे। मेरी [illegible] को तरे गुणो का पता नही हे इसीसे वह तुझे घर से निकालना चाहती हे लेकिन जब तूने वेश्या को भी सुधार दिया तब क्या उसको न सुधार सकेगी? तेरी शक्ति और वेश्या का सुधार सुनकर वह भी अवश्य ही सुधर जावेगी। इसलिए में तेरे से यह प्रार्थना करता हू कि तू बिके मत किन्तु घर को वापस लोट चल। मुझे विश्वास है कि वेश्या का सुधार सुनकर मेरी स्त्री भी अवश्य सुधर जावेगी।

रथी यह कहते हुए गदगद् हो गया, उसका गला भर आया। तब वसुमति उसको धैर्य देती हुई कहने लगी–पिताजी, आप साहस रखिये, इस प्रकार कायरता मत लाइये। आप मुझे बिकने दीजिये। न बिकने पर और घर वापस जाने पर माता के हृदय का सन्देह ओर पुष्ट होगा जिससे निष्कारण ही मुझको तथा आपको कलक लगेगा। इसके सिवा लौट जाने से माता का सुधार भी न होगा लेकिन जब मे बिक जाऊगी ओर माता के पास बीस लाख सोनेया पहुच जावेगी तब माता का हृदय भी बदल जावेगा, उसका सुधार हो जावेगा मुझको तथा आपको किसी प्रकार का कलक भी न लगेगा, ओर इस प्रकार धर्म की भी बडाई होगी। एक बात ओर हे। में यहा बिकने आई इतने ही मे वेश्या माता का सुधार हुआ हे तो जब में बिक जाऊगी तब न मालूम कितने लोगो का सुधार होगा? में न बिक कर तो शायद एक माता का ही सुधार कर सकूगी ओर माता का सुधार होने मे भी सन्देह हे परन्तु बिक जाने

पर माता का सुधार तो अवश्य ही होगा साथ ही न मालूम कितने लोगो का सुधार होगा। इसलिए आप मुझे बिकने से न रोकिये।

वसुमति इस प्रकार रथी को समझा रही थी इतने ही मे धनावा सेठ ने उसके पास जाकर पूछा– पुत्री, तेरे बदले मे कितना द्रव्य देना होगा? मैं तेरे को अपने यहा ले जाना चाहता हू। मेने सुना हे कि तेरा मूल्य बीस लाख सोनेया हे। यदि यह बात हो तो मैं बीस लाख सोनेया देने के लिए सहर्ष तेयार हू। मेरी समझ से बीस लाख सोनैया तो तेरे चरण के एक अगूठे पर ही न्यौछावर किये जा सकते हे, तेरा मूल्य चुकाने मे तो कोई समर्थ ही नहीं है।

धनावा सेठ के मुख से 'पुत्री' सुनकर, वसुमति को प्रसन्नता हुई। वह सोचने लगी कि यह कोई धर्मात्मा व्यक्ति जान पडते हैं फिर भी इनसे इनका आचरण ओर मुझे खरीदने का उद्देश्य जान लेना उचित हे। क्योकि बहुत से लोग ऊपर से तो धार्मिकता दिखाते हैं परन्तु हृदय मे कुछ दूसरी ही भावना रखते हैं। इनका आचरण ओर मुझे खरीदने का उद्देश्य पूछ लेने पर इनकी भावना का भी बहुत कुछ पता लग जावेगा ओर यदि अभी पता न भी लगा तब भी यह बात स्पष्ट हो जाने पर इनके यहा जाकर मैं किसी अनुचित काम को करने से इन्कार भी कर दूगी तो मुझे विश्वासघात का पाप तो न लगेगा।

इस प्रकार विचारकर वसुमति ने धनावा सेठ से पूछा–पिताजी आप मेरे बदले बीस लाख सोनेया खर्च करके मुझे किस उद्देश्य से खरीदना चाहते हैं? आपके यहा मुझे कोन–कोनसे काम करने होंगे? आपके घर का आचार क्या है? मैं इन सब बातो को जानना चाहती हू जिससे आपके यहा जाने न जाने के विषय मे विचार कर सकू तथा मुझे खरीद कर आपको भी किसी प्रकार का धोखा न हो ओर आप यह भी न कह सकें कि मैं इतना द्रव्य खर्च कर तुझे लाया हू इसलिए यह अनुचित काम भी तुझे करना होगा।

वसुमति का यह प्रश्न सुनकर धनावा सेठ प्रसन्न हुआ। वह [illegible] मन मे कहने लगा कि यह निश्चय ही सती हे। इसीसे इसने इस तरह के [illegible] किये हैं ओर मेरे घर का आचार जानना चाहती है। इसने अन्य [illegible] दासियो की तरह यह नही पूछा कि मुझे क्या खाने को [illegible] रखोगे ओर कितनी देर काम लोगे। इसने जो प्रश्न किये [illegible] हे, इसलिए निश्चय ही यह कोई भले घर की कुलवती [illegible]

इस प्रकार विचारते हुए धनावा सेठ ने वसुमति से कहा [illegible] अच्छा प्रश्न किया हे। तेरे द्वारा किये गये प्रश्नो को सुनकर [illegible] हुआ। वास्तव मे तुझ जेसी सती के लिए ऐसी प्रकार [illegible]

आजकल पुरुषो का जो पतन हे उसे देखते हुए प्रत्येक बात स्पष्ट कर लेना उचित हे।

हे पुत्री! मेरे घर का आचार क्या हे मे तुझे किस उद्देश्य से ले रहा हू और मेरे यहा तेरे को क्या करना होगा यह सुन। आत्मा का कल्याण करने वाले धर्म का पालन करना, यही मेरे घर का आचार हे। तुझे मेरे यहा धर्म सबधी कार्य करने होगे और धर्म कार्य मे सहायता लेने के उद्देश्य से ही मे तेरे को खरीद रहा हू। मे बारह व्रतधारी श्रावक हू। मेरे घर आया हुआ कोई भी अतिथि विमुख न जावे यह मेरा नियम हे। मेरे यहा जो भी आवे उसका उसके अनुरूप स्वागत–सत्कार होना चाहिए। इस नियम के पालन मे मुझे सहायता देने वाला कोई नही हे। मेरे कोई सन्तान तो हे ही नही। केवल पत्नी हे। लेकिन उससे पूरी तरह सहायता नही मिलती। तेरे द्वारा मुझे इस कार्य मे पूरी तरह सहायता मिले इसी उद्देश्य से मे तुझे ले जाना चाहता हू। तू विश्वास रख मेरे यहा तेरे को यही काम करना होगा। वेसे तो गृहकार्य मे अन्य कार्य भी रहते ही हैं लेकिन तेरा प्रधान कार्य यही होगा। हा यह में अवश्य विश्वास दिलाता हू कि मेरे यहा तेरे सत्य शील रत्न की पूर्णत रक्षा होगी उसमे किसी भी प्रकार की बाधा न होगी।

हे पुत्री मे परलोक से जो पुण्य कमाई लेकर आया हू, यहा उसका दुरुपयोग करके उसे नष्ट नही करना चाहता किन्तु उसमे वृद्धि करना चाहता हू। स्वय का पतन नही करना चाहता, उत्थान करना चाहता हू। इसीलिए में पाप से बचकर धर्म की आराधना करने मे प्रयत्नशील रहता हू। मुझको यह आशा है कि तेरे द्वारा मुझे इस कार्य मे सहायता मिलेगी। इसीलिए में तुझ से प्रार्थना करता हू कि तू मेरे यहा चल कोई दूसरा विचार मत कर।

धनावा सेठ का यह कथन सुनकर वसुमति प्रसन्न हुई। वह रथी से कहने लगी–पिताजी यह धैर्य रखने का ही सुफल हे जो मुझे इन पिता की सेवा का सुयोग प्राप्त हो रहा ह। ऐसे धार्मिक पिता के यहा का दासीपना भी भाग्य से ही मिलता है। में इन पिता के यहा अवश्य जाऊगी। आप मेरे साथ चलिए और इन पिता के यहा से बीस लाख सोनैया लेकर माता को दीजिए जिससे वे सन्तुष्ट हो।

वसुमति का यह कथन सुनकर रथी रो पडा। वह कहने लगा–पुत्री क्या में तेरे को बेच दू। एक तो यह है जो तेरे लिए बीस लाख सोनैया खर्च करके तुझे ले जा रहे हें तथा एक में हू, जो तुझे अपने घर से भी निकालू तथा बीस लाख सोनेया कीमत लू। मेरे से तो यह नीच कृत्य नहीं हो सकता।

रथी को दुःखी और विलाप करते देखकर वसुमति उसे धैर्य देने लगी। वह कहने लगी–पिताजी क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं है? मैने अभी ही आपको समझाया था और अभी ही आप फिर दुःख करने लगे। आप मेरे कथन पर कुछ तो विश्वास रखिये। मेरे को आप बेच नहीं रहे है किन्तु मैं स्वयं ही बिक रही हू। इसलिए आप मेरे साथ चलकर मुझे पहुचा तो आइये।

रथी से यह कहकर, वसुमति ने धनावा सेठ से कहा–पिताजी मुझे आपके यहा चलने मे प्रसन्नता है। चलिये, मैं आपके साथ चलती हू। यह कहकर वसुमति रथी से 'चलिये पिताजी' कहती हुई धनावा सेठ के पीछे–पीछे चल दी। वसुमति के वचनो के प्रभाव से बधा हुआ रथी भी वसुमति के पीछे–पीछे चला। उस समय उसके हृदय को ऐसा दुःख हो रहा था जिसका वर्णन नही किया जा सकता। उसका पैर बडी कठिनाई से आगे की ओर पडता था, इस कारण वसुमति और धनावा सेठ को भी जगह–जगह रुक जाना पडता था।

वसुमति और रथी को लिये हुए धनावा सेठ अपने घर पहुचा। उसने रथी तथा वसुमति को आदर पूर्वक बैठाया। फिर अपनी तिजोरी खोलकर उसने रथी से कहा, कि आप बीस लाख सोनैया लीजिए। रथी ने उत्तर दिया कि मै इस पुत्री की आज्ञा मानकर इसे पहुचाने के लिए यहा तक आया हू। इसे बेचने और सोनैये लेने के लिए नही आया हू। यह पुत्री मुझ दुर्भागी के यहा नही रहना चाहती है और आपके यहा रहना चाहती है तो मजे से रहे मुझे इसमे कोई आपत्ति नही है लेकिन मै इसके बदले मे सोनैया नहीं [illegible] सकता।

रथी का उत्तर सुनकर वसुमति ने विचार किया कि ये पिता [illegible] समझेगे और जब तक माता के पास बीस लाख सोनैया न पहुचेगे [illegible] माता को सन्तोष न होगा। इसलिए किसी उपाय से इन्हे समझाना चाहिए। इस प्रकार विचार कर वसुमति रथी से कहने लगी–पिताजी आज से [illegible] और ये पिता, आपस मे भाई–भाई हैं। आप दोनो ही मेरे पिता है और [illegible] दोनो के बीच मे मैं एक कन्या हू। अब से यह घर और वह घर एक [illegible] इसलिए आप ये पिताजी बीस लाख सोनैया देते हैं वे सोनैया [illegible] को दीजिये। ये बीस लाख सोनैया मेरे स्वरूप नहीं दे रहे हैं न आप [illegible] स्वरूप ले रहे है। पुत्री का बेचने और खरीदने का पाप आप [illegible] कर सकते हैं। ये पिता जी सोनैया दे रहे हैं वे तो मेरी माता को [illegible] देने के लिए दे रहे हैं। क्या आप इन पिता द्वारा दिया गया [illegible]

माता को देने का कष्ट भी नही कर सकते। जो उपहार माता को देने के लिये ये पिता दे रहे हे उसको ले जाने से आप केसे इन्कार कर सकते ह? माता के अधिकार की वस्तु को आप अस्वीकार नही कर सकते।

रथी से इस प्रकार कहकर वसुमति ने धनावा सेठ से कहा पिताजी बीस लाख सोनेया ये अकेले केसे ले जा सकते हें। इतना वजन इनसे केसे उठ सकता हे? आप इन सोनेया का मेरी माता के पास पहुचाने का प्रवन्ध कर दीजिये। वसुमति का कथन सुनकर धनावा सेठ ने अपने यहा के नोकरा को बुलाकर उन्हे वीस लाख सोनेया दिये ओर उनसे कहा, इन मेरे भाई के साथ जाकर इनके यहा सोनेया पहुचा आओ। इस प्रकार सोनेया पहुचाने का प्रबन्ध करके धनावा सेठ ने रथी से कहा कि भाई, आज से में ओर आप इस पुत्री के नाते भाई हुए हें। आप किसी भी प्रकार का दूसरा विचार मत करो। यह घर भी आप ही का हे। इस प्रकार वत्सलता भरी वाते कहकर सेठ ने रथी को अपने गले से लगाया ओर उसे जेसे–तेसे समझा–वुझाकर विदा किया।

धनावा सेठ की स्त्री का नाम मूला था। मूला का स्वभाव धनावा सेठ के स्वभाव से बिल्कुल ही भिन्न था। उसका स्वभाव ठीक वेसा ही था जेसा प्राय आजकल की सेठानियो का हुआ करता हे। उसे धनावा सेठ जेसे धनिक ओर प्रतिष्ठा प्राप्त पुरुष की पत्नी बनने का सोभाग्य अवश्य प्राप्त हुआ था परन्तु वह इस पद की अधिकारिणी नही थी। क्योकि इसके माता–पिता का घर ऐसा धन–सम्पत्ति–पूर्ण न था। किसी जन्म–दरिद्री को जब सम्पत्ति मिल जाती हे तब उसे अभिमान हो ही जाता हे। इसीके अनुसार मूला मे भी मिथ्याभिमान भरा हुआ था। वह अपने सामने किसी को भी कुछ समझती ही न थी। स्वय को ससार के सब लोगो से अधिक बुद्धिमती तथा अधिकार–सम्पन्न मानती थी। इस कारण वह किसी को भी कटुवचन कहने मे नही हिचकिचाती थी। न कभी अपनी भूल ही स्वीकार करती थी। वह स्वय उतना काम नहीं करती थी जितना नौकर–चाकर आदि को डाटा–डपटा करती थी। स्वय के नोकरो के साथ उसका व्यवहार अच्छा नहीं रहता था। उनसे कार्य तो कठोरता से लेती थी लेकिन उनको सुविधा पहुचाने तथा उनका पालन–पोषण करने मे सदा उपेक्षा करती थी। तनिक भी सह्रदयता नही बताती थी। अपने यहा आये हुए लोगा का सत्कार करके उन्हे सन्तुष्ट करने के बदले वह उनका और अपमान कर देती थी। वह सेठ की धर्मभावना के अनुसार काम नही करती थी। हा अपनी कुटिलता के कारण प्रकट मे सेठ के साथ पतिव्रता की

तरह का व्यवहार करने का ढोग अवश्य रच देती थी। तात्पर्य यह कि मूला का स्वभाव सेठ के स्वभाव से बिल्कुल भिन्न था। सेठ जितना नम्र सरल धार्मिक, और दयालु व्यक्ति था, मूला उतनी ही कठोर, कपटिन ढागिन ओर निर्दयी थी। उसके द्वारा सेठ को धर्म कार्य मे किचित भी सहायता नही मिलती थी। हा, सेठ के धर्म कार्य मे वह बाधक अवश्य बन जाती थी। अपनी कपट–क्रिया के बल पर, कभी–कभी वह सेठ को भी ऐसे गलत रास्ते पर ले जाती थी कि जिसके कारण उस धार्मिक सेठ के हाथ से भी धर्म–विरुद्ध कार्य हो जाता था।

वसुमति को लेकर सेठ अपनी स्त्री मूला के पास गया। वसुमति मूला को प्रणाम करके एक ओर चुपचाप खडी हो गई। मूला स सेठ कहने लगा–प्रिये, पुरुष को जो लक्ष्मी प्राप्त होती है, वह स्त्री के भाग्य से ही। अभागे–स्त्री के पति को लक्ष्मी प्राप्त नही होती। तुम भाग्यवती हो इसलिए आज मुझे यह पुत्री रूपा लक्ष्मी प्राप्त हुई है। अपने सन्तान नही हे। कदाचित् सन्तान होती भी तब भी इस पुत्री की तरह की सन्तान अपने यहा हो ऐसा पुण्य अपना नहीं है लेकिन सद्भाग्य से अपने को यह कन्या प्राप्त हुई है। इस कन्या मे क्या गुण हें ओर केसी–केसी विशेषता हें यह कहने की आवश्यकता नही हे। यह बात कुछ ही समय मे आप ही ज्ञात हो जावेगी। इसलिए अधिक कुछ न कहकर यही कहता हू कि इसे अपनी पुत्री मानना ओर इससे पूर्ण धर्म–सबध जोडना। मेरा विश्वास हे कि ऐसा करन स तुम्हारा भी सुधार होगा ओर इसकी सम्मति से कार्य करन पर घर भी आदर्श–घर हो जावेगा। तथा धर्म की भी वृद्धि होगी।

वसुमति को देखकर सेठ की बात सुनती हुई मूला सोच रही थी कि यह कन्या तो बहुत ही सुन्दरी हे। इसके सामने तो मैं तुच्छ जान पडती हूं। इसने सुन्दरता म तो मुझे परास्त कर ही दिया साथ ही पति इसके गुणो की प्रशसा करते हुए इसकी सम्मत्यानुसार कार्य करन को कहते हैं और कहते हैं कि इसके कारण तुम्हारा भी सुधार हो जावगा। इस प्रकार यह [illegible] मेरे सिर पर आई हे। इसके सोन्दर्य ओर इसकी अवस्था पर कौन [illegible] मुग्ध न होगा? मेरे पति ब्रह्मचारी तो ह नही ओर जब ब्रह्मचारी [illegible] सोन्दर्य देखकर ब्रह्मचर्य स पतित हो जाते हैं तब मेरे पति [illegible] इसम क्या आश्चर्य ह? हो सकता हे कि पति इसको [illegible] लाये हो तथा इस गृह की स्वामिनी बनाना चाहते [illegible] इसको पुत्री कहते ह इसलिए अभी किसी प्रकार [illegible]

नही। कुछ समय बाद जब मेरे सन्देह की पुष्टि का कोई कारण मिल जावे तब इस विषय मे विचार करना और कोई उपाय करना ठीक होगा। अभी तो पति जैसा कहते हैं वैसा मान लेना ही अच्छा हे। पति इसको लक्ष्मी कहते हें इसलिए कुछ दाल मे काला होना ही चाहिए। लेकिन इस प्रकार की बात कितने दिनो तक छिपी रह सकती है। कभी न कभी, किसी रूप मे तो प्रगट होगी ही। उसी समय कुछ कहना ठीक होगा, अभी किसी प्रकार का सन्देह प्रगट करना ठीक नही है।

इस प्रकार विचारती हुई मूला ने सेठ की बात समाप्त होने पर कहा कि प्रसन्नता की बात हे जो आप इस पुत्री को लाये है। अपने यहा यदि ऐसी कन्या होती भी तब भी उसका बहुत पालन–पोषण करना होता ओर बडे परिश्रम से वह बडी होती। लेकिन यह तो बडी आई है इसलिए इसका पालन करने मे किसी प्रकार का श्रम भी न करना होगा। मैं आपकी आज्ञानुसार ही सब कार्य करूगी।

अपने मन के भावो को दबाकर मूला ने ऊपर से सेठ की बात स्वीकार कर ली। सेठानी का कथन सुनकर सेठ निश्चिन्त हो वहा से चला गया। मूला ने अपने हृदय के भावो को प्रकट न होने देने के लिए, वसुमति का सत्कार किया तथा उसके भोजन शयन की व्यवस्था कर दी।

वसुमति सेठ के घर मे रहने लगी। वह सेठ के बताये हुए अतिथि–सत्कार आदि धर्मकृत्य करने के साथ ही गृहकार्य भी करती। जिस कुशलता से वह रथी के यहा सब कार्य करती थी उसी कुशलता से सेठ के घर काम भी किया करती थी। उसकी कार्य–कुशलता ने सेठ और घर के नोकर–चाकर आदि सबको मुग्ध कर लिया। उसके कार्य का प्रभाव सेठानी पर भी अवश्य पडा लेकिन दूसरे ही रूप मे। वसुमति की कार्य–कुशलता, उसके सन्देह को बढाती जाती थी। वह वसुमति के श्रम और कौशल्य का, कुछ दूसरा ही उद्देश्य समझती थी।

एक दिन वसुमति से सेठ ने पूछा–पुत्री, तेरा नाम क्या है? वसुमति ने उत्तर दिया–पिताजी मे आपकी पुत्री हू। पुत्री का नाम वही हो सकता है जो माता–पिता रखे। इसलिए आप जो मेरा नाम रखे, वही मेरा नाम है। वसुमति का उत्तर सुनकर सेठ ने उससे उसका नाम जानने का आग्रह नही किया किन्तु उससे कहा कि हे पुत्री में, उस दिन वेश्या पर बन्दरो के कूदने, उसकी दुर्दशा करने और तेरे द्वारा उसकी रक्षा की जाने आदि का वृत्तान्त सुन चुका हू। इस वृत्तान्त को सुनकर मेंने यह निश्चय किया कि जिस प्रकार

चन्दन अपने काटने वाले अपकारी को भी सुगन्ध ओर शीतलता देता हे उसी तरह तू भी अपने शत्रु को भी सुख देने वाली हे। इसलिए आज से मे तेरा नाम 'चन्दनबाला' रखता हू।

सेठ ने अपनी स्त्री आदि सब से कह दिया कि इस पुत्री को आज से 'चन्दनबाला' नाम से सबोधन करना। सेठ की इस बात को सभी ने स्वीकार किया। लोग वसुमति को चन्दनबाला नाम से पुकारने लगे। वसुमति का 'वसुमति' नाम किसी को भी मालूम नहीं था। रथी के यहा भी वह 'पुत्री' कही जाती थी और सेठ के यहा भी सब लोग उसे पुत्री ही कहते थे। लेकिन जबसे सेठ ने उसका नाम चन्दनबाला रखा तब से वह 'चन्दनबाला' कही जाने लगी। उसका यह नाम ऐसा प्रसिद्ध हुआ कि आज भी उसका 'चन्दनबाला' नाम ही लिया जाता है। उसका 'चन्दनबाला' नाम उसके जीवन भर तो रहा ही लेकिन उसने सिद्ध पद प्राप्त कर लिया तब भी यह नाम तो मोजूद ही हे।

भोंयरे में

पात्र प्रत्येक वस्तु को अपने अनुकूल रूप मे ही गहण करता हे। वस्तु मे चाहे जेसा गुण हो चाहे जेसी विशेषता हो, लेकिन पात्र उसे अपने स्वभाव के रूप मे ही गहण करता है। उदाहरण के लिए लोकिक उक्ति के अनुसार स्वाति नक्षत्र के जल बिन्दु को देखिये। स्वाति का जल बिन्दु जब सीप के मुह मे पडता हे तब मोती बन जाता है। वही स्वाति का जल बिन्दु, साप के मुह मे पड कर विष बन जाता है कमल पत्र पर गिर कर मोती के समान दिखता है, ओर गरम तवे पर पड कर नष्ट हो जाता है। जल बिन्दु तो वही हे फिर इस अन्तर का कारण क्या है? यही कि पात्रो के रूप और स्वभाव मे भिन्नता है। सीप मे मोती बनाने का स्वभाव है इस कारण उसमे पडा हुआ बिन्दु मोती बन जाता हे। साप मे विष बनाने का स्वभाव है इसलिए उसमे पडा हुआ बूद विष बन जाता हे। कमल पत्र मे शोभा वृद्धि का स्वभाव है, इसलिए उस पर गिरा हुआ जल बिन्दु मुक्ताफल की शोभा पाता हे और गरम तवे मे भस्म करने का स्वभाव हे इसलिए उस पर पडा हुआ बिन्दु भस्म हो जाता हे। तात्पर्य यह है कि वस्तु मे चाहे जैसी विशेषता हो, चाहे जैसा गुण हो लेकिन पान उसको अपने रूप ओर स्वभाव के अनुसार ही ग्रहण करता हे। यदि पात्र अच्छा है, तो वह बुरी वस्तु को भी अच्छे रूप मे ही गहण करता हे ओर यदि पात्र बुरा हे तो वह अच्छी वस्तु को भी बुरे ही रूप मे ग्रहण करता हे।

वसुमति जिसका नाम धनावा सेठ ने 'चन्दनबाला' रखा था–चन्दन के समान अपने अपकारी को भी शान्ति देने वाली थी। जो रथी उसकी माता का हत्या का प्रधान कारण था जिसने उसकी माता को कटुवचन कहे थे ओर जो उसकी माता का सतीत्व हरण करने के लिए तैयार हो गया था इसी उद्देश्य से उन्हे जगल मे भी ले गया था चन्दनबाला ने उस रथी के साथ भी

किसी प्रकार का वैर-भाव नहीं रखा, किन्तु उसको भी अपना पिता माना ओर प्रत्येक दृष्टि से उसका उपकार ही किया। रथी की स्त्री ने भी चन्दनबाला के साथ दुर्व्यवहार किया था लेकिन चन्दनबाला ने उसके साथ भी सद्व्यवहार ही किया। जिस समय रथी अपनी स्त्री को घर से निकालने के लिए तेयार हुआ था, उस समय चन्दनबाला ने अपने उपदेश से रथी को समझाया, ओर रथी की स्त्री की इच्छा पूरी करने को स्वय बाजार मे बिकी। वेश्या ने भी चन्दनबाला के साथ कोई अच्छा व्यवहार नही किया था। वह चन्दनबाला को वेश्या बनाने के उद्देश्य से, बलात् पकडने को उद्यत हुई थी फिर भी चन्दनबाला ने, अपने हृदय मे उसके प्रति कोई दुर्भाव नही रखा दोड कर बन्दरो से उसकी रक्षा की, ओर उसे उठाकर वेदना मुक्त किया। इस प्रकार जेस चन्दन, स्वय को काटने वाले को भी शीतलता ओर सुगन्ध ही देता हे उसी प्रकार चन्दनबाला भी, अपने साथ बुराई करने वाले की भलाई ही करती थी। वह बुराई करने वाले का भी अहित नही चाहती थी दूसरे की तो बात ही अलग हे। गृह कार्य आदि मे भी, उसको न तो आलस्य था, न किसी प्रकार भेद या ईर्ष्या ही रखती थी। इस प्रकार उसमे सब सद्गुण ही सद्गुण थ लेकिन जिनका हृदय मलिन था, उनको उसके सद्गुण ही दुर्गुण ही जान पडते थे। रथी की स्त्री को, चन्दनबाला के कार्य ओर उसका सद्व्यवहार बुराई के रूप मे दिख पडा था, ओर मूला सेठानी को भी चन्दनबाला के कार्य तथा व्यवहार मे दुर्भावना की गध आती थी। इसमे चन्दनबाला का कोई दोष न था। यदि चन्दनबाला मे ही कोई बुराई होती तो रथी रथी के यहा के दूसरे लोग, ओर सेठ तथा सेठ के यहा के दूसरे लोग चन्दनबाला से प्रसन्न नही रह सकते थे। उनके हृदय मे भी चन्दनबाला के प्रति दुर्भाव ही होता सद्भाव न होता। परन्तु केवल रथी की स्त्री ओर मूला को ही चन्दनबाला बुरी लगी इसका एकमात्र कारण यही था, कि उन दोना का हृदय मलिन था।

चन्दनबाला धनावा सेठ के यहा रहती थी। उसका अपन खान [illegible] की किचित चिन्ता न थी यदि चिन्ता रहती थी तो अतिथि-सत्कार ओर गृहकार्य की ही। उसके कार्य एव व्यवहार स सेठ के नोकर चाकर [illegible] पडोसी ओर सेठ क यहा आने-जान वाल लोग सभी प्रस [illegible] चन्दनबाला की सराहना करत थ। चन्दनबाला किसी [illegible] आज्ञा न चलाती थी किन्तु प्रत्यक कार्य अपन हाथ से ही करती थी [illegible] लोगा क दु ख-दर्द म सहायिका होती थी और [illegible] व्यवहार रखती थी। उसका काइ कार्य या व्य[illegible]

को असन्तोष हो। उससे सभी लोग प्रसन्न थे लेकिन मूला उससे किसी भी समय प्रसन्न नही रहती थी। उसको चन्दनबाला की ओर से सदा ही असन्तोष रहता था। इसका कारण उसके हृदय की मलीनता थी। चन्दना को लेकर सेठ जब आया था तभी मूला को यह सन्देह हुआ था कि पति इसे किसी दूसरे उद्देश्य से न लाये हो। अपनी कुटिलता से मूला ने यह सन्देह प्रकट नही होने दिया परन्तु उसके हृदय मे यह सन्देह दृढ होता गया। चन्दनबाला के कार्य ओर उसकी प्रशसा मूला का सन्देह बढाता जाता था। उसको विचार होता था कि यह मेरे घर मे इतना काम क्यो करती है? सब लोगो को प्रसन्न क्यो रखती है? पति इसकी इतनी प्रशसा क्यो करते हैं? इस प्रकार जेसे रथी की स्त्री को चन्दनबाला की ओर से भय हुआ था, उसी तरह मूला को भी यह भय हुआ कि कही यह मेरे पति पर आधिपत्य न कर ले।

सन्देह ओर भय के कारण मूला चन्दनबाला से ईर्ष्या करने लगी। वह बात–बात मे चन्दनबाला की बुराई करती और उसके कार्यों की भी बुरी तरह आलोचना करती। कभी–कभी वह स्वय ही किसी कार्य को बिगाड देती ओर उसका अपराध चन्दनबाला के सिर मढती। मूला के इस तरह के दुर्व्यवहार को भी चन्दनबाला शातिपूर्वक सह जाती और अपना अपराध न होने पर भी अपना अपराध मानकर क्षमा मागने लगती जिससे मूला को और कुछ कहने का अवसर ही न मिलता। उसके इस व्यवहार से मूला असन्तुष्ट ही रहती। वह सोचती कि यह कैसी धूर्त्त है। कैसी सहनशीन और प्रियभाषिणी है। मैंने तो अमुक बात इस उद्देश्य से कही थी कि जिससे कि ये सामना करके मुझसे लडे और में आगे कुछ कह सकू लेकिन यह तो सब बात सह जाती है तथा स्वय का अपराध न होने पर भी क्षमा मागने लगती है। वास्वत मे इसको तो इस घर की मालकिन बनना है। इसीसे यह घर के इतने काम भी करती है, सब लोगो को प्रसन्न भी रखती है ओर मेरी बाते भी सह जाती है।

इस प्रकार चन्दनबाला के लिए धनावा सेठ के यहा भी ठीक वही स्थिति उत्पन्न हो गई जो रथी के यहा उत्पन्न हो गई थी। मूला की एक दासी समझदार ओर मूला के मुह लगी थी। मूला को निष्कारण ही चन्दनबाला पर रुष्ट रहती ओर चन्दनबाला के लिए कटु वचन कहती देखकर एक दिन उसने मूला से कहा कि आजकल आपका स्वभाव कैसा हो रहा हे। चन्दनबाला आपके यहा इतने काम करती है सबकी सेवा करती है फिर भी आप उस पर नाराज ही रहा करती हें ओर उसे कटु वचन ही कहा करती हें। आप ऐसा क्यो करती हें यह कुछ समझ मे नही आता।

दासी का यह कथन सुनकर मूला उससे कहने लगी कि तू उसकी प्रशसा तो कर रही हे लेकिन यह भी जानती हे कि वह कोन हे किस जाति–कुल की है, यहा क्यो आई हे ओर किस उद्देश्य से परिश्रम पूर्वक सब काम करती हे? तुम सब तो उसकी मीठी बातो मे ही भूल रही हो। यह नही देखती कि उसकी मीठी बातो के पीछे क्या रहस्य छिपा हुआ हे। वह सुन्दरी हे युवती हे, फिर भी उसने अपने विवाह के विषय मे कभी कोई बात कही हे? क्या वह ससार से निराली हे जो उसको इस अवस्था मे भी पुरुष की चाह न हो? इसके सिवा तू यह भी जानती हे कि सेठ उससे इतना प्रेम क्यो करते हैं? मैंने सुना हे कि सेठ उसको 20 लाख सोनेया मे मोल लाये हे। उसमे ऐसी क्या विशेषता हे जो सेठ ने उसके लिए 20 लाख सोनेया खर्च किये? केवल यही विशेषता हे कि वह सुन्दरी हे ओर युवती हे। मेरे शृगार की सामग्री के लिए खर्च करने मे तो सेठ ने ऐसी उदारता कभी नही दिखाई ओर उसके लिए 20 लाख सोनेया खर्च कर दिये, यह क्या? तू इन सब बातो पर विचार कर केवल उसकी मीठी बातो मे फस कर ही उसका पक्ष मत ले। मे तो समझती हू कि सेठ उसको घर की मालकिन बनाने के लिए ही लाये हैं ओर इसीलिए वह परिश्रम पूर्वक इस घर का काम भी करती हे तथा सब लोगो से मीठी बाते कर उन्हे अपने हाथ मे कर रही हे। मैं तो ऐसे अवसर की खोज मे हू जो उसको इस घर से निकाल सकू।

मूला का कथन सुनकर दासी उससे कहने लगी कि आपने [illegible] के विषय मे जो शका प्रगट की मरी समझ स वह व्यर्थ हे। आज [illegible] चन्दनबाला की ओर स मेर देखने म तो ऐसी कोई बात नही आई जिससे [illegible] प्रकार की शका की जा सके। यदि मेरी दृष्टि म एसी कोई बात आती तो [illegible] स्वय ही आपसे कहती। मेरी दृष्टि म तो चन्दनबाला पूरी सती हे [illegible] आपके हृदय म उसकी ओर से सन्देह हो गया हे इसीसे आपको [illegible] दिखाई नही देते किन्तु गुण भी अवगुण जान पडते हे। किसी [illegible] हे–

शीतलतारु सुगन्ध की घटी न महिमा मूर।
पीनस वाले ने तज्यो सोडा जानि कपूर।।

इसक अनुसार आप म भी उसको ओर [illegible] रहा ह इसस आप उसक गुणो को भी [illegible] उसक गुण अवगुण नही हो सकत [illegible] उसस ईर्ष्या करक महान पाप [illegible]

सन्देह मत रखो, उससे ईर्ष्या करना छोडो, और उसके साथ सहृदयता का व्यवहार करो। उस सती को मिथ्या कलक लगा कर पाप मे मत पडो।

दासी का यह कथन सुनकर मूला उसको डाटती हुई कहने लगी कि आखिर तो तू दासी ही ठहरी। दासी मे यदि अधिक बुद्धि हो तो वह दासी ही क्यो रहे।

मूला को कुपित देखकर बेचारी दासी वहा से चुप–चाप चली गई। मूला चन्दनबाला के साथ अधिकाधिक कठोर व्यवहार करती रही। इसी बीच मे एक ओर घटना हो गई।

एक दिन चन्दनबाला स्नान करके खडी हुई अपने केश सुखा रही थी। उसी समय बाहर से धनावा सेठ आया। चन्दनबाला को केश सुखाती देखकर सेठ ने उससे कहा–पुत्री, जान पडता है कि तू ने स्नान किया हे। यदि कुछ गर्म जल शेष हो तो मुझे दे दो में भी अपने पेर धोलू। सेठ का यह कथन सुनकर चन्दनबाला ने अपने केशो की व्यवस्था स्थगित कर दी। वह गई ओर एक पात्र मे जल तथा साथ ही बैठने के लिए चोकी, एव पैर धोने के लिए पान ले आई। उसने सेठ से कहा–पिताजी, आप इस चोकी पर बेठकर इस पान मे पाव रखिये मे आपके पाव धोये देती हू। चन्दनबाला के इस कथन के उत्तर मे सेठ बोला–पुत्री क्या मैं तेरे से अपने पाव धुलवाऊ ? तुझ सती से यह नीच कार्य कराकर अपने आप पर पाप का भार चढाऊ? तू मेरी पुत्री हे पुत्री से पिता को पाव धुलाना ठीक नही हे। पैर धोना हल्का कार्य माना जाता हे। जिस मगलमयी ने वेश्या को भी सुधार दिया और मेरे इस घर को स्वर्ग–सा बना दिया वह तू मेरे पाव धोवे, यह कैसे सम्भव है। तथा मेरे लिए भी तुझ से पेर धुलाना केसे उचित है। तूने जल आदि ला दिया, यही बहुत हे। में स्वय ही अपने पेर धो लूगा तू तो अपने केशो की व्यवस्था कर।

सेठ का कथन सुनकर वसुमति बोली– पिताजी आप पुत्र–पुत्री मे भेद करने तथा सेवा कार्य को हल्का बताने का पाप कैसे कर रहे हैं। आप ऐसा मत करिये। मैं पूछती हू कि क्या पुत्री सन्तान नही हे, पुत्र ही सन्तान हे ? यदि दोनो ही सन्तान हे तो फिर पिता की सेवा करने मे दोनो का अधिकार समान क्यो नही हो सकता? पिता के चरणो की सेवा पुत्र को प्राप्त हो ओर पुत्री उससे वचित क्यो रहे? पुत्र को तो यह सुयोग दिया जावे और पुत्री को न दिया जावे क्या यह अन्याय नही हे? माता–पिता के लिए पुत्र और पुत्री दोनो ही समान हें अत पुत्री को चरण सेवा से वचित न रखना चाहिए। इसलिए आप यह मत कहिए कि में तुझ पुत्री से पाव केसे धुलवाऊं?

पिताजी, आपने कहा है कि मैं तेरे से पेर धुलवाकर अपने पर भार कैसे चढाऊ? मैं जानना चाहती हू, कि मेरे पेर धोने से आप पर भार क्यो चढेगा? क्या मुझे आप केवल मुख से ही पुत्री कहते हैं, वास्तव मे पुत्री नही मानते? ओर यदि मानते हे तो मेरे पेर धोने से आप पर भार चढने का क्या कारण हे? सन्तान पिता की जो सेवा करे उसका भार पिता पर केसे चढ सकता है? सन्तान पर माता-पिता का जो ऋण हे उस ऋण से वह माता-पिता के पाव आजन्म धोकर भी उऋण नही हो सकती तो मैं पेर धोऊ, इससे आप पर भार केसे चढ सकता हे? पिताजी, मैं आपकी पुत्री हू ओर आप मेरे पिता हैं। इसलिए भेदभाव करने वाली कोई बात कहकर मुझे आपकी सेवा से मत रोकिये।

एक बात और है। आप पेर धोने के कार्य को हल्का कहकर मुझे उसके करने से रोकते हैं और साथ ही मुझे सती एव मगलमयी कहते जाते हे। ये दोनो बाते एक दूसरी का विरोध करती हैं। किसी भी सेवा-कार्य के विषय मे अच्छे-बुरे या नीच-ऊच का भेद करना सेवा-धर्म को न समझना हे। सेवा करने वाले के समीप इस प्रकार का भेद होना ही न चाहिए। ससार मे सेवक और सेव्य के बीच मे जो विषमता देखी जाती है उसका कारण कार्य मे भेद-भाव का होना ही हे। यह कार्य उच्च हे और यह नीच है तथा इस कार्य को ऊचा करता हे और इस कार्य को नीच करता है यह भेद-भाव ससार मे विषमता फेलाता हे। वास्तव म कोई सेवा-कार्य नीच नहीं है। इसीलिए आप चरण धोने के कार्य को हल्का मत कहिये। इसके सिवा आपके चरणो का केसा महत्व हे इसको मे ही जानती हू। इन चरणो के प्रताप से ही मुझे इस घर मे आश्रय मिला हे। यदि ये चरण न होते तो मुझे [illegible] धार्मिकता पूर्ण गृह केसे प्राप्त होता? इसलिए भी आप मुझे पेर [illegible] न रखिए।

इस तरह चन्दनवाला ने सेठ का निरुत्तर कर दिया। सेठ [illegible] न कह सका। उसने यही कहा कि पुत्री जेसे तुझे सुख [illegible] यह कहकर सेठ चन्दनवाला की लाई हुई चौकी पर बेठ गया। [illegible] ने सेठ के सामने पेर धोने का पात्र रख दिया और कहा पिता [illegible] दोनो पर इस पात्र म रख दीजिये। सेठ ने उस पात्र [illegible] और चन्दनवाला उन पर पानी डालकर उन्हें [illegible] समय म उन दोनो के हृदय मे जो पवित्र प्रे[illegible] हो सकता। चन्दनवाला तो यह विचार कर [illegible]

के बाद आज अनायास ही मुझे पिता के चरणो की सेवा का सुयोग प्राप्त हुआ हे और सेठ यह विचार कर प्रसन्न था कि मुझे सदभाग्य से ही यह पुत्री प्राप्त हुई है। इस प्रकार दोनो ही अपने-अपने विचारो मे मग्न एव प्रसन्न थे।

चन्दनबाला सेठ के पाव धो रही थी, इस कारण उसका शरीर हिल रहा था। शरीर हिलने से उसके छूटे हुए लम्बे बाल और सुन्दर केश उसके मुख पर आ गये। सेठ ने सोचा कि यह पाव धो रही हे और इसके बाल मुह पर हिलग आये हैं जिससे इसको कष्ट होता होगा। यह विचार कर सेठ ने शुद्ध स्नेह वश अपने हाथ से उसके केश समेट कर ऊपर की ओर कर दिये। मूला यह सब देख रही थी। सेठ को चन्दनबाला के केश ऊपर करते देखकर उसका हृदय दग्ध हो गया। वह सोचने लगी कि मे जो कुछ सोचती थी वह ठीक ही है। आज तो इनका सबध प्रत्यक्ष ही देख लिया। जब मेरे देखते हुए ही पति ने उसके मुह पर हाथ फिराया है तब ओर क्या बाकी रहा। मेरे न देखने पर क्या-क्या न होता होगा। ओर आज इनका जो सबध गुप्त है, वह कुछ दिनो बाद इसी प्रकार प्रकट होने लगेगा। जिस तरह आज प्रगट मे उसके मुह पर हाथ फिराया गया है। अभी तो ये दोनो मुझसे दबते तथा सकोच करते हैं तब भी मेरे सामने ही पति इसके मुह पर हाथ फिरा रहे हैं और इसने भी प्रसन्नता से मुह पर हाथ फिरवाया है लेकिन कुछ दिनो बाद जब मेरी ओर से किसी प्रकार का सकोच न रहेगा तब क्या-क्या न होगा? फिर तो सब कुछ प्रगट ही होने लगेगा और यदि मैं किसी प्रकार का विरोध करूगी तो मेरा इस घर मे रहना कठिन हो जायेगा। यह घर के सब काम तो करती ही है, नोकर-चाकर आदि सबको इसने स्वय के वश मे कर ही लिया हे प्रत्येक छोटे-बडे काम मे इसी की पूछ होती है, मुझे तो कोई पूछता भी नही। ऐसी दशा मे इस घर मे मेरी आवश्यकता ही क्या रही? और जब मैं इन दोनो के सबध का विरोध करने लगूगी तब मुझे इस घर मे क्यो रहने दिया जावेगा? यह मेरी सच्ची सोत हे। मेरे सुख सुहाग के लिए काटा है। यदि मैंने इस बढते हुए विष-वृक्ष को अभी न उखाड फेंका तो फिर इसको उखाडना मेरी शक्ति मे न रहेगा।

सेठ ओर चन्दनबाला मे वही पवित्र प्रेम-सबध था जो, पिता-पुत्री मे हुआ करता हे लेकिन मूला ने हृदय की मलिनता के कारण उसे दूसरा ही रूप दिया। वह उन दोनो के पवित्र प्रेम को भी अपवित्र प्रेम समझ रही थी और यह सोच रही थी कि चन्दनबाला को इस घर से केसे निकालना। सेठ ओर चन्दनबाला के हृदय मे इस बात की कल्पना भी नहीं हुई कि हमारे विषय

मे मूला कोई बुरा विचार कर रही होगी। इस कारण सेठ तो उसी प्रकार [illegible] हुआ चन्दनबाला से पाव धुलवाता रहा और चन्दनबाला धोती रही। पाव धुलवा कर सेठ अपने काम पर चला गया तथा चन्दनबाला अपने केशो को सुखाने, एव उनकी व्यवस्था करने लगी।

चन्दनबाला के विषय मे मूला सोचने लगी यदि मे किसी उपाय से उसको घर से निकलवा दूगी, तो ऐसा करने से कुछ भी लाभ न होगा। पति इसको दूसरे मकान मे रख देगे जहा इन दोना को ओर सुविधा हो जावेगी। यहा तो मेरे कारण इनको दबना पडता हे इस कारण ये अपना सबध गुप्त ही रखते हे, लेकिन दूसरे मकान मे मेरा दबाव भी न रहेगा। इसलिए कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे सदा के लिए इसका अस्तित्व ही मिट जावे ओर मेरे मार्ग का काटा दूर हो जावे तथा मेरे प्रति कोई सन्देह भी न करे। इसके लिए मुझे क्या उपाय करना चाहिए। यदि शस्त्र प्रयोग करती हू तो ऐसा करने मे भेद खुलने आदि का भय हे। यदि विष प्रयोग करना चाहू तो ऐसा करने मे भी बहुत सी कठिनाइया हे। घर मे दास–दासी आदि भी रहते हैं ओर सेठ भी रहते हैं। इन सबके रहते में ऐसा कर भी नही सकती। इसलिए मुझे कोनसा उपाय करना चाहिए?

मूला इसी प्रकार विचारती रहती ओर चन्दनबाला के साथ पहले से भी अधिक कठोर व्यवहार किया करती लेकिन धारिणी की शिक्षा को [illegible] मे रखकर चन्दनबाला सब कुछ सह लेती। मूला के कठोर व्यवहार के [illegible] वह चू भी न करती किन्तु नम्रता पूर्वक अपना अपराध मानकर मूला से क्षमा मागती तथा जिस काम मे मूला खराबी बताती उस काम को फिर [illegible] डालती। इस प्रकार कुछ दिनो तक चलता रहा। एक दिन सेठ [illegible] के लिए किसी दूसरे गाव को चला गया। मूला ने सेठ की अनुपस्थिति [illegible] उठाकर स्वय के लिए माने गये चन्दनबाला रूपी विष–वृक्ष को [illegible] निश्चय किया।

जिस दिन सेठ किसी दूसरे गाव को गया उसी दि[illegible] यहा के नोकर–चाकर आदि को भी इधर–उधर भेज [illegible] दासी से तो यह कहा कि तू छुट्टी चाहती थी [illegible] अभी सेठ नही हे इस कारण घर मे काम का [illegible] छुट्टी पर भेज दिया ओर किसी को नाराज [illegible] किसी को लम्बी दूरी पर काम के लि[illegible] इधर–उधर भेज दिया। घर [illegible]

ने सोचा कि घर मे तो और कोई नही हे लेकिन घर का दरवाजा खुला रहने पर कोई आ जायेगा जिससे कार्य मे बाधा पडेगी। कोई ओर न आ जावे इस उद्देश्य से मूला ने घर का द्वार भी बन्द कर दिया ओर फिर इस विचार से पसन्न हुई कि आज मैं यह सोत का काटा निकाल सकूगी।

किवाड बन्द करके मूला चन्दनबाला के पास आई। मूला ने अपने हाथ से चन्दनबाला के हाथ पकड लिये और क्रोध करके उससे कहने लगी दुष्टा तू बडी ठगिन हे। तूने मेरी सौत बनकर मेरे पति को ठग लिया हे। तू न मालूम किस जाति–कुल की हे फिर भी मेरे घर की मालकिन बनी हे। बता तू किसकी लडकी हे किस जाति की है, यहा क्यो रहती हे ओर तेरा वास्तविक नाम क्या हे?

चन्दनबाला के लिए यह स्थिति कुछ नई न थी। रथी के यहा वह इसी तरह की स्थिति अनुभव कर चुकी थी। इसलिए उसको न तो मूला के व्यवहार से ही आश्चर्य हुआ न उसके प्रश्नो से ही। वह उसी प्रकार प्रसन्न रही। मूला के प्रश्नो के उत्तर मे उसने स्वाभाविक प्रसन्नता के साथ कहा–माता, आज आप अपनी पुत्री से ये केसे प्रश्न कर रही हें? पुत्री की जाति क्या दूसरी हो सकती है? जो आपकी जाति ह वह मेरी जाति है और पिता ने जो चन्दनबाला नाम दिया हे, वही मेरा नाम हे। आपको मेरे विषय मे व्यर्थ ही शका हो रही हे। अपनी पुत्री के विषय मे इस प्रकार की शका तो न होनी चाहिए।

चन्दनबाला का यह उत्तर सुनकर मूला और कडक कर बोली। वह कहने लगी–बडी पुत्री बनने चली हे। मैंने सब कुछ देखा हे। पापिनी स्त्रिया पाप भी करती हें ओर जिस पुरुष के सहयोग से वह पाप करती है उसी को पिता भ्राता आदि भी कहती जाती है। इसी प्रकार पापी पुरुष भी ऊपर से धर्मात्मा बने रहते हैं पुत्री बहन आदि कहते जाते हैं और जिसे पुत्री बहन आदि कहते है उसी के साथ दुराचार भी करते जाते हैं। यही बात तेरे लिए भी है। पिता–माता भी कहती जाती हे और मुह पर हाथ भी फिरवाती जाती है। बता पाव धुलवाते समय सेठ ने तेरे मुह पर हाथ फिराया था या नहीं? ओर फिराया था तो क्यों?

चन्दनबाला–माता पिताजी ने मेरे मुह पर हाथ तो नहीं फिराया था। मैं पेर धोती थी इस कारण मेरा शरीर हिलता था ओर मेरे मुह पर केश हिलग आये थे। मेरे को कष्ट होता होगा इस विचार से पिता ने करुणा पूर्वक मेरे मुह पर से वे हिलते हुए बाल अवश्य हटाये थे। पिता का यह कार्य अनुचित

तो नही था। सन्तान यदि कष्ट मे हो तो उसे कष्ट–मुक्त करना पिता का कर्त्तव्य ही हे। आप जरा सी बात पर से ही सन्देह कर रही हैं आप कोई सन्देह मत रखिये ओर यदि आप चाहे तो विश्वास के लिए मेरी परीक्षा करके देख लीजिये कि में आप की सच्ची पुत्री हू या नही। मे आपकी सच्ची पुत्री हू इसलिए आप मेरी जिस तरह की परीक्षा लेगी मे उसी तरह परीक्षा देकर आपको विश्वास करा दूगी।

यद्यपि चन्दनबाला का कथन बिलकुल सत्य था लेकिन मूला पर उसका यथेष्ट प्रभाव नही पडा। उसके हृदय मे चन्दनबाला के प्रति जो सन्देह था, उसके कारण तथा क्रोध के कारण वह अपने विचार के प्रतिकूल बात की ओर ध्यान ही नही देती थी। चन्दनबाला का उत्तर सुनकर वह चन्दनबाला से कहने लगी–हा, पिता जेसे पुत्री के केश समेटता हे उसी तरह पति ने भी तेरे केश समेटे हें। बडी पुत्री बनी हे। कुलटा को शर्म भी नही आती। दूसरे पुरुष से अपने केश सवरवाना, अनुचित सबध रखना, ओर ऊपर से कहना कि पिता के तरह समेटे थे, भले मेरी परीक्षा ले लो। अच्छा तू परीक्षा देती हे तो मे भी तेरी परीक्षा लेती हू देखती हू कि किस प्रकार परीक्षा देती हे।

यह कह कर मूला लपक कर कैंची ले आई। हाथ मे कैंची लिये मूला चन्दनबाला से कहने लगी कि–अच्छा बेठ। तेरे जिन केशो को मेरे पति का हाथ लगा हे, तेरे जिन केशो ने मेरे पति को लुभाया हे सबसे पहले मैं तेरे उन्ही केशो को दण्ड दूगी। तेरे सिर पर केश रहने नही दूगी।

मूला की आज्ञा मानकर चन्दनबाला प्रसन्नता पूर्वक उसके सामने बेठ गई। उसने मूला से कहा–माता आप जिस तरह भी चाहे मेरी परीक्षा ले सकती हे। चन्दनबाला का कथन सुनकर मूला का विचार हुआ कि मेरा अनुमान था कि केश काटने की बात सुनकर इसको दुःख होगा लेकिन यह तो बडी ढीठ हे। इस तरह विचारती हुई वह चन्दनबाला के लम्बे घुघराले और काले केशो का कैंची से काटने लगी।

स्त्रिया को केश बहुत प्रिय होते हे वे केशो को [illegible]

कारण मानती हें। जिसके केश जितने अधिक लम्बे सुन्दर और काले [illegible]

काले होते हें उस स्त्री की उतनी ही सुन्दरता [illegible]

'कुन्तल' नाम भी हे इसलिए जिसके अच्छे केश होते [illegible]

केशवाली भी कहा जाता हे। स्त्रिया अपने केशो को [illegible]

यदि उनके केश सवारने के कार्य मे किसी प्रकार [illegible]

उन्हे बहुत बुरा लगता हे। वे अपने केशो को [illegible]

से सन्धि करने के लिए जाते हुए कृष्ण से द्रोपदी ने दूसरी अनेक बाते कहते हुए यह भी कहा था कि—दुष्ट दु शासन ने मेरे इन केशो का अपमान किया था इस बात को आप सन्धि करते समय भूल मत जाना। इस तरह स्त्रियो के लिए केशो का अपमान असह्य होता है, परन्तु चन्दनबाला अपने सुन्दर केशो के काटने के समय भी प्रसन्न रही। वह सोचती थी कि माता को इन केशो के काटने से प्रसन्नता है तो मै दु ख क्यो करूं? जिस बात से माता को प्रसन्नता हो उसी मे मुझे भी प्रसन्नता माननी चाहिए। माता मुझ पर रुष्ट है फिर करुणालु है इसीसे केवल केश काट कर ही मेरी परीक्षा ले रही है अन्यथा ये दूसरी कठिन परीक्षा भी ले सकती थी।

मूला ने कैची से चन्दनबाला के सुन्दर केशो को काट डाला। केशो को काटकर वह चन्दनबाला के मुह की ओर देखती हुई कहने लगी कि ले, अब न तेरे मुह पर केश आवेगे न मेरे पति सवारेगे। मूला ने चन्दनबाला की ओर इस अनुमान से देखा था कि केशो के कटने से इसे दु ख होगा और यह रो रही होगी लेकिन उसने केश काटने पर भी चन्दनबाला को प्रसन्न ही देखा, इसलिए उसे आश्चर्य भी हुआ और क्रोध भी। चन्दनबाला ने मूला की बात के उत्तर मे यही कहा—माता आपकी मेरे पर बहुत कृपा है, इसलिए आपने केवल केश काटकर ही मेरी परीक्षा ली है और केश भी इस तरह काटे हैं कि मुझे जरा भी कष्ट नही होने दिया। केश काटने से न तो मुझे किसी प्रकार का कष्ट हुआ न मेरी कोई हानि हुई, फिर भी आपका सन्देह मिट गया, इससे ज्यादा प्रसन्नता की बात और क्या होगी?

चन्दनबाला का यह कथन सुनकर मूला कहने लगी कि—वास्तव मे केश काटने से तेरी क्या हानि हुई। केश तो फिर भी हो जायेगे और तुझ जैसी कुलटा के सिर पर केश हो या न हो बराबर ही है। केश काटने से किसी भली स्त्री को दु ख हो सकता है तुझको दु ख क्यो होगा? लेकिन बाल काटने मात्र से ही मुझे सन्तोष न होगा। तू यह न समझ कि बाल काटने से मेरी परीक्षा हो गई। मैं तेरे हाथो मे हथकडी और तेरे पावो मे बेडी डालूगी। उसके बाद और क्या करूगी यह फिर बताऊगी।

मूला की हथकडी—बेडी डालने की बात सुनकर भी चन्दनबाला नही घबराई। उसने कहा—माता आपको जिस तरह भी प्रसन्नता हो आप वैसा ही कीजिये। जिसमे आपको प्रसन्नता हे उसी मे मुझे भी प्रसन्नता हे।

हा तुझे तो प्रसन्नता होगी ही। कहती हुई मूला जाकर, हथकडी बेडी डालने के लिए जजीर तथा ताले ले आई। उसने जजीर से चन्दनबाला

के दोनो हाथ ओर दोनो पाव बाधकर जजीर मे ताले लगा दिये। यह करके मूला बोली कि–अब तेरे शरीर पर ये कपडे किस काम के। यह कह कर मूला ने चन्दनबाला के शरीर से कपडे खीच लिये ओर उसको एक पुराने मेले कपडे की काछ लगा दी। चन्दनबाला उस समय भी प्रसन्न ही रही ओर सोचती रही कि माता की मुझ पर पूर्ण कृपा हे इसीसे इन्होने हाथ–पाव काटने के बदले उनमे हथकडी–बेडी ही डाली हे तथा बिलकुल नग्न न करके काछ लगा दी हे। हथकडी–बेडी डालकर ओर काछ लगाकर मूला ने सोचा कि अब इसको यहा बाहर रखना ठीक नही है। किवाड बन्द तो कब तक रखूगी ओर खुला रहने पर आने–जाने वाले लोग इसको इस दशा मे देखकर मेरी निन्दा तथा इसकी सहायता करने लगेगे। इसलिए इसको भोयरे (तलघर या भूमिगृह) मे डाल देना ठीक है। पुराने बडे मकानो मे प्राय भोयरे रहा ही करते थे। आज भी पुराने मकानो मे भोयरे देखने मे आते हे। धनावा सेठ के घर मे भी एक बडा भोयरा था। वह भोयरा बहुत दिनो से साफ नही हुआ था ओर भोयरो मे प्राय अधेरा तो रहा ही करता हे। मूला चन्दनबाला को घसीटती हुई उसी भोयरे के पास ले गई। फिर भोयरे का किवाड खोलकर उसने चन्दनबाला को भोयरे मे डाल दिया ओर फिर किवाड बन्द कर दिये।

चन्दनबाला को भोयरे मे डालकर मूला इस विचार से प्रसन्न हुई कि आज में मेरी सोत बनने, मेरा सुख–सुहाग छीनने ओर इस घर की मालकिन बनने की इच्छा रखने वाली को पूरी तरह दण्ड दे सकी हू। अब यह इसी भोयरे मे पडी–पडी मर जावेगी ओर इस प्रकार मेरा मार्ग साफ हो जावेगा। इस तरह के विचार से प्रसन्न होती हुई मूला को सहसा यह ख्याल आया कि मेंने इसको भोयरे मे तो डाल दिया हे लेकिन मेरे यहा आने जाने वाले लोग जब इसके विषय मे यह पूछेगे कि वह कहा हे? तब मै किस किस को क्या उत्तर दूगी? ओर घर खुला रहने पर लोग आवेगे–जावेगे ही। [illegible] दास–दासी को यहा से टालने के लिए मेंने बाहर भेज दिया हे [illegible] ही तथा जिन्हें इस घर से सहायता मिलती हे वे लोग भी [illegible] किस–किस से क्या–क्या कहूगी? इसलिए यही अच्छा हे कि [illegible] चल दू। न मे यहा रहूगी न घर खुला रहेगा न कोई आवेगा [illegible] इस ओर का कोई भय ही रहेगा।

जो व्यक्ति पाप करता हे उसको भय भी रहता हे [illegible] मूला को भी भय हुआ। कोई मेरे इस कृत्य को [illegible] घर का द्वार बन्द करके ओर द्वार पर ताला लगाकर [illegible] कोशाम्बी मे ही रहते थे चली गई।

अभिग्रह

अमुक प्रकार से मुझे भोजन मिलेगा, अमुक चीज मेरे देखने म आवेगी अमुक चीज मुझे प्राप्त होगी, अमुक कार्य हो जावगा अथवा अमुक के हाथ से मुझे भोजन मिलेगा तभी मै भोजन लूगा या ऐसा न हुआ तो इतने दिन तक अथवा कभी भी भोजन न करूगा या अमुक काम न करूगा आदि रीति से की गई गुप्त प्रतिज्ञा का नाम अभिग्रह हे। जो प्रतिज्ञा गुप्त की जाती हे अपने गुरु आदि मान्य पुरुषो या व्यक्ति विशेष के सिवा ओर किसी का जिस प्रतिज्ञा की खबर नही होने दी जाती, ओर जिस गुप्त प्रतिज्ञा के पूरी होने पर ही भोजन या ओर कोई कार्य किया जाता हे पूरी न होने पर कुछ अवधि तक या सदा के लिए भोजन अथवा प्रतिज्ञा का आधार रखने वाला कार्य नही किया जाता उस प्रतिज्ञा का नाम अभिग्रह हे। पहले के महात्मा लोग अनेक प्रकार के अभिग्रह किया करते थे ओर आज भी कई महात्मा अभिग्रह किया करते हैं। यह बात दूसरी हे कि जमाने की खरावी से आजकल अनुचित दूसरे पर दबाब डालने वाली या प्रगट मे की गई प्रतिज्ञा को भी अभिग्रह कहा जाता हे लेकिन वास्तव मे उसी प्रतिज्ञा को अभिग्रह कहा जा सकता हे जो प्रगट न की जावे, जिससे किसी पर किसी तरह का दवाव न पडे ओर न अनुचित भी हो।

जेन शास्त्रो मे तो अभिग्रह के अनेक प्रमाण मिलते ही हैं, परन्तु बोद्ध साहित्य मे भी अभिग्रह का किया जाना पाया जाता है। जैसे एक बोद्ध ग्रन्थ मे बुद्ध के अभिग्रह की बात आई है। उसमे कहा गया है कि बुद्ध को आत्मज्ञान हुआ बुद्ध ने आत्मज्ञान होने की बात अपने शिष्य अनाथपिण्ड से प्रकट की। अनाथपिण्ड ने बुद्ध से प्रार्थना की कि आपको जो आत्मज्ञान हुआ हे वह आप ससार के लोगो को सुनाइये तो ससार का बहुत कल्याण हो। बुद्ध ने उत्तर दिया कि यह तो ठीक है लेकिन ससार के लोग इस ज्ञान के

पात्र हैं या नही, इस बात को जाने बिना मे यह उच्च ज्ञान किसी का नही सुना सकता। ससार के लोग इस ज्ञान को सुनन के अधिकारी तभी माने जा सकते हैं जब उनमे त्याग की भावना विद्यमान हो ओर इसकी परीक्षा के लिए कोई अपना सर्वस्व दान कर सके। यदि एक भी व्यक्ति सर्वस्व दान देने वाला निकल आया तब तो यह समझ लूगा कि ससार मे त्याग भी हे ओर दान देन की भावना भी हे। अत उस दशा मे मे प्राप्त अध्यात्म ज्ञान ससार के लोगा को अवश्य सुनाऊगा अन्यथा यह ज्ञान स्वय म ही रहने देकर मर जाना तो अच्छा हे लेकिन अपात्र ससार को सुनाना अच्छा नही हे।

बुद्ध का कथन सुनकर अनाथपिण्ड ने उत्तर दिया कि भगवन ससार मे सर्वस्व दान देने वाले लोगो की क्या कमी हो सकती हे? आपके लिए अपना सर्वस्व दान देने वाले लोग बहुत निकलेगे। यदि आप मुझे आज्ञा द तो म अभी जाकर सर्वस्व दान ले आऊ। बुद्ध ने कहा कि तू तो अनेक की बात कहता हे, परन्तु यदि एक भी व्यक्ति ऐसा निकल आवे तो काम हो जावे। तू इस विषय मे प्रयत्न करना चाहता हे तो कर लेकिन मे सर्वस्व दान क्या चाहता हू, यह बात किसी पर प्रगट मत होन देना।

अनाथपिण्ड पात्र लेकर कोशाम्बी म आया। सूर्योदय होने का समय था। नगर के कुछ लोग बिस्तर पर ही पडे हुए थ कुछ लाग उठ रहे थ और कुछ लोग उठ चुके थे। उसी समय अनाथपिण्ड ने आवाज लगाई कि बुद्ध सर्वस्व दान चाहते हे, अत यदि काई सर्वस्व दान दन वाला दाता हो तो वह मुझे दे। अनाथपिण्ड इसी प्रकार आवाज लगाता हुआ चलता जाता था। लोगो ने अनाथपिण्ड की आवाज सुनी। उस समय बुद्ध बहुत प्रसिद्ध थ [illegible] कारण कोशाम्बी के लाग अनाथपिण्ड का भी जानत थ। अनाथपिण्ड की आवाज सुनकर लोग कहन लग कि अनाथपिण्ड आज सवेरे ही [illegible] लेने के लिए आया हे अत इसका खाली न जान दना चाहिए। इस प्रकार विचार कर अनेक स्त्री पुरुष वस्त्र आभूषण रत्न आदि [illegible] अनाथपिण्ड क पात्र म डालन लग लकिन अनाथपिण्ड [illegible] वस्तु को अपने पात्र म नही रहन दता था। पात्र को [illegible] सब चीज नीच गिर जाती थी। अनाथपिण्ड कहता था कि [illegible] चाहता हू, एसा दान नही चाहता। पात्र न [illegible] नीच गिरा दता था इसलिए सब लाग अपनी-अपनी [illegible] अपन घर लाट जात थ।

अनाथपिण्ड सारी कोशाम्बी [illegible] दान दन वाला काइ न मिला [illegible]

अनाथपिण्ड ने सोचा कि अब तो जगल आ गया है। जब नगर मे ही कोई सर्वस्व दान देने वाला नही मिला, तब जगल मे कौन मिल सकता है? लेकिन बहुरत्नावसुन्धरा' पृथ्वी पर अनेक रत्न है। कौन रत्न कहा है, इसका कुछ ठिकाना नही है। इसलिए सर्वस्व दान पाने की इच्छा से जगल मे जाना भी कुछ अनुचित नही है। इस प्रकार विचार कर वह, जगल मे भी यही आवाज लगाता हुआ चला कि बुद्ध सर्वस्व दान चाहते है कोई दाता सर्वस्व दान देने वाला हो तो मुझे दे।

जगल मे एक स्त्री ने अनाथपिण्ड की यह आवाज सुनी। उस स्त्री को महागरीबिनी कहा जाना ही ठीक हो सकता है। उसके न तो घर बार था, न उसके पास वस्त्र पात्र ही थे। उसके शरीर पर एक फटा पुराना वस्त्र था जो लज्जा की रक्षा के लिए पहने हुई थी। वह एक वस्त्र ही उसका सर्वस्व था। उसके पास उस वस्त्र के सिवा और कुछ था ही नही।

अनाथपिण्ड की आवाज सुनकर उस स्त्री ने सोचा कि बुद्ध सर्वस्व दान चाहते हें और मेरा सर्वस्व यही एक वस्त्र है। अपने इस वस्त्र को दान करने का दूसरा सुयोग कब मिल सकता है। इस मेरे सर्वस्व का दान लेने वाला बुद्ध जेसा सुपात्र फिर कब मिलेगा? मुझे इस स्वर्ण–सुयोग का लाभ अवश्य लेना चाहिए। इस प्रकार विचार कर उस स्त्री ने अनाथपिण्ड को सम्बोधन करके कहा कि–ओ भिक्षु, आओ, मैं तुम्हे सर्वस्व दान देती हू। यह कहकर वह स्त्री जिस मार्ग से अनाथपिण्ड आ रहा था उसी मार्ग पर स्थित एक पुराने वृक्ष के खोखले मे उतर गई ओर उसने अपना वह एक मात्र वस्त्र निकालकर हाथ मे ले अनाथपिण्ड से कहा–भिक्षु यह सर्वस्व दान लो और ले जाकर अपने गुरु बुद्ध को दो उनकी इच्छा पूरी करो।

अनाथपिण्ड ने उस स्त्री का दिया हुआ वह वस्त्र हर्ष पूर्वक अपने पात्र मे ले लिया ओर गदगद् होकर उस स्त्री को कहने लगा–माता, आपकी तरह सर्वस्व दान देने वाला, ससार मे कौन होगा? आपके पास यही एक वस्त्र था। आप इसी वस्त्र से लज्जा की रक्षा करती थीं, लेकिन लज्जा की रक्षा के लिए आपने अपने शरीर को वृक्ष के खोखले मे छिपाकर अपना यह एक मात्र वस्त्र भी दे दिया। अब आपके पास कुछ भी नही रहा। यही आपका सर्वस्व था और इस सर्वस्व को भी आपने दान मे दे दिया। आपकी तरह का उदार दानी दूसरा कोन होगा? मुझे बहुमूल्य रत्न वस्त्र ओर आभूषण आदि देने वाले ओर लोग भी मिले थे लेकिन वह आपके इस सर्वस्व दान के समान

न थे। वे लोग थोडा देकर अपने लिए बहुत रख रहे थे सर्वस्व दान नहीं देते थे। परन्तु आपने तो सर्वस्व दान दिया है, इसलिए आपको धन्य है।

उस सर्वस्व दान देने वाली स्त्री की इस प्रकार प्रशसा करके उसका गुणगान करता हुआ अनाथपिण्ड बुद्ध के पास आया। उसने बुद्ध को यह वस्त्र देकर कहा–भगवान् यह सर्वस्व दान लीजिये। यह कहकर उसने कोशाम्बी मे सर्वस्वदान न मिलने किन्तु जगल मे मिलने आदि का आद्योपान्त वृत्तान्त कहा। बुद्ध उस वस्त्र को पाकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने वह वस्त्र मस्तक पर चढाकर कहा कि–मेरी प्रतिज्ञा पूरी हुई इसलिए अब मैं लोगो को अवश्य ही वह ज्ञान सुनाऊगा, जो मुझे प्राप्त हुआ है।

बुद्ध को, सर्वस्वदान तो सरलता से ही प्राप्त हो गया था। उसकी खोज, अधिक समय तक नही करनी पडी थी। इसके सिवा बुद्ध के इस अभिग्रह के साथ तो ज्ञान सुनाने न सुनाने की ही बात थी जीवन–मरण का प्रश्न न था। यदि सर्वस्व दान न मिलता बुद्ध ससार के लोगो को वह ज्ञान न सुनाते, जो उन्हे प्राप्त हुआ था, लेकिन इस अभिग्रह के पूरा न होने पर उनके प्राण नही जा सकते थे। इसलिए बुद्ध का अभिग्रह कठिन था यह नही कहा जा सकता। परन्तु भगवान् महावीर ने महा कठिन अभिग्रह किया था। भगवान् महावीर ने जो अभिग्रह किया था उसके साथ प्राण रहने या न रहने का सबध था। बुद्ध का अभिग्रह एक ही दिन मे पूरा हो गया था तथा उसकी पूर्ति के लिए उनके शिष्य अनाथपिण्ड ने भ्रमण किया था लेकिन भगवान् महावीर का अभिग्रह 5 मास 25 दिन मे पूरा हुआ था तथा उसकी पूर्ति के लिए भगवान ने स्वय ही भ्रमण किया था। उस समय उनके कोई शिष्य न था। यदि कुछ दिन भगवान का अभिग्रह ओर पूरा न होता तो उनका शरीर रहना कठिन था। इसलिए भगवान् महावीर का अभिग्रह महान कठिन था।

भगवान महावीर को सयम लेकर तप करते हुए 11 वर्ष बीत चुके थे। बारहवे वर्ष मे भगवान ने रात के समय ध्यान मे यह विचार किया कि मै ससार के जिन जीवो का कल्याण करना चाहता हू, उनमे स्त्रिया भी है और पुरुष भी है। यह ससार न तो केवल स्त्रियो से ही है और न [illegible] से ही। दोनो ही से इसकी स्थिति है तथा दोनो ही से [illegible] उत्थान है। अकेला पुरुष न तो इस ससार को [illegible]

✿यह दशा की कल्पना है जो [illegible] किया हो या नहीं किन्तु विषय को [illegible]

सकता है। ससार के प्रत्येक कार्य मे, दोनो की शक्ति की आवश्यकता हे। प्रत्येक कार्य मे समवाय सयोगो की आवश्यकता है। उपादान ओर निमित्त कार्य के सम्पादन मे दोनो की समान रूप से अपेक्षा होती हे। मेरे तीर्थ मे श्रमण, श्रमणी–श्रावक और श्राविकाए होगी। श्रमण सघ तो मेरे साथ रह सकेगा परन्तु श्रमणी सघ के लिये किसी ऐसी नायिका की आवश्यकता होगी जो सर्वथा उसके योग्य हो।

ऐसी सहायिका प्राप्त करने के लिए, भगवान ने ऐसा कठिन अभिग्रह स्वीकार किया ही क्यो कि जो ससार मे रहते हुए धैर्यपूर्वक ऐसे कष्ट की परम्परा को सहन कर लेती हो वही श्रमणीसघ की नायिका बनने के लिये पर्याप्त हो सकती है।

यहा यह प्रश्न होता है कि चार तीर्थ तो सभी तीर्थंकर भगवान के शासन मे होते हैं, तब अन्य तीर्थंकरो ने तो ऐसा विचार नही किया ओर भगवान महावीर ने ही सहायिका प्राप्ति के लिए ऐसा विचार क्यो किया होगा? इसका समाधान यह हे कि भगवान अरिष्टनेमि को भी विवाह तो नही करना था फिर बारात आदि सजावट कर के महाराज उग्रसेन के द्वार तक क्यो पधारे? वे भी राजीमती को जागृत करने को पधारे थे। बिना निमित्त के कोई कार्य नही बनता। भगवान का पधार कर वापिस लौटना ही राजीमती के बोध का कारण बना ओर वह श्रमणीसघ की नायिका बनी।

इस प्रकार विचार कर भगवान ने निश्चय किया कि (1) जो राज कन्या हो, (2) अविवाहिता हो (3) सदाचारिणी हो (4) किसी प्रकार का अपराध न करने पर भी जिसके पाव मे बेडिया तथा हाथ मे हथकडिया पडी हो (5) सिर मुडा हुआ हो, (6) शरीर पर केवल एक काछ लगी हो, (7) तेला किये हुई हो, (8) पारणे के लिए रखे हए उर्द के बाकुलो को सूप मे लिये हो, (9) न घर मे हो न घर से बाहर हो, किन्तु एक पाव देहली के बाहर तथा दूसरा पाव देहली के भीतर रखकर (10) दान देने की भावना से दृष्टि फैला कर (11) अतिथि की प्रतीक्षा कर रही हो, (12) प्रसन्न मुख हो, और आखो मे आसू भी हो (13) ऐसी कन्या के हाथ से दोपहर के पश्चात् अन्न मिले तब भोजन करूगा। अन्यथा आजीवन भोजन ग्रहण न करूगा। चाहे यह शरीर नष्ट क्यो न हो जाए?

भगवान ने इस प्रकार के अभिग्रह का सकल्प किया। उन्होने सोचा था कि इस तरह की कन्या के हाथ से प्राप्त अन्न ससार का उद्धार करने के लिए मेरी शक्ति को पूर्ण बना सकता हे। उस दशा मे मे ससार का

कल्याण करने मे समर्थ हो सकता हू, अन्यथा समर्थ नहीं हो सकता। ओर ससार के जीवो का उद्धार न कर सकने पर शरीर रखना भी व्यर्थ होगा।

भगवान का यह अभिग्रह कितना कठिन था! भगवान ने जो बाते चाही हैं, उन सबका एक ही जगह मिलना कितना मुश्किल हे? भगवान का अभिग्रह तब पूर्ण हो सकता हे जब एक ही समय मे ओर एक जगह 13 बात मिलेगी। यद्यपि इन सब बातो का एक ही जगह मिलना बहुत ही कठिन हे लेकिन भगवान् मे दृढता थी इसलिए उन्होने ऐसा कठिन अभिग्रह लिया।

जिन दिनो मे रथी की स्त्री ने चन्दनबाला का विक्रय करने के लिए रथी को विवश किया, चन्दनबाला बाजार मे बिकी धनावा सेठ के घर आई ओर मूला द्वारा किये गये कष्टो को सह रही थी उन्ही दिनो मे भगवान महावीर अभिग्रह के अनुसार भिक्षा प्राप्त करने के लिए ग्राम नगर आदि जनपद मे विचर रहे थे। भगवान को विचरते हुए पाच मास से भी अधिक दिन हो गये लेकिन अभिग्रह के अनुसार अन्न प्राप्त नही हुआ। तप के कारण भगवान का शरीर क्षीण होता जा रहा था। शरीर मे दुर्बलता बढती जा रही थी इससे सारे ससार मे हाहाकार मचा हुआ था देव मनुष्य आदि सब चिन्ता कर रह थे कि क्या त्रिलोक का कल्याण करने वाले कल्पवृक्ष के समान सुखदायी ये महापुरुष इसी तरह सूख जावेगे। ससार के समस्त भव्य प्राणी इस बात के लिए चिन्तित थे कि भगवान महावीर का जीवन कैसे निरामय रहे।

अभिग्रह क अनुसार अन्न की गवेषणा म विचरते हुए भगवान महावीर कोशाम्वी म पधारे। इधर कोशाम्वी म मूला ने चन्दनबाला का [illegible] मूडकर उसे हथकडी–वेडी पहनाकर ओर काछ लगाकर भोयरे म [illegible] यद्यपि मूला ने जो कुछ किया था वह दुर्भावना पूर्वक चन्दनबाला को [illegible] करने के लिए ही लकिन जब उपादान कारण अच्छा होता है [illegible] भी अच्छा हो जाता हे। इसी क अनुसार मूला का यह [illegible] महावीर का शरीर रखने वाला ससार के लोगो का कल्याण करने [illegible] चन्दनबाला का ससार–पूज्या बनाने वाला हुआ। यदि [illegible] मूला न इस प्रकार का व्यवहार न किया होता तो [illegible] पूर्ण होता? इसलिए मूला न जो कुछ किया [illegible] समझकर ही किया लेकिन यह सब भी अच्छा [illegible] होता ह तो बुरा निमित्त भी लाभदायक [illegible] हो तो निमित्त प्रशस्त [illegible] छद्मस्थ है अपूर्ण है उन्हे प्रशस्त [illegible]

दान

स्वय के पास किसी वस्तु का बाहुल्य होने पर उस वस्तु मे से किसी को कुछ दे देना उसमे से थोडीसी वस्तु दान कर देना कोई विशेषता की बात नही है। जेसे किसी करोडपति ने यदि किसी को हजार–दो हजार रुपये दे दिये तो इसमे क्या विशेषता हुई? इतना देने के पश्चात् भी उसके पास जो शेष रहा हे वह उसकी आवश्यकता से बहुत ज्यादा है। हा उस कृपण की अपेक्षा जो पास मे बहुत ज्यादा होते हुए, थोडा भी नही देता व उसकी अपेक्षा बहुत मे से स्वल्प देने वाला व्यक्ति अवश्य प्रशसनीय माना जायेगा, अवश्य उदार कहलायेगा लेकिन सेद्धातिक रूप से देखा जावे तो इस उदारता के लिए उसे न तो किसी प्रकार का कष्ट ही उठाना पडा है न स्वय की कोई आवश्यकता ही कम करनी पडी है। इसलिए ऐसा दान विशेष प्रशसनीय नही कहा जा सकता। प्रशसा के योग्य तो वही दान है जिसके पीछे कुछ कष्ट सहन करना पडे ओर जिसके लिए अपनी किसी आवश्यकता को रोकना या कम करना पडे। स्वय के पास पहले ही थोडी चीज है इतनी हे, कि जिससे स्वय की आवश्यकता भी सरलता से पूरी नही हो सकती और उस चीज मे से कमी हो जाने पर स्वय को कष्ट उठाना पडेगा इस तरह की स्थिति मे भी जो दान दिया जाता हे वही दान अधिक प्रशसनीय है। कई लोग कहा करते हें कि हमारे पास ज्यादा हे ही नही ऐसी दशा मे हम किसी को दे, तो केसे? इसी प्रकार कष्ट के समय दान देना भूल जाते हें दान देने की ओर ध्यान ही नही जाता। समझा जाता हे कि जो सुखी हे जिसके पास अधिक हे वही दान देने का अधिकारी हे। हम दु खी हें अथवा हमारे पास कम हे इसलिए हम दान देने के अधिकारी नही हें। लेकिन वास्तव मे यह धारणा भ्रमपूर्ण है। प्रशसनीय दान तो वही हे जो कष्ट के समय और थोडा होने पर भी दिया जावे। शास्त्र मे भी कहा है–

दाण दइद्वाणि

अर्थात्–दरिद्रता मे दिया गया दान ही विशेष महत्त्व रखता है। ईसाई मजहब की पुस्तको मे भी ऐसी एक कथा आई हे जिसमे गरीबी मे दिये गये दान की प्रशसा की गई हे। उसमे कहा गया है कि एक बार कही दुष्काल पडा था। वहा के दुष्काल–पीडितो की सहायता के लिए चन्दा होने लगा। ईसा चन्दा करने वालो का नेता था। ईसा के नेतृत्व मे चन्दा हो रहा था इसलिए चन्दे मे बडी–बडी रकमे आने लगी। धनवाना ने बहुतसा रुपया दिया। उस समय वहा पर एक बुढिया आई। उस बुढिया ने दुष्काल–पीडित सहायक–फण्ड मे जमा कराने के लिए ईसा को एक पेसा दिया। बुढिया का दिया हुआ एक पेसा, बडे प्रेम से लेकर ईसा वहा उपस्थित सब लोगा को सम्बोधन करके कहने लगा कि–ऐ लखपति, करोडपति लोगो! तुमने चन्दे म हजारो–लाखो रुपया दिया हे लेकिन तुम्हारे दिये हुए हजारो–लाखा रुपये इस बुढिया के दिये हुए एक पेसे की समता नही कर सकते। तुमन हजारो–लाखो रुपया दिया, परन्तु थोडा देकर अपने पास, आवश्यकता से बहुत अधिक बाकी रख लिया हे। किन्तु यह बुढिया केवल तीन ही पेसे रोज कमाती हे, ओर तीन ही पेसे रोज का इसका खर्चा है। तीन पेसे म से यदि कभी कमी हो जाती हे तो जितनी कमी होती है इसका उतनी भूखी रहना होता हे। ऐसा हाते हुए भी इसने अपन तीन पेसा म से एक पेसा द दिया है। इस एक पेसे की कमी क कारण इसे भूखी रहना हागा। तुमन हजारा–लाखा रुपये दिये फिर भी तुम्ह कोई कष्ट न उठाना हागा परन्तु इसने यह एक पेसा भूखा रहकर दिया हे इसलिए सच्चा दान ता इसी का है।

मतलब यह कि गरीबी ओर कष्ट क समय अपनी आवश्यकता [illegible] म से दिये गये दान का विशष महत्व है। सगम [illegible] न अपन [illegible] खीर नहीं खाई थी। फिर भी मुनि क आन पर उसन अपन [illegible] की जाने वाली खीर दान कर दी। उस खीर क दान क प्रभाव [illegible] शालिभद्र क भव म विपुल सम्पत्ति प्राप्त हुई। खीर का दान [illegible] न न दिया हागा। न मालूम कितन धनिका क [illegible] जाता रहा हागा फिर भी धनिका का खीर दान [illegible] मिली थी जसी शालिभद्र का [illegible] उस गरीबी क समय खीर का दान किया [illegible] भी नहो थी। इसलिए गरीबी [illegible] भावना रखन का [illegible]

वाली की खोज मे ही भमण कर रहे थे। वे जिस तरह से कष्ट मे पडी हुई से दान चाहते हैं, साधारणतया वैसे कष्ट के समय, दान की बात का याद रहना भी कठिन है। एक राजकुमारी को अविवाहित अवस्था मे इस प्रकार कष्ट सहने की क्या आवश्यकता हो सकती थी? विवाहित स्त्रियो ने तो कष्ट उठाये भी हैं परन्तु राजकन्या सुन्दरी, सुकुमारी ओर अविवाहित होती हुई भी कष्ट क्यो उठावे? वह तो किसी राजा या राजकुमार को अपना पति बनाकर कष्ट मुक्त हो सकती थी। कष्ट भी किसी अपराध से नही किन्तु निष्कारण हो ओर कष्ट भी केसा? हाथो मे हथकडी तथा पेरो मे हथकडी पडी हो, सिर मुडा हुआ हो, और शरीर पर केवल एक काछ के सिवा दूसरा कोई वस्त्र न हो। इतना ही नहीं किन्तु जिसे तीन दिन से कुछ खाने–पीने को न मिला हो, जो तीन दिन से बिल्कुल ही भूखी हो ओर चोथे दिन केवल उर्द के सूखे बाकले खाने को मिले हो, वे भी दूसरे पात्र मे नही, निकृष्ट माने जाने वाले सूप मे। इस तरह कष्ट मे पडी हुई होने पर भी, जो दान देने की भावना से अतिथि की प्रतिक्षा कर रही हो और उस कष्ट की दशा मे भी जो दान दे उसी के हाथ का अन्न लेने की भगवान की प्रतिज्ञा थी। भगवान ने ऐसी कठिन प्रतिज्ञा क्यो की, इस विषय मे निश्चय पूर्वक कुछ नही कहा जा सकता, फिर भी विचारने से यही अनुमान होता है कि भगवान ऐसे अन्न मे महान् शक्ति समझते थे। क्योकि एक तो वह अन्न सदाचार–परायण कन्या के हाथ का होगा दूसरा कष्टप्रद अवस्था मे दिया हुआ होगा।

चन्दनबाला को भोयरे मे डालकर मूला घर मे ताला लगा कर अपने पीहर मे जा बेठी। सारे घर मे कोई भी नही रहा। केवल चन्दनबाला ही रही जो भोयरे मे बन्द थी। किसी दूसरे मनुष्य ओर विशेषत स्वभाव से ही डरपोक तथा दुर्बल हृदय मानी जाने वाली कन्या के लिए वह समय कैसे सकट का था। अन्धकारपूर्ण सुनसान और जिसमे बहुत दिनो से झाडू तक नही निकला था उस भोयरे मे किसी स्त्री का तो कहना ही क्या पुरुष भी भय का मारा मर सकता था। लेकिन चन्दनबाला उसमे हथकडी–बेडी से जकडी हुई पडी थी। फिर भी उसके हृदय मे न तो दु ख था न भय। वह उस दशा मे भी प्रसन्न थी। ओर सोचती थी कि माता की बडी कृपा हे, इसी से उन्होने मुझे ईश्वर–भजन के लिए ऐसा सुयोग दिया हे। मुझसे पिताजी विश्राम लेने ओर ईश्वर–भजन के लिए कहा ही करते थे लेकिन इसके लिए इस प्रकार अवकाश कभी नही मिला था। आज माता ने अनायास ही मुझे विश्राम ओर ईश्वर–भजन के लिए अवकाश दिया हे तथा स्थान भी ऐसा दिया हे कि जहा

किसी भी प्रकार का विघ्न नही हो सकता। योगी लोग एकात स्थान की खोज मे जगल मे जाते है और वहा ईश्वर–भजन करते है परन्तु माता ने मुझे घर मे ही ऐसा स्थान दिया है। माता का मुझ पर बहुत अनुग्रह है इसीसे उन्होने स्वय कष्ट उठा कर मुझे ऐसा सुयोग प्रदान किया है। वैसे तो यह स्थिति दु खदायिनी हो सकती थी और इस स्थिति मे पडने से रोना आ सकता था लेकिन धन्य है माता धारिणी को जिन्होने शिक्षा देकर मुझे इस योग्य बना दिया कि जिसे ससार दु ख और बुरा समझता है जिसके कारण खेद करता है, उसे ही मै अच्छा समझकर उसमे आनन्द मान रही हू। मुझे यह सुअवसर प्राप्त कराने मे मेरी माता, रथी की स्त्री का भी बहुत हाथ है। यदि उसने मुझे बाजार मे बिकने की आज्ञा न दी होती मै वही रहती मूला माता के यहा न आई होती तो ईश्वर–भजन का यह सुयोग कैसे प्राप्त होता? उन माता ने मुझ पर बडी कृपा की इसीसे मुझे यह सुअवसर मिला है।

चन्दनबाला को भोयरे मे तीन दिन बीत गये। उसे इस बात का पता ही न लगता था कि कब दिन निकला और कब रात हुई। उसके लिए तो सदा अमावस्या का अन्धकार ही था। इन तीन दिनो मे उसे न तो कुछ खाने को मिला था न पीने को कुछ मिला था। खाना–पीना तो दूसरी बात है शुद्ध और स्वतन्त्र पवन का स्थान भी नही मिला था। इस तरह के दूषित [illegible] दिन जीवित रहना भी कठिन होता है लेकिन चन्दनबाला के [illegible] महान कार्य होना था और उसका आयुष्य–बल प्रबल था इससे उसके जीवन की क्षति नही हुई।

चौथे दिन दोपहर के लगभग धनावा सेठ प्रवास से घर आया। [illegible] देखा कि घर का द्वार बन्द है और ताला लगा हुआ है [illegible] नौकर है न दासी है। यह देखकर सेठ दग रह गया। [illegible] लगा कि आजतक कभी भी मेरे घर का द्वार बन्द नही हुआ [illegible] का क्या कारण है। घर के सब लोग कहा चले गये? [illegible] आदमी तो होना ही चाहिए था। कही मेरी पत्नी [illegible] होगी और नौकर–चाकर भी इधर–उधर चले गये [illegible] कहा गई?

सेठ ने अपने पडोसियो से [illegible]
और घर के सब लोग कहा गये [illegible]
तीन दिन से ताला लगा [illegible]
भी वे लोग भी आज तीन दिन [illegible]

भी ताला देखकर वापस चले जाते हैं लेकिन हम यह नही जानते कि ताला क्यो लगा है? ओर सेठानीजी कहा गई है? सेठ ने फिर प्रश्न किया कि वह तो कही अपने पिता के यहा गई होगी लेकिन पुत्री चन्दन कहा गई होगी? सेठ के इस प्रश्न के उत्तर मे पडोसियो ने कहा कि—हमने तीन दिन से उसे भी नही देखा।

सेठ अपने पडोसियो से इस तरह बाते कर रहा था, इतने ही मे वहा सेठ के घर का एक नोकर आ गया। सेठ ने उससे घर मे ताला लगने का कारण पूछा। उसने उत्तर दिया कि मुझे अधिक तो कुछ मालूम नही हे लेकिन आपके जाने के बाद सेठानी ने हम सबको इधर—उधर भेज दिया था, घर मे केवल सेठानी ओर चन्दनबाला ये दो ही रह गई थी। हम सबके जाने के बाद क्या हुआ ओर वे दोनो कहा गई, यह पता नही हे। फिर तो द्वार पर ताला ही लगा दिखाई दिया।

यह वृत्तात सुनकर सेठ को चन्दनबाला के जीवन की ओर से सन्देह हुआ। वह मूला का स्वभाव ओर चन्दनबाला से उसका वेमनस्य जानता था। इसलिए वह सोचने लगा कि चन्दना अवश्य ही सकट मे पड गई है। सेठ ने उसी नौकर को अपनी ससुराल मे सेठानी का पता लगाने ओर यदि वह वहा हो तो उसे बुलाकर लाने अथवा उसके पास से घर मे लगे हुए ताले की चाबी लाने के लिए भेजा। नौकर सेठ के ससुराल गया। सेठानी को वहा देखकर उसने उससे कहा कि सेठ आये हैं इसलिए या तो आप चलिये अथवा घर मे लगे हुए ताले की चाबी दीजिये। सेठ का आना सुनकर सेठानी को कुछ धसका तो हुआ परन्तु इस विचार से उसे साहस रहा कि वह दुष्टा, भोयरे मे तीन दिन से भूखी—प्यासी पडी हे, इसलिए अवश्य ही मर गई होगी ओर कदाचित न भी मरी होगी तब भी सेठ को उसका पता नही लग सकता। अभी एक दो रोज तो में घर पर जाऊगी ही नही फिर जब जाऊगी तब सेठ उसके विषय मे पूछेगे तब कह दूगी कि वह तो किसी अज्ञात पुरुष के साथ निकल गई ओर घर मे से अमुक—अमुक माल भी ले गई। इस तरह उसी पर अपराध रख दूगी।

सेठानी ने उस नोकर को घर के ताले की चाबी दे दी। नोकर ने चाबी लाकर सेठ को दे दी। सेठ घर का ताला खोलकर भीतर गया, लेकिन उसे घर मे चन्दनबाला न दीख पडी। चन्दनबाला को न देखकर सेठ जोर—जोर से उसका नाम लेकर उसे पुकारने लगा। भोयरे के किवाडो की सधी म होकर सेठ का यह शब्द चन्दन के कानो मे पडा। अपना नाम सुनकर

ओर सेठ का शब्द पहचानकर चन्दनबाला सोचने लगी कि पिताजी मुझे पुकार रहे हैं। उनका करुणापूर्वक शब्द बता रहा हे कि वे मेरे लिए कष्ट पा रहे हैं। इस प्रकार सोचती हुई उसने वहा से उत्तर दिया–पिताजी आप दु ख मत करिये में यहा आनन्द मे हू। चन्दनबाला का अस्पष्ट उत्तर सेठ ने सुना। वह शब्द के सहारे भोयरे की ओर चला। सेठ चन्दन को पुकारता जाता था और चन्दनबाला उसे उत्तर देती जाती थी, इस कारण सेठ जेसे–जेसे भोयरे के समीप होता जाता था चन्दनबाला के शब्द की अस्पष्टता भी कम होती जाती थी। भोयरे के द्वार के समीप पहुचने पर सेठ को विश्वास हो गया कि चन्दन इसी मे हे। उस दुष्टा ने चन्दन को इस भोयरे मे डाल रखा है।

सेठ ने भोयरे के किवाड खोलकर चन्दनबाला को आवाज दी। इसवार उसे चन्दनबाला का उत्तर स्पष्ट सुनाई पडा। सेठ उस अंधेरे भोयरे म उतरा। वह धीरे–धीरे टटोलता हुआ चन्दनबाला के पास पहुच गया। पास पहुचने पर उसे मालूम हुआ कि चन्दनबाला के हाथ–पाव जजीर की हथकडी–वेडी से जकडे हुए हैं। चन्दनबाला को इस दशा मे पडी जान कर सेठ को वहुत दु ख हुआ। उसने साहस करके चन्दनबाला को उठाया और जेसे–तेसे भोयरे से बाहर लाया। बाहर लाकर उसने जेसे ही चन्दनबाला का मुडित मस्तक उसके शरीर पर लगी हुई काछ ओर हाथ–पाव म पडी हुई हथकडी–वडी का देखा वेसे ही उसका साहस छूट गया। वह जार जार से रो पडा ओर कहने लगा कि हाय उस दुष्टा न तुझ सती की एसी दुर्दशा की। अपनी ओर से तो उसने तरे का मार डालने तरी घात करने म किसी प्रकार की कमी नही की थी। अपनी समझ स उसन तुझ को मार [illegible] [illegible] तो मेरा भाग्य अच्छा था इससे मैं तुझको जीवित देख सका।

इस तरह कह–कहकर सठ विलाप करने लगा। [illegible] समझान आर धेर्य दन लगी। परन्तु उस समय उसको [illegible] रूपी गर्म तव पर पडी हुई जल की बून्द के [illegible] दर्द किसी तरह कम न हाता था। चन्दनबाला ने [illegible] रुदन बन्द करना कठिन ह। इस समय [illegible] इनका दु ख–प्रवाह रुक सकता है। [illegible] कहा–पिताजी आप ता रान [illegible] दिन आप गय थ [illegible] उसी दिन [illegible] मुझ कुछ खान का दीजिये [illegible] समय मन यह प्रतिज्ञा की है [illegible]

आपके हाथ मे आवेगी मैं वही चीज पारणा करने के लिए लूगी, दूसरी नई तैयार की हुई या लाई हुई चीज न लूगी।

चन्दनबाला का कथन सुनकर सेठ यह विचार कर रोना भूल गया कि यह सती आज तीन दिन से भूखी है। वह उठकर रसोई गृह मे से कोई खाद्य सामग्री लाने के लिए गया, लेकिन उसने देखा कि रसोई घर पर भी सेठानी का ताला पडा हुआ है। वह विवश होकर इधर–उधर देखने लगा। उस समय वहा पर उसे दूसरी ऐसी कोई चीज दिखाई नही दी, जिससे पारणा किया जा सके, केवल एक पात्र मे सूखे हुए उर्द के बाकुले दिखाई दिये जो तीन–चार दिन पहले सेठ के घोडे के लिए उबाले गये थे और पात्र मे बचे रह गये थे। सेठ ने सोचा कि प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए मुह मे डालकर पारणा करने के काम तो ये बाकुले आ सकते है लेकिन इन्हे रखू किस पात्र मे? इस प्रकार सोचता हुआ वह इधर–उधर कोई पात्र देखने लगा। सेठानी की कृपा से कोई पात्र भी नही था, केवल एक सूप टका हुआ था। सेठ उस सूप मे ही उर्द के कुछ बाकुले रखकर चन्दनबाला के पास ले आया। उसने चन्दनबाला से कहा–पुत्री खाने योग्य कोई चीज बाहर नही है, केवल ये उर्द के बाकुले मिले है जिन्हे में तेरी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए ले आया हू। तू तीन दिन की भूखी है। ये उर्द के बाकुले खावेगी तो हानि करेगे। इसलिए तुम एक दाना मुह मे डालकर, अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर लो। मै अभी लुहार को बुलाकर लाता हू जो तुम्हारी हथकडी–बेडी भी काटेगा और रसोई घर आदि के ताले भी तोडेगा। रसोई घर के खुलते ही मैं तुम्हारे योग्य भोजन बनाऊगा। वह भोजन करके तुम अपनी क्षुधा मिटाना।

चन्दनबाला ने प्रसन्नता पूर्वक सेठ के हाथ से वह सूप ले लिया, जिसमे सूखे हुए उर्द के बाकुले रखे थे। वह यह विचार कर प्रसन्न थी कि मुझे तीन दिन के उपवास के पश्चात् पारणा करने के लिए वह अन्न मिला है जो सब प्रकार के अन्नो से श्रेष्ठ माना जाता है। और मिला भी है सूप पात्र मे। इस वेश मे मिला हुआ यह अन्न क्या शक्ति देगा यह नही कहा जा सकता। यद्यपि मैंने आज तीन दिन से कुछ खाया–पीया नही है और मुझे क्षुधा बहुत सता रही है फिर भी क्या में क्षुधा से विकल होकर अतिथि को कुछ दिये बिना ही खा लूगी। क्या में भूख के दु ख से घबरा कर, ऐसा पाप कर डालूगी? आज तक तो कभी भी मैंने अतिथि को दिये बिना भोजन नही किया ओर आज तीन दिन के अनायास तप के पारणे के समय इस पुण्य व्रत को भूल जाऊगी। कष्ट के कारण धर्म से विमुख हो जाऊगी। चाहे कुछ भी हो

चाहे भूख से प्राण भी निकल जाव तब भी मे अतिथि को दान दिये बिना कदापि पारणा नही कर सकती।

इस प्रकार विचारकर हाथ मे उर्द के बाकुलो का सूप लिये हुए चन्दनबाला धीरे-धीरे सरकती हुई द्वार पर आई। वह चोखट पर बैठ गई। उसका एक पाव तो चोखट के बाहर था और दूसरा पाव चोखट के भीतर था। उसके हाथ म वह सूप था जिसमे तीन दिन पहल के उबले हुए उर्द के बाकुले थे। इस तरह बेठी हुई चन्दनबाला चारा ओर दृष्टि फेलाकर किसी अतिथि को देख रही थी तथा सोच रही थी कि कोइ अतिथि आवे और म उसको दान दू।

जिस समय चन्दनबाला दान देने की भावना से अतिथि की प्रतीक्षा कर रही थी उसी समय भगवान महावीर अभिग्रह के अनुसार अन्न की गवेषणा मे उस ओर आ निकले। चन्दनबाला ने भगवान को देखा और भगवान ने चन्दनबाला को देखा। भगवान को देखकर चन्दनबाला को [illegible] हुआ। हर्ष क मारे उसे रोमाच हो आया। वह अपने मन म कहने लगी कि मेरा सद्भाग्य हे जो तीन दिन क तप के पारणे के समय भगवान महावीर को दान देने का सुअवसर प्राप्त होगा। भगवान महावीर को चन्दनबाला पहचानती थी। वे चन्दनबाला के नाना राजा चेडा की बहन महारानी त्रिशला के पुत्र थे। भगवान महावीर भी चन्दनबाला को जानते थे। चन्दनबाला को देखकर भगवान ने विचार किया कि मेरे अभिग्रह की सब बाते तो [illegible] केवल एक बात की कमी है। इसकी आखो म आसू नही है। जब तक [illegible] भी न हो तब तक मेरा अभिग्रह पूर्ण नही हो सकेगा और अभिग्रह की [illegible] बात पूरी हुए बिना म दान नही ले सकता।

अभिग्रह की बातो म अपूर्णता देखकर भगवान महावीर [illegible] लौट चले। भगवान को लौटते देखकर चन्दनबाला को महान [illegible] अपने मन म कहने लगी कि हाय ! केसा [illegible] पधारे फिर भी मेरे से भिक्षा न लेकर लौट [illegible] भगवान भी मुझे छोड देगे।

सासारिक लोगो की दृष्टि [illegible] थी फिर भी वह उस कष्ट [illegible] भी बात से ऐसा दुख नहीं हुआ [illegible] दान न दे पाने के कारण हुआ [illegible] यहा तक कि अपनी [illegible]

मे आसू नही आये, लेकिन भगवान महावीर सामने आकर भी लोट गये, इस दु ख के कारण उसकी आखो से आसू बह चले। वह अपने दुर्भाग्य तथा दुष्कर्म को बार–बार धिक्कारती थी ओर भगवान को दान देने का सुयोग न मिलने के कारण आखो से आसू बहा रही थी।

भगवान महावीर कुछ दूर जाकर फिर चन्दनबाला की ओर लोट पडे। उन्होने सोचा कि अभिग्रह की बातो मे से केवल एक ही बात की कमी थी। अभिग्रह की ओर सभी बाते तो मिलती थी केवल आखो से आसू ही नही थे। शायद हे कि मेरे लोट जाने से यह कमी भी पूरी हो गई हो, इस तरह विचारकर भगवान फिर चन्दनबाला के सामने आये। इस बार उन्होने देखा कि अभिग्रह पूर्ण होने के लिए जिन बातो का होना आवश्यक हे, वे सभी बाते मोजूद हैं। भगवान को पुन अपने सामने देखकर चन्दनबाला को भी अपार आनन्द हुआ। आखो मे से आसू तो निकल ही रहे थे, साथ मे हर्ष का मिश्रण ओर हो गया तथा इस प्रकार भगवान के अभिग्रह की सभी बाते मिल गई। अभिग्रह की सभी बाते मौजूद देखकर, भगवान ने भिक्षा के लिए चन्दनबाला के आगे हाथ फेला दिये। अपने भगवान को याचक रूप मे हाथ फेलाये देखकर चन्दनबाला को वर्णनातीत हर्ष हुआ। उसी हर्षावेश मे उसने भगवान के कर–पात्र मे उर्द के बाकुलो की भिक्षा दी। चन्दनबाला के दिये हुए उर्द के बाकुले जेसे ही भगवान के हाथ मे पडे वेसे ही आकाश मे देवगण दुदुभी बजाने ओर चन्दनबाला का जय–जयकार करने लगे। वे कहने लगे–धन्य है धारिणी ओर दधिवाहन की पुत्री चन्दनबाला को जिसने भगवान महावीर को दान देकर ससार के भव्य जीवो का उद्धार करने वाले महापुरुष के प्राणो की रक्षा की। इस प्रकार जय–जयकार करते हुए ओर दुदुभी बजाते हुए देवगण धनावा सेठ के यहा सोनेया आदि पच द्रव्यो की वृष्टि करने लगे।

चन्दनबाला द्वारा दिये गये उर्द के बाकुलो का दान लेकर भगवान महावीर ने 5 मास 25 दिन के तप का पारणा किया। भगवान का पारणा होने से ससार के सभी भव्य जीवो को आनन्द हुआ। उसी समय अनेक देवताओ सहित इन्द्र चन्दनबाला की सेवा मे उपस्थित हुए। इन्द्र की शक्ति से चन्दनबाला के हाथ–पाव की हथकडी–बेडी, दिव्य आभूषणो मे परिणत हो गई। जिस शरीर पर केवल काछ लगी हुई थी वह शरीर दिव्य वस्त्र से सुशोभित हो गया ओर जिस मस्तक का मूला ने मुण्डन कर डाला था, वह कोमल तथा सुन्दर केशो से परिपूर्ण हो गया।

इन्द्र और देवताओ ने दिव्य सिहासन प्रकट करके उस पर आदर-पूर्वक चन्दनबाला को बेठाया, तथा स्वय उसके सामने खडे होकर उसकी स्तुति करने लगे। वे कहने लगे-हे सति! तुम्हारा गुणगान करने मे हम पूरी तरह समर्थ नही हैं। जिसको भगवान महावीर ने भी आदर दिया है जिसके आगे स्वय याचक बनकर हाथ फेलाये हैं उसकी प्रशसा हम क्या कर सकते हैं। तुमने भगवान को दान क्या दिया हे सूखते हुए महापुरुष रूपी कल्पवृक्ष को जल-सिचन किया हे। जिस महापुरूष द्वारा जगत के सब जीवो का कल्याण होना हे, तुमने उस महापुरुष के प्राणो की रक्षा की हे इसलिए सारा ससार तुम्हारा ऋणी हे। तुमने महारानी धारिणी की भावना को साकार रूप दिया हे। महारानी धारिणी ने तुम्हे जो शिक्षा दी थी तुमने उस शिक्षा का पूर्णतया पालन किया है। तुमने धर्म की रक्षा करके दधिवाहन तथा धारिणी को धन्य बनाया हे। हम देव भी तुम्हारे कृतज्ञ हैं।

इस प्रकार चन्दनबाला की स्तुति करके इन्द्रादि सब देव अपने-अपने स्थान को गये। चन्दनबाला, दिव्य वस्त्रा-भूषण पहन सिहासन पर बेठी रही।

सम्मेलन

क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यंकशयन।
क्वचिच्छाकाहारा क्वचिदपि च शाल्योदनरुचि ।।
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो।
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दु ख न च सुखम्।।

अर्थात्–कभी जमीन पर भी सो रहते हैं, ओर कभी उत्तम पलग पर कभी साग–पात खाकर रह जाते हैं ओर कभी दाल–भात खाते हे कभी फटी–पुरानी गुदडी पहनते हैं ओर कभी दिव्य वस्त्र धारण करते हैं। फिर भी कार्य–सिद्धि के लिए कमर कस लेने वाले पुरुष इनमे से न तो किसी को सुख का कारण मानते हैं न किसी को दु ख का। वे, सुख ओर दु ख दोनो ही को कुछ नही समझते।

मनस्वी लोग कार्य की सिद्धि के लिए सुख–दु ख के झगडे मे नही पडते। वे चाहे दु ख हो चाहे सुख हो अपना कार्य सिद्ध करना चाहते हे। कार्य के आगे वे सुख या दु ख को कुछ भी नही मानते। यदि वे किसी को दु ख मानकर उससे घबराने लगे ओर किसी को सुख मानकर प्रसन्न होने लगे, तो अपना कार्य कदापि सिद्ध नहीं कर सकते। बल्कि जिसे दु ख माना जाता है, उसके सामने वे घबराने के बदले दृढ हो जाते हैं, और जिसे सुख कहा जाता है उससे वे हर्षित होने के बदले नम्र हो जाते हैं। सुख या दु ख उनकी स्वाभाविक प्रसन्नता मे कोई अन्तर नहीं ला सकता। वे प्रत्येक समय स्वाभाविक ही प्रसन्न रहते हैं।

चन्दनबाला पर उसकी माता धारिणी ने शाति–समर द्वारा देश पर लगा हुआ दाग धोने का बोझ डाला था। उसकी इच्छा थी कि मेरी पुत्री ससार के सामने एक नूतन आदर्श रखे ससार के स्त्री–पुरुष मे जो दुर्भावना फेल रही हे उसे मिटावे, और ब्रह्मचारिणी रहकर ससार के लोगो का कल्याण

करे। धारिणी द्वारा रखे हुए बोझ को अन्त तक पहुचाने म चन्दनबाला को अनेक दु खो का सामना करना पडा फिर भी चन्दनबाला घबराई नहीं किन्तु माता द्वारा बताई गई कार्यपद्धति पर बराबर दृढ रही। उसकी इस दृढता ने ही, उसे इस योग्य बना दिया, कि मनुष्य की कोन कहे इन्द्रादि देवो को भी उसके आगे नत–मस्तक होना पडा, ओर अपने पर उसका ऋण मानना पडा।

चन्दनबाला की स्तुति करके इन्द्रादि देव अपने–अपने स्थान को गये। सारे नगर म चन्दनबाला द्वारा भगवान को दान दिये जाने ओर सोनेया आदि वृष्टि का समाचार विद्युतवेग के समान फेल गया। मूला की कोई दासी या उसके पडोस मे रहने वाला कोई व्यक्ति शीघ्रता से मूला के पास गया। उसने मूला से कहा कि तुम्हारे घर मे सोनेया की वृष्टि हुई हे। यह समाचार सुनकर मूला को प्रसन्नता हुई, लेकिन साथ ही इस बात की चिन्ता भी हुई कि कोई मेरे यहा से सोनेया न उठा ले जावे। मैं चन्दनबाला को हथकडी–बेडी से जकड कर भोयरे मे डाल आई हू उसका क्या होगा, आदि बातो की ओर मूला का किंचित भी ध्यान नही था। उसका ध्यान तो केवल इस बात की ओर था कि कोई मेरे यहा से सोनेया न उठा ले जाव। सोनेया क लोभ स घिरी हुई मूला घर की ओर दोडी। उत्सुकता क कारण उसका पाव कहीं का कहीं पड रहा था। वह जेसे–तेसे घर आई। उसने दखा कि घर म सोनेया का ढेर लगा हे। यह देखकर वह प्रसन्न हुई ओर अपने मन मे कहने लगी कि मेरा भाग्य प्रबल हे, इसीसे लोगो की नीयत ठिकाने रही, ओर य सोनेया बच रहे।

मूला इस प्रकार विचार कर प्रसन्न हो रही थी। इतने ही म उसने दिव्य वस्त्रालकार पहन हुई चन्दनबाला को सिहासन पर बेठी देखा। [illegible] को इस प्रकार बेठी देख मूला को बहुत ही आश्चर्य हुआ। चन्दनबाला [illegible] मूला को देखा। मूला को देखते ही वह यह कहती हुई सिहासन स उतर [illegible] कि ओह! माता पधारी हैं। वह शीघ्रता स मूला क सामने [illegible] को आदर सहित प्रणाम किया ओर अपने देव–प्रदत्त सुन्दर [illegible] पाव पोछती हुई कहने लगी–माता यह सब आप ही [illegible] आप ही की कृपा स अपने यहा भगवान महावीर पधारे थे [illegible] का सुयोग मुझे प्राप्त हुआ ओर यह सब [illegible] आप ही की कृपा स अभी यहा इन्द्रादि देव [illegible]

चन्दनबाला स इस प्रकार [illegible] लज्जित हो रही थी वह सोच रही थी [illegible] साथ कैसा व्यवहार किया था और [illegible]

मैने तो अपनी ओर से इसे मार डालने का ही प्रयत्न किया था फिर भी यह मेरा उपकार मान रही है।

लज्जा की मारी मूला चन्दनबाला की सब बाते सुनकर भी चुप थी। चन्दनबाला समझ गई कि माता इस समय अपने कृत्य से लज्जित हैं, इसलिये वह मूला का हाथ पकडकर उसे सिहासन पर ले गई और अपने साथ बैठाया। मूला को साथ लेकर चन्दनबाला बैठी ही थी इतने ही मे सेठ भी आ गया। उसको मार्ग मे सब वृत्तान्त मालूम हो चुका था इसलिए वह प्रसन्न था। सेठ आया तो पसन्न होता हुआ लेकिन चन्दनबाला के साथ बैठी मूला को देखते ही उसे क्रोध हो आया। सेठ को देखकर मूला भी इस भय से काप उठी कि अब ये मुझे न मालूम क्या कहेगे और न मालूम कैसा दण्ड देगे? चन्दनबाला ने भी सेठ को आया देखा। सेठ का आदर करने के लिये वह सिहासन से नीचे उतर पडी और उसके साथ ही मूला भी उतर पडी। सेठ मूला से कहने लगा कि हे दुष्टा! तुझे इस सती के साथ बैठते शर्म नही आई। तू इस पुत्री के साथ बेठने योग्य हे? पुत्री के साथ सिहासन पर बैठने और सोनैया समेटने के लिए तो आ गई परन्तु अब तक कहा गई थी। अब तक क्यो नही आई थी? आती भी कैसे? कौनसा मुह दिखाने के लिए आती। तू तो निर्लज्जा है। इसी से फिर यहा आई है। यदि तुझे जरा भी शर्म होती तो क्यो आती? तुझ पापिनी का मुह देखने से भी पाप लगता है। जिसने इस निर्दोष सती के प्राणो को सकट मे डाल दिया इसको मार डालने का ही उपाय किया, उस पापिनी का मुह देखने से पाप लगना स्वाभाविक ही है। इसलिये तू यहा से हट जा। इस सती का स्पर्श मत कर। और जहा तेरी इच्छा हो काला मुह करके वहा चली जा।

इस प्रकार सेठ मूला पर कुपित हो उठा। उसी समय सेठ को प्रणाम करके चन्दनबाला उससे कहने लगी– पिताजी, आप माता पर व्यर्थ ही क्यो रुष्ट होते है। माता ने अपराध क्या किया है? इन्होने तो और उपकार किया है। इसलिए इनको धन्यवाद देना चाहिए लेकिन आप तो और क्रुद्ध हो रहे हैं यह क्यो? चन्दनबाला का कथन सुनकर सेठ साश्चर्य कहने लगा–पुत्री! तू यह क्या कह रही है। जिसने तेरे हाथ–पाव मे हथकडी–बेडी डालकर, तेरा सिर मूडकर आर तुझे [illegible] पहनाकर अधेरे भोयरे मे डाल दिया, वह उपकार करने वाली कैसे हो सकती है। इसने अपनी ओर से तो तुझे मार डालने का ही प्रयत्न किया था। तेरे को मार डालने मे इसने क्या कसर रखी थी? फिर भी तू कहती हे कि इसने उपकार किया हे। तेरी यह बात मेरी समझ म नही आती।

सेठ के कथन के उत्तर मे चन्दनबाला बोली—पिताजी आपने सुना होगा कि आपके जाने के बाद यहा भगवान महावीर पधारे थे, मेरे हाथ से उन्होने उर्द के बाकुलो का दान लिया था और इस कारण इन्द्रादि देव सोनेया—वृष्टि करके यहा उपस्थित हुए थे। मेरे शरीर पर आप जो परिवर्तन देख रहे हे वह सब भगवान के पधारने ओर इन्द्रादि के आने से ही हुआ है। भगवान के पधारने ओर उन्हे दान देने के कार्य को तो आप भी उत्कृष्ट ही मानेगे लेकिन इस उकृष्ट कार्य का कारण कोन हे, इसे सोचो। भगवान 5 मास 25 दिन से निराहार विचर रहे थे। क्या उन्हे अन्न नही मिलता था? क्या ससार मे कोई दाता न था? ससार मे भगवान जेसे पात्र को दान देने की अभिलाषा बहुतो को होगी, फिर भी भगवान ने किसी का दिया हुआ अन्न नही लिया, इससे स्पष्ट है कि भगवान ने कोई न कोई अभिग्रह किया था और मेरे से उस अभिग्रह की पूर्ति जानकर ही दान लिया। भगवान का क्या अभिग्रह था, यह बात मे तो नही जानती थी पर इन्द्रादि देवो के कथन से ज्ञात हुआ कि भगवान ने तेरह बातो का अभिग्रह किया था। उनकी प्रतिज्ञा थी कि जो राजकुमारी हो, अविवाहित हो, सदाचारिणी हो, जिसका सिर मुडा हुआ हो जिसके शरीर पर केवल काछ ही हो जिसके हाथो मे हथकडी और पावो मे बेडी पडी हो, जो तीन दिन से भूखी हो जिसका एक पाव चोखट के बाहर तथा दूसरा पाव चोखट के भीतर हो, जो हाथ मे सूप लिए हुए हो तथा उस सूप मे उर्द के बाकुले रहे हो, जो दान देने की भावना से [illegible] की प्रतीक्षा मे इधर—उधर देख रही हो और जो प्रसन्न भी हो, तथा जिसकी आखो मे आसू भी हो, ऐसी कोई कन्या के हाथ से यदि अन्न मिलेगा [illegible] तो मे पारणा करूगा। नही तो शरीर नष्ट चाहे हो जावे [illegible] पिताजी भगवान का यह अभिग्रह माता की कृपा से ही पूर्ण हुआ है, [illegible] बातो के कारण, आप माता को बुरी कह रहे हे और माता पर [illegible] उन्ही माता से भगवान का अभिग्रह पूर्ण हुआ है। इस प्रकार [illegible] ही क्या सारे ससार पर उपकार किया हे या नही? [illegible] अपशब्द कहकर इनका अपमान मत करिये। [illegible] भगवान महावीर का अपमान करना है।

चन्दनबाला ने सेठ को इस प्रकार [illegible]

और मूला को लेकर सिंहासन पर [illegible]

सारे नगर मे यह [illegible]

बाजार मे खडी हुई [illegible]

जो धनावा सेठ के हाथ बिकी थी राजा दधिवाहन और रानी धारिणी की कन्या है। उसने 5 मास 25 दिन के तपस्वी भगवान महावीर को दान दिया। जिससे सोनैया आदि की वृष्टि हुई है और इन्द्रादि देवो ने भी उसकी सेवा मे उपस्थित होकर स्तुति की है। इस प्रकार की खबर सारे नगर मे फेल गई। रथी ओर उसकी स्त्री ने भी यह समाचार सुना। रथी की स्त्री का स्वभाव उसी दिन से बदल गया था जिस दिन चन्दनबाला बिकी थी। वह चन्दनबाला को रथी के साथ बाजार मे बिकने के लिए भेजने के पश्चात् उत्सुकता–पूर्वक इस बात की प्रतीक्षा कर रही थी कि उस लडकी को बेचकर मेरे पति 20 लाख सोनेया कब लावे। वह झरोखे मे से बार–बार मार्ग की ओर देखती थी। इतने ही मे उसने देखा कि कुछ आदमी सोनैया लादे हुए चले आ रहे हैं ओर आगे–आगे खिन्न चित्त उसके पति आ रहे हैं। सोनेयो की आय देखकर रथी की स्त्री को प्रसन्नता हुई। देखते ही देखते रथी सोनेया लिए सेठ के आदमियों सहित घर मे आया। सेठ के आदमी रथी के घर मे सोनैया रख कर चले गये। रथी दु खित तो पहले से ही था, पुत्री–विहीन घर देखकर वह और दु खित हो गया। वह अपना दु ख हृदय मे ही नही रोक सका किन्तु रुदन के रूप मे उसका दु ख फूट निकला। रथी की स्त्री जले पर नमक छिडकने की तरह रथी से कहने लगी कि आप रो क्यो रहे हे। अपने यहा इतने सोनैया आये इसलिये यह समय तो प्रसन्नता का है फिर आप दु ख क्यो कर रहे हैं? रथी की स्त्री इस प्रकार बार–बार कहती थी लेकिन रथी न तो उसकी बातो पर ही ध्यान देता था न उसकी ओर दृष्टि उठा कर देखता ही था। वह तो केवल यही कहता था कि हाय पुत्री, आज तू इस घर को छोडकर चली गई। मेरी कुभार्या के कारण मुझे अभागा बना गई। तूने उस वेश्या को भी थोडी ही देर मे पवित्र बना दिया लेकिन मेरी दुष्टा स्त्री तेरा महत्व न जान सकी।

इस प्रकार रुदन करते हुए रथी के आस–पास उसके घर के नोकर–चाकर आदि भी एकत्रित हो गए ओर रथी के साथ ही वे चन्दनबाला की प्रशसा करके उसके चली जाने का दु ख करने लगे, तथा रथी से पूछने लगे कि उसने वेश्या को किस प्रकार सुधारा ओर वह किसके हाथ किस प्रकार बिकी। रथी ने वेश्या के जाने बन्दरो के कूदने, चन्दनबाला द्वारा उसकी सहायता होने ओर फिर धनावा सेठ के यहा जाने आदि का सब वृत्तान्त कहा। रथी द्वारा कथित वृत्तान्त सुनकर सब लोग यह कहते हुए और दु खी हो गये कि वास्तव मे वह सती ऐसी ही थी।

अपने पति को तथा घर के ओर सब लोगो को इस प्रकार विलाप करते देखकर रथी की स्त्री विचारने लगी कि जिसको मे बुरी समझती थी

उसके लिए तो ये सभी लोग इस प्रकार दुखी हो रहे हैं। यदि यह बुरी है तो केवल मुझे ही बुरी क्यो लगी? इन सब लोगो मे से किसी को भी बुरी क्या नही जान पडी। इस प्रकार विचारते–विचारते रथी की स्त्री के स्वभाव मे एकदम से परिवर्तन हो गया। वह इस निर्णय पर पहुची कि वास्तव मे वह बुरी नही थी, मैं ही बुरी हू। इस निर्णय पर पहुचने के पश्चात् उसे चन्दनबाला को घर से निकालने के कारण पश्चात्ताप होने लगा ओर वह एकदम से रोकर रथी के पेरो पर गिर पडी। वह करुण स्वर मे रथी से कहने लगी कि मुझ पापिन को क्षमा करो। मैने उस सती पर सन्देह करके उसे व्यर्थ ही कलक लगाया। अब तक मै उसका महत्व नही जान सकी थी लेकिन अब मुझे उसका महत्त्व मालूम हुआ हे। अब तो वह सती यहा से चली गई हे ओर उसे अब लोटा लाने का प्रयत्न व्यर्थ हे फिर भी मे आज से प्रतिज्ञा करती हू कि अब से उसी के बताये हुए मार्ग पर चलूगी। वह जिस तरह काम करती थी जैसा नम्र व्यवहार करती थी ओर जिस तरह ब्रह्मचर्य का पालन करती थी उसी तरह में भी करूगी। वह सती शरीर से तो गई हे, परन्तु अपने आचरण का आदर्श छोड गई हे। में उसी आदर्श आचरण को अपनाऊगी इन बीस लाख सोनेया को हाथ भी न लगाऊगी। अपनी स्त्री का अनायास ऐसा परिवर्तन देखकर, रथी ओर उसके घर के अन्य सब लागो को बहुत आश्चर्य हुआ। रथी की स्त्री ने, सब बाते यथार्थ भी कर दिखाई जो उसने कही थी। इस तरह रथी की स्त्री ने कुछ ही दिना मे अपने कार्य–व्यवहार द्वारा [illegible] को दूसरी वसुमति ही सिद्ध कर दिखाया।

रथी की स्त्री ने भी यह सुना कि जिस सती को मने बिकवाया था वह सती धनावा सेठ के यहा हे उसने भगवान महावीर को दान दिया है इससे इन्द्रादि देवो ने उसकी स्तुति तथा सोनेया आदि की वृष्टि की [illegible] अब नगर के लोग उसके दर्शन करने के लिए जा रहे हैं। यह सुनकर [illegible] की स्त्री ने विनय ओर नम्रता पूर्वक रथी से कहा–नाथ [illegible] को मने कष्ट दिया था ओर बाजार मे बिकवाया था [illegible] के यहा हे तथा उसने भगवान महावीर को [illegible] दिया है [illegible] ने उसकी महिमा की हे ओर सब लोग उसके [illegible] बहुत दिनो से उस सती के दर्शन करने की [illegible] दर्शन करा दे तो आपकी बडी कृपा होगी

अपनी पत्नी की यह प्रार्थना सुनकर [illegible]

उसने अपनी स्त्री से कहा कि [illegible]

और कहता हू कि चलो, बहुत दिनो के बाद आज उस सती का दर्शन करके अपने नेत्र सफल करे। यह कहकर रथी ने रथ तैयार कराया, तथा अपनी पत्नी सहित चन्दनबाला का दर्शन करने चला।

उधर वेश्या ने भी सुना कि जिस लडकी को मैं वेश्या बनाने के लिए खरीद रही थी, वह महाराजा दधिवाहन तथा महारानी धारिणी की पुत्री थी ओर उसने भगवान महावीर को दान दिया, इससे इन्द्रादि देव धनावा सेठ के यहा उसकी महिमा कर रहे हैं। चन्दनबाला ने उस वेश्या को पहले ही पवित्र बना दिया था। चन्दनबाला के उपदेश से वह वेश्यावृत्ति त्यागकर पवित्र जीवन बिता रही थी और चन्दनबाला के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती रहती थी। धनावा सेठ के यहा वह सती प्रकट हुई है, यह सुनकर उसके हर्ष का पार नही रहा। वह भी चन्दनबाला के दर्शन करने के लिए चली।

धनावा सेठ और मूला को साथ लिए हुई चन्दनबाला सिहासन पर बेठी थी। उसी समय वहा अपनी पत्नी को लिए हुए रथी आ गया। रथी और उसकी स्त्री को देखते ही चन्दनबाला सिहासन से उतर पडी। चन्दनबाला के साथ ही धनावा सेठ और मूला भी सिहासन से उतर गये। चन्दनबाला, माता–माता' कहती हुई रथी की स्त्री की ओर चली। और रथी की स्त्री पुत्री, मुझ पापिन को क्षमा करो कहती हुई चन्दनबाला की ओर चली। समीप होने पर दोनो ही एक दूसरे के पैरो पर गिर पडी। चन्दनबाला तो कहती थी कि माता, मुझ पर आपका अनन्य उपकार है। यह सब आप ही की कृपा का परिणाम है। और रथी की स्त्री कहती थी, कि 'हे पुत्री, मुझ पापिन को क्षमा करो। मैंने तुझ पर व्यर्थ ही कलक लगाया, तथा बिकने के लिए विवश किया। चन्दनबाला के पाव पकडे हुई रथी की स्त्री बार–बार ऐसा कह रही थी। चन्दनबाला ने उसे उठाकर अपनी छाती से लगाया और उससे कहने लगी–माता आप दु ख न करिये। आपने मुझ पर बहुत उपकार किया है। मेरे को इस योग्य आप ही ने बनाया कि मुझे भगवान महावीर को दान देने का सुयोग मिला। यदि आप मुझे घर से बाहर न भेजती, मैं घर मे ही रहती तो यह सब रचना न होती। इसी प्रकार आपका भी सुधार न होता। आज आप मे जो नम्रता है वह मैं घर से निकली इसी का कारण हे।

रथी की स्त्री को इस प्रकार समझाकर, चन्दनबाला ने उसे सान्त्वना दी। फिर उसने रथी को प्रणाम किया और उससे कहने लगी, पिताजी, मै आपकी चिर ऋणी हू। आप ही की कृपा से मुझे भगवान महावीर का दर्शन हुआ। चन्दनबाला तो रथी को इस प्रकार कह रही थी और रथी चुप–चाप

खडा हुआ आखो से आसू बहा रहा था। चन्दनबाला का कथन समाप्त होने पर, वह कहने लगा—हे पुत्री, तू साक्षात देवी हे। जो दुर्वृत्ति का शमन कर वही देवी हे, ओर तूने अनेको की दुर्वृत्ति मिटाई हे। पहले तो तूने मुझ पापी को ही पावन बनाया। फिर वेश्या का सुधार किया ओर बिक कर इस मेरी स्त्री को पवित्र बनाया। इसे तो तू जानती ही हे, कि यह पहले केसी थी लेकिन तेरे भेजे हुए बीस लाख सोनेया लेकर मे जेसे ही घर गया, वेसे ही इसका स्वभाव बदल गया, ओर यह ऐसी बन गई, कि जेसे दूसरी तू ही हे। तेरा यह कथन कि मेरे बिक जाने से माता का सुधार हो जावेगा बिलकुल ही ठीक निकला।

रथी से सेठ भी उसी तरह बाह फेलाकर मिला जेसे भाई से भाई मिलता हे। मूला भी रथी की स्त्री से मिली। उस समय वहा आनन्द ही आनन्द छा रहा था। ओर भी बहुत से लोग वहा एकत्रित हो गये थे, तथा पूर्व वृत्तान्त को जानकर चन्दनबाला की प्रशसा करते थे।

रथी सेठ आदि सब मिल रहे थे इतने ही मे वेश्या भी आ गई। वह दूर से ही हे सती, मुझ दुष्टा को क्षमा करो। कहती हुई चन्दनबाला की ओर दोडी तथा समीप पहुचकर, चन्दनबाला के पावा पर गिर पडी। चन्दनबाला ने उसको भी उठाया ओर उससे कहा—माता, आप किसी प्रकार का दुःख मत करो। वेश्या कहने लगी कि आप ऐसी त्रिलाकी को पावन करने वाली सती को मे पाप की वृद्धि के लिये वेश्या बनाना चाहती थी बल्कि इसके लिए आपको बलात् पकडकर ले जाना चाहती थी ओर मेरे धर्म—लोभी भक्त इस कार्य म मेरी सहायता करन को भी तेयार हो गय थ। इतना होने पर भी आपने मुझ पर उपकार ही किया। आप ही ने वन्दरा स मेरी रक्षा की। आपका उपदेश पहले तो मुझे रुचा नही था परन्तु वन्दरा स छुटकारा पाते ही मेरा [illegible] एकदम से पलट गया। हृदय—परिवर्तन के साथ ही व्यवहार भी [illegible] अब में ईश्वर—भजन करती हुई पवित्र रीति स अपना जीवन [illegible] कामी लाग मर रूप की अग्नि म स्वय को जलाने [illegible] अब नही आत।

चन्दनबाला स वेश्या ने अपनो [illegible]
उस भी सात्वना दी ओर वहा उपस्थित [illegible]
आदरपूर्वक बठाया।

धनावा सेठ के यहा [illegible]
महल म रानी मृगावती [illegible]
हो ही चुकी थी कि [illegible]

लाख सोनैया मे मोल लिया था, उसके साथ मूला ने ऐसा, ऐसा व्यवहार किया था आज उसने अभिग्रहधारी भगवान महावीर को दान देकर, उनका जीवन बचाया हे इसलिये इन्द्रादि देव उसकी महिमा कर रहे है। होते–होते यह बात रानी मृगावती के पास भी पहुची। उसको भी यह मालूम हुआ, कि मेरी बहिन की पुत्री इस शहर मे बिकी है, उसको इस प्रकार दु ख उठाना पडा हे ओर आज उसके हाथ से भगवान महावीर का पारणा हुआ है, इसलिये देवो ने उसकी महिमा की हे। वह सुनकर मृगावती को बहुत ही दु ख हुआ। वह कहने लगी कि यह मेरे पति के अपराध का ही परिणाम हे।

मृगावती ने उसी समय सतानिक को सन्देश भेजा। मृगावती का सन्देश पाकर सतानिक मृगावती के महल मे आया। मृगावती को क्रुद्ध देखकर सतानिक डर गया। मृगावती सोलह सतियो मे से एक थी। उसके सतीत्व का तेज उस समय प्रज्वलित हो रहा था। इस कारण सतानिक को यह भय हुआ। उसने मृगावती से पूछा कि–आज तुम इस प्रकार रुष्ट क्यो हो? मृगावती कहने लगी कि आपके लोभ के कारण कैसा–कैसा अन्याय हुआ है और किस–किस को केसा–कैसा कष्ट भोगना पडा है, इसका भी कुछ पता है? मेने आपको बहुत समझाया था फिर भी आप अपना लोभ न रोक सके ओर चम्पा पर शातिपूर्वक राज्य करते हुए मेरी बहन के पति पर चढ दौडे। परिणामत मेरे बहनोई दधिवाहन को जगल की शरण लेनी पडी मेरी बहन कहा तथा किस दशा मे हे इसका कुछ पता नही है ओर मेरी बहन की लडकी को आपका कोई रथी यहा ले आया, जिसने उसे बाजार मे बेचा धनावा सेठ ने उसे खरीदा और आज उसके हाथ से तपस्वी भगवान् महावीर का पारणा हुआ हे जिससे इन्द्रादि सब देवो ने उसकी महिमा की हे। आपके लोभ के कारण मेरी बहन की पुत्री इसी नगर मे बिकी। फिर भी आपको इस बात का पता नही है। जिस राज्य के लिए आपने ऐसा अत्याचार किया क्या वह राज्य आपके साथ जायेगा? आपको निरपराधी राजा दधिवाहन पर चढाई करने चम्पा की प्रजा को लूटने ओर मार–काट करने मे लज्जा भी नही आई।

मृगावती ने राजा सतानिक की इस प्रकार खूब भर्त्सना की। राजा सतानिक के पास मृगावती की बातो का कोई उत्तर न था। इसलिए वह उसकी बातो को चुपचाप सुनता रहा ओर अपने मन मे पश्चात्ताप करता रहा। अन्त मे उसने मृगावती से यही कहा मैंने राज्य के लोभ से चम्पा की प्रजा पर अत्याचार किया यह में स्वीकार करता हू, लेकिन तुम्हारी बहिन की लडकी से मेरी कोई शत्रुता नही थी। वह तो जेसी दधिवाहन की लडकी हे

वेसी मेरी भी लडकी हे। यदि उसके विषय मे मुझे कुछ भी पता होता तो मैं उसको कदापि कष्ट न पाने देता। मुझसे इतनी नीचता तो नही हो सकती। जो हुआ सो हुआ, इस समय बीती हुई बात के विषय मे अधिक कुछ विचार न करके, अभी तो उस सती को अपने यहा बुलाना चाहिये। वह सती जब यहा आ जायेगी तब उसकी माता का भी पता लग जावेगा और तभी यह भी मालूम हो सकेगा कि उसको कोन रथी लाया था तथा किसने बेचा था। मैने, चम्पापुरी पर चढाई करके उसे लुटवाया अवश्य लेकिन किसी की लडकी, ओर विशेषत मेरे सम्बन्धी राजा की पुत्री को लाकर मेरे ही नगर मे बेचने का समर्थक मे कदापि नही हो सकता। इसलिए सबसे पहले तो उस सती को यहा लाने के लिए किसी को भेजना चाहिए।

सतानिक के इस कथन का मृगावती ने भी समर्थन किया। सतानिक ने तत्क्षण अपने कुछ सामन्तो को बुलाया, ओर उनको चन्दनबाला का परिचय देकर उनसे कहा कि तुम लोग पालकी लेकर जाओ तथा सम्मानपूर्वक उस सती को पालकी मे बेठाकर ले आओ। उससे हम दोनो की ओर से यहा आने के लिए प्रार्थना करना, ओर जिस तरह भी अनुनय–विनय–से उसको यहा ला सको उस तरह ले आना।

सतानिक की आज्ञा से सामन्त गण पालकी लेकर धनावा सेठ के यहा गये। वहा की रचना देखकर उन लोगो को बहुत प्रसन्नता हुई। वे लोग कहने लगे कि आज हमको बहुत अच्छा कार्य सोंपा गया। हमारा पुण्य प्रबल हे, इसी से आज हमारी नियुक्ति इस कार्य पर हुई और हमको इस सती के दर्शन का सुअवसर प्राप्त हुआ।

चन्दनबाला के सामने जाकर सामन्तो ने उचित रीति से [illegible] अभिवादन किया। फिर वे उससे कहने लगे कि महाराज सतानिक [illegible] महारानी मृगावती ने हम लोगो को पालकी लेकर आपकी सेवा मे [illegible] ओर आप महल मे पधारे यह प्रार्थना की है।

साधारण व्यक्ति को राजमहल का ऐसा सम्मानपूर्ण [illegible] प्रलोभित कर सकता हे लेकिन चन्दनबाला के सामने [illegible] क्या काम कर सकता था? उसने सतानिक के [illegible] दिया कि आप मासाजी और मौसीजी से [illegible] करियेगा कि मै उस राजमहल मे [illegible] निरपराधी लोगो को लूटने–मारने आदि [illegible] हे। इसलिए मुझे क्षमा करे [illegible] कृतज्ञ हू।

सतानिक के सामन्तो ने अनुनय–विनय पूर्वक चन्दनबाला से राजमहल मे चलने का बहुत अनुरोध किया लेकिन चन्दनबाला ने उनको इस तरह समझाया कि जिससे वे अधिक कुछ न कह सके, और चुपचाप वापस लोट गये। उन्होने जाकर सतानिक और मृगावती को चन्दनबाला का दिया हुआ उत्तर सुना दिया। चन्दनबाला का उत्तर सुनकर मृगावती ने सतानिक से कहा कि मे तो पहले ही जानती थी कि वह सती इस तरह न आवेगी। फिर भी मेने आपके कथन के विरुद्ध कुछ कहना ठीक नही समझा। वह सती अपने महल पर लुभाने वाली नही है। इसलिए यदि उसको लाना हे तो अभिमान छोडकर आप भी चलिए और मैं भी चलती हू। अपने जाने से सम्भव हे कि वह सती आना स्वीकार करे। वह इस तरह सदेशो से आने वाली नही है।

मृगावती का कथन सतानिक ने स्वीकार किया। उसने कहा कि अच्छा मै स्वय भी चलता हू और आप भी चलिए।

राजा और रानी धनावा सेठ के यहा जाने के लिए तैयार हुए। राज–परिवार के अन्य लोग तथा सामत आदि भी साथ जाने के लिए तैयार हुए। राजा ओर रानी की सवारी, सामतो उमरावो सहित, धनावा सेठ के यहा जाने को निकली। राजा–रानी की सवारी जाती देखकर नगर के और भी बहुत से लोग साथ–साथ हो गये। सारे नगर मे इस बात की खबर फैल गई कि जिस सती के हाथ से भगवान महावीर का पारणा हुआ है वह सती महाराजा दधिवाहन तथा महारानी धारिणी की पुत्री है तथा महारानी मृगावती की बहिन की लडकी है। इसलिए राजा–रानी आदि सब लोग उस सती का दर्शन करने एव उसको महल मे लाने के लिए जा रहे हैं। यह सुनकर नगर के और लोग भी धनावा सेठ के यहा दौड पडे। थोडी ही देर मे धनावा सेठ के यहा खासी भीड हो गई। इतने ही मे राजा और रानी की सवारी भी आ गई। चन्दनबाला को दूर से ही देखकर मृगावती और सतानिक वाहन से उतर पैदल ही चन्दनबाला के सामने चले।

चन्दनबाला के समीप पहुचते ही रानी सहित सतानिक चन्दनबाला के पेरो पर गिर पडा। सतानिक हाथ जोडकर चन्दबाला से कहने लगा कि हे सती मुझ पापी को क्षमा करो। मैंने भयकर अपराध किये हैं। आप जैसी सती को कष्ट मे डाला है। मै घोर पापी हू। यदि आप मेरे अपराधो की ओर दृष्टिपात करे तब तो मेरा मुह भी नही देख सकतीं लेकिन आप देवी–स्वभाव की हैं पापियो को क्षमा करने वाली और अपनी उदारता से उनके पापो को

शमन करने वाली है, इसलिये मेरे को भी क्षमा करें तथा महल में पधार कर मुझे कृतार्थ करें।

सतानिक और मृगावती को उठाकर चन्दनबाला उनसे कहने लगी कि—आप उल्टी बात क्या कर रहे हैं। आप मेरे लिये माता—पिता के समान पूज्य हैं, फिर भी मेरे पैरो पर गिर कर मुझ पर भार कैसा चढा रहे हैं। आपने कैसा भी भयकर अपराध किया हो फिर भी मेरे लिए तो आप लोग आदरणीय ही हैं। अपराध के कारण मैं आपको अनादरणीय नहीं समझ सकती। रही महल को चलने की बात। सो मुझे किसी स्थान से द्वेष नहीं है और जहां माता तुल्य मौसीजी तथा पिता तुल्य आप रहते हैं उस स्थान से तो द्वेष हो ही कैसे सकता है? लेकिन आप ही विचारिये कि जिस महल में विशेषत पापकार्य करने का ही विचार होता रहता है वहां मैं कैसे चल सकती हूँ? यदि [illegible] कारण न होता तो मैं आपके सामंतों के साथ ही क्या न चली आती? मेरे हृदय में यह भावना नहीं थी कि मैं सामंतो के साथ नहीं जाऊंगी किन्तु आप लोग आवेंगे तब जाऊंगी। मेरे लिए तो आपके भेजे हुए सामंतगण भी आप ही के समान आदरणीय हैं। फिर भी मैं नहीं आई इसका कारण यही है कि मैं उस महल में आने योग्य नहीं हूं। जिस महल में सदा लूटन-खसोट [illegible] निरपराधियों पर अत्याचार करने का ही विचार होता रहता है आप ही [illegible] कि मैं उस महल में कैसे जा सकती हूं? जिस महल में मेरी भावना और मेरे विचारों से विपरीत भावना और विचारों का आधिपत्य है उस महल में [illegible] चलना कैसे उचित हो सकता है? आप ही बताइये कि मेरे पिता का [illegible] अपराध था जो आपने चम्पा पर चढाई कर दी? [illegible] कि मेरे पिता का कोई अपराध था तो [illegible] पिता को [illegible] चाहिए था या चम्पा की निरपराधिनी प्रजा को? [illegible] चम्पा छोडकर जगल को चले गये थे। [illegible] तो आप चम्पा पर अपना आधिपत्य कर [illegible] हत्या करने और उस पर अत्याचार करने [illegible] कि चम्पा की सेना ने हमारा सामना [illegible] तो यह अपराध सेना का था [illegible] उसका ऐसा अनानुषिक दण्ड [illegible]?

चन्दनबाला की [illegible]

सुन रहा था [illegible]

चन्दनबाला सतानिक से फिर कहने लगी कि जिस महल मे बैठकर अकारण ही चम्पापुरी पर चढाई करने, चम्पापुरी को लूटने, प्रजा पर अत्याचार करने का विचार किया गया ओर यह सब करने के पश्चात जिस महल मे बैठकर इसके उपलक्ष्य मे खुशी मनाई गई, उस महल मे मैं केसे चल सकती हूँ? मेरे कथन का उद्देश्य यह नही है कि राज्य–धर्म त्याग दिया जावे, लेकिन राजधर्म प्रजा की रक्षा के लिए है, प्रजा का विनाश करने के लिए नही है। राजा के लिए राजधर्म का पालन करना आवश्यक है। राजा द्वारा राजधर्म का पालन होने से ही प्रजा की रक्षा होती है। क्या चम्पा को लूटकर आपने राजधर्म का पालन किया है? क्या निरपराधी लोगो को मारना, उनकी सम्पत्ति लूटना यह भी कोई राजधर्म है? आपको चम्पा के राज्य का लोभ था, तो आप चम्पा पर राज्य करते परन्तु आपकी सेना ने चम्पा मे अत्याचार का जो ताण्डव किया वह किसलिये? और आपने किस राजधर्म की रक्षा के लिए आपकी सेना को ऐसा करने दिया? उसको स्वछन्द क्यो होने दिया? क्या आप जानते हे कि आपकी सेना द्वारा चम्पापुरी के निवासियो पर कैसा अमानुषिक अत्याचार हुआ हे? क्या आपको पता है कि आपकी सेना ने चम्पा की प्रजा के साथ कैसा पेशाचिक व्यवहार किया है? क्या आप नही जानते कि सेना के हाथ मे शासन–सत्ता दे देने पर कैसा–कैसा घोर अत्याचार होता है? उस दशा मे सेना क्या–क्या अन्याय नही करती? शासन–सत्ता मिल जाने पर, सेना प्रजा को मारती है, काटती है, उसकी धन–सम्पत्ति को लूटती, फूकती है और उसकी बहू–बेटियो का सतीत्व तक नष्ट करती है। क्या चम्पा की प्रजा पर उस समय ऐसा ही अन्याय–अत्याचार न हुआ होगा? जब आपका एक रथी मुझको ओर मेरी माता को भी, अपनी नीच भावना की पूर्ति के लिए महल से पकड कर जगल को ले गया था, तब प्रजा की बहू–बेटियो का सतीत्व कैसे बचा होगा? मेरी माता वीरकन्या और वीर–पत्नी थी, इससे उसने प्राण त्यागकर भी अपने सतीत्व की रक्षा की, और इस प्रकार, जो रथी मेरा भक्षक–सा बन रहा था, उसे ही मेरी माता ने मेरा रक्षक बना दिया, लेकिन यदि माता मे इस प्रकार के बलिदान की शक्ति न होती, वह प्राण–त्याग का साहस न करती, तो उनको और साथ ही मुझको–आपके रथी के दुराचार का साधन होना पडता या नहीं? क्या ऐसा होने देना भी राजधर्म हे?

चन्दनबाला के मुख से धारिणी की मृत्यु का समाचार सुनकर मृगावती को बहुत ही दु:ख हुआ। वह विलाप करती हुई कहने लगी– हाय! इनकी राज्यलिप्सा के कारण मेरी सती बहन को एक रथी के हाथ फसना

पडा और प्राण त्याग द्वारा सतीत्व की रक्षा करनी पडी। मेरी बहन की ही तरह न मालूम कितनी स्त्रियो को सतीत्व की रक्षा के लिये प्राण त्यागने पडे होंगे अथवा अपना सतीत्व नष्ट करना पडा होगा। धिक्कार है राज्यलिप्सा को जिसके कारण ऐसा अत्याचार होता है।

मृगावती को धैर्य बधाने के लिये चन्दनबाला उससे कहने लगी कि–मोसीजी, माता के विषय मे आप जरा भी दु ख मत करिये। उन्होने वही कार्य किया है, जो एक सती स्त्री को करना चाहिए। उन्होने पण्डित–मरण से प्राण त्यागा है, इसलिये उनकी मृत्यु किंचित भी चिंता के योग्य नही है। ससार मे जो जन्मा है उसे मरना पडता ही है लेकिन इस प्रकार का पण्डित–मरण होना बडे पुण्य का परिणाम है इसलिये माता के विषय मे आप किंचित भी दु ख मत करिये। आज आप जो रचना देख रही है और भगवान महावीर को दान देने का जो कार्य मेरे हाथ से हुआ है, वह सब माता की शिक्षा का ही परिणाम है। यदि माता ने मुझे, शांति–समर मे धैर्य रखकर दु ख मे भी प्रसन्न रहने, तथा किसी पर भी क्रोध न करने की शिक्षा न दी होती तो आज यह आनन्द कैसे होता? मै जो कुछ कह रही हू, वह माता को मरना पडा इस विचार से नही कह रही हू, किन्तु मैं यह बता रही हू, कि जिस महल मे [illegible] के लिए मुझसे कहा जा रहा है, उस महल मे राजधर्म के नाम पर किस–किस प्रकार के अन्याय–अत्याचार करने का विचार किया गया है। राजा का काम है कि वह अपने देश तथा नगर मे होने वाली समस्त नूतन–प्रवृत्तियो की जानकारी रखे। मौसाजी को भी इस नगर मे होने वाली समस्त [illegible] परिचित होना चाहिए था लेकिन इन्होने तो राज्य का उद्देश्य ही [illegible] रखा है। इन्होने तो यह मान रखा है कि [illegible] भोग [illegible] राज्य है, राज्य–प्राप्ति का इससे ज्यादा कोई उद्देश्य नही है [illegible] विचारो के कारण ही मौसाजी दूसरो का लूटन–खसोटने [illegible] विषय–भोग करने मे ही रहे। प्रजा की रक्षा तथा उसको [illegible] की ओर इन्होने ध्यान ही नही दिया। यदि [illegible] तक कि किसी प्रकार हमारा आय न कम न हो [illegible] पर किस तरह का अत्याचार होता है और [illegible] व्यापार होता है इस ओर ध्यान देने [illegible] राजधानी मे ही दास–दासी के [illegible] मौसाजी ने इस प्रकार के नीच [illegible] ऐसे व्यापार को रोकने का [illegible]

होकर बिकी हू। मुझे वे वेश्या माता ले रही थी। जब मेने इनके यहा जाना अस्वीकार किया, तब इन्होने मुझे जबरदस्ती पकड ले जाने का निश्चय किया था। यह तो अनायास बन्दरो ने कूद कर माता के इस निश्चय मे विघ्न डाल दिया ओर अब तो ये वेश्यामाता भी पवित्र हो गई हें, लेकिन उस समय इनकी सहायता के लिए, बहुत से नागरिक भी तैयार हो गये थे। फिर इन सेठ पिता ने मुझे अपने यहा स्थान दिया और इन रथी पिता को बीस लाख सोनैया देकर, इनकी पत्नी को सन्तुष्ट किया। इन सेठ पिता के यहा, सेठानी माता की कृपा से मे भगवान महावीर का अभिग्रह पूरा करने योग्य बनी, ओर मेरे हाथ से भगवान महावीर का पारणा हुआ। इस तरह जो कुछ हुआ वह किसी अपेक्षा से मेरे लिए तो अच्छा ही हुआ। यदि यह सब न होता तो मेरे हाथ से भगवान महावीर का पारणा कैसे होता? लेकिन मैं मौसाजी से कहती हू, कि क्या राज–प्रासाद इसीलिये है, कि उनमे बैठकर अन्याय–अत्याचारो के विषय मे मत्रणा की जावे। अथवा प्रजा की गाढी कमाई का द्रव्य लूटकर, महलो मे उनका अपव्यय किया जावे? उसके द्वारा पाप बढाया जावे। मौसाजी या दूसरा कोई जो भी इस तरह के पाप करता है, उसे उन पापो का परिणाम भोगना ही होगा। लेकिन मुझे अपनी आत्मा को बचाना ही चाहिए। ज्ञानियो का कथन है कि क्षेत्र ओर वहा का वातावरण का प्रभाव पडता ही है। इसी कारण वे लोग कष्ट तो भोग लेते हें, परन्तु वहा जाने से आत्मा के गुणो का घात होने का भय रहता है, वहा कदापि नहीं जाते। इसीलिए, मेंने महल मे जाने से इन्कार किया है। आप लोग मुझे क्षमा करिये, मैं यहा आनन्द मे हू। यहा रहने से मैं भगवान महावीर और उनके गुणो के समीप हुई हू। यह बात, आपके उस महल मे कदापि नही मिल सकती, जहा सदा पापपूर्ण कार्यों का ही विचार हुआ करता हे। आपके महल मे अच्छे कार्य कौनसे हुए हैं जो मैं वहा चलू?

पश्चाताप

मनुष्य आवेशवश कोई अनुचित तथा अन्यायपूर्ण कार्य कर [illegible]
डालता है उस कार्य के करने के समय तो उसको कार्य की बुराई के [illegible]
मे कुछ भी विचार नही होता अपितु वह उस बुरे कार्य म भी अच्छाई ही [illegible]
है। इसी से उसे करता है लेकिन जब किसी घटना-वश [illegible] के उपदेश
स अथवा स्वय की बुद्धि से उसको वह कार्य बुरा मालूम होता है उस समय
उसके पश्चाताप की सीमा नही रहती। तब वह अपने कार्य पर [illegible]
है। स्वय को पाप के बोझ से दबा हुआ मानता है और यथाशक्ति उस पाप
स मुक्त होने का उपाय करता है। परदेशी राजा हत्या करने मारने [illegible] को
लूटने और उस पर भारी कर लगाने आदि पापपूर्ण कार्यो म आनन्द मानता
था। उसे इन कार्यों के करने म प्रसन्नता होती थी [illegible]
केशीश्रमण महाराजा के उपदेश से अपने कार्यो को बुराई [illegible]
अनौचित्य की ओर उसका ध्यान गया तब उसको अपने कार्यो [illegible]
घृणा हुई और फिर उसने पाप से छुटकारा [illegible]
चण्डकौशिक साप लोगो को अपने विष से मारने [illegible]
की बात मानता था। उसने न मालूम कितने प्राणियो [illegible]
स नष्ट कर दिया था किन्तु जब [illegible]
उसको अपने कार्य की बुराई [illegible]
निश्चेष्ट हो सथारा द्वारा [illegible]
पश्चाताप किया। सम्राट [illegible]
के युद्ध का रक्तपात [illegible]
स उसको [illegible]
गया। इसी तरह [illegible]

करने के समय तो पाप के कार्यों को अच्छा समझा, लेकिन फिर उनसे घृणा हुई, और उनके विषय मे अत्यन्त पश्चाताप हुआ।

सतानिक को मृगावती समय-समय पर युद्ध आदि हिसा-प्रधान कार्यो से बचने एव प्रजा का पुत्रवत् पालन करने के लिए बहुत समझाया करती थी लेकिन उस समय वह मृगावती के कथन की उपेक्षा करने के साथ ही धर्म का भी उपहास किया करता था। उस समय उसको युद्ध करना अच्छा मालूम होता था, तथा वह समझता था, कि हम राजा हैं, हमारा जन्म ही लोगो पर शासन करने दूसरे राज्यो को जीतने, सुन्दर स्त्रियो के साथ रमण करने ओर अच्छे-अच्छे पदार्थ भोगने के लिए है। ससार के अच्छे-अच्छे पदार्थ हमारे भोग के लिए ही हैं। प्रजा हमारे लिए भोग-सामग्री जुटाने का साधन मात्र है। इस प्रकार के विचारो के कारण वह किसी भी पापपूर्ण कार्य करने मे सकोच नही करता था, अपितु उनके करने मे प्रसन्नता मानता था। ऐसे विचारो की प्रेरणा से ही, उसने चम्पा पर चढाई की थी। यद्यपि उस समय राजा दधिवाहन ने सतानिक को यह बताने की चेष्टा भी की कि आपकी चढाई अनुचित हे लेकिन गर्वी राजा सतानिक ने उल्टे दधिवाहन का ही अपमान किया तथा चम्पा को लुटवाकर उसे तहस-नहस कर डाला, वहा की प्रजा का आर्त्तनाद और करुण क्रन्दन सुनकर भी उसका हृदय नही पसीजा। चम्पा के राज परिवार से शून्य महल पर, अपना झण्डा उडाने मे ही आनन्द हुआ उस समय न तो उसको अपने कार्य का अनौचित्य ही मालूम हुआ, न जनहत्या या सबधी आदि के विषय मे ही किसी प्रकार का कुछ विचार हुआ लेकिन चन्दनबाला द्वारा भगवान महावीर को पारणा होने के पश्चात, मृगावती की फटकार और चन्दनबाला के वचनो से उसको अपने कार्यों का अनौचित्य मालुम हुआ। इस कारण उसको हृदय मे अत्यन्त लज्जा, ग्लानि और पश्चात्ताप हुआ।

मस्तक नीचा किये हुए सतानिक, चन्दनबाला की बातो को सुन रहा था। और वह अपनी कन्या को याद करके रो पडा। पास ही खडी हुई मृगावती भी आखो से आसू बहाती हुई चन्दनबाला की बाते सुन रही थी और अपने पति के दुष्कृत्यो का विचार करके, मन ही मन लज्जित हो रही थी। चन्दनबाला का कथन समाप्त होने पर सतानिक कहने लगा, कि-हे सती, आपने जो कुछ कहा हे वह उचित ही है। वास्तव मे मैं भयकर अपराधी हू। मैने महान पाप किया हे। मित्रद्रोह जनहत्या आदि किसी भी पाप के करने मे मैंने सकोच नही किया। में अवश्य ही ऐसा पापी हू कि जिसका मुह देखने

से भी पाप लगता हे। मेरी भावनाए तब तक वेसी ही थी जेसी कि आपने कही हे। में राजाओ का जन्म ओर राज्य–प्राप्ति का लोभ, उत्तमोत्तम भोगविलास करना ही समझता था तथा इसमे बाधा पहुचाने वाले नूतन भोगविलास की प्राप्ति मे रुकावट डालने वाले को मार डालना वीरता का कार्य मानता था। इस भावना के कारण मैंने अवश्य ही बहुत से पाप किये ओर इसीसे आपकी माता को प्राण खोने पडे, तथा आपको इस प्रकार कष्ट भोगने पडे हे लेकिन इस प्रकार की भावना होने पर भी, मै ऐसा नीच तो नही था कि जो सेना द्वारा किसी की बहू–बेटी ओर विशेषत आपकी माता का सतीत्व लूटने को छूट देता। मेरे हृदय मे चम्पा के राज्य का लोभ अवश्य आया, मैंने अपने निकट सबधी दधिवाहन को राज्यच्युत भी अवश्य किया, ओर चम्पा लूटने की आज्ञा भी अवश्य दी, परन्तु किसी का सतीत्व नष्ट करने ओर स्त्रिया को विशेषत राजपरिवार की स्त्रियो को लूटने, उनका अपहरण करने या उनका सतीत्व नष्ट करने की आज्ञा मैंने कदापि नही दी थी। मेरी आज्ञा का किस प्रकार दुरुपयोग किया गया हे, उसकी ओट मे केसा अत्याचार किया गया हे यह बात मुझे आज मालूम हुई है। फिर भी, मे इन सब बातो के लिए स्वय को ही अपराधी मानता हू। इसी नगर मे आप इतने समय तक कष्ट पाती रही तथा यहा बिकी, आदि बातो के लिए में स्वय को ही अपराधी समझता हू। यदि मेने उचित रीति से सब बातो की ओर ध्यान दिया होता [illegible] दास–दासी के क्रय–विक्रय की प्रथा न रहने दी होती तो ऐसा क्या होता? इसी प्रकार जब राजा दधिवाहन मेरे सामने ही जगल को चले गये [illegible] यदि मेने इस बात का पता लगाया होता कि उनका परिवार कहा हे [illegible] आपको कष्ट क्यो भोगना पडता तथा अपकी माता को क्या मरना पडता? [illegible] सब मेरे ही अपराधो का परिणाम हे। इन सब बातो के लिए मे स्वय [illegible] समझता हू। आज तक तो मे अपने इस प्रकार के कार्यो को [illegible] था। इस तरह के कार्य करने मे गर्व अनुभव करता था लेकिन [illegible] कार्यों के लिए बहुत ही लज्जित हू। मेरे हृदय मे अपार [illegible] ऐसा कोई उपाय नही सूझता कि जिसके द्वारा मे पाप [illegible] सती! मुझ एसे पापी का उद्धार करने वाली आप ही [illegible] कर सकती हैं। यह कहते सतानिक की आखे [illegible] दु ख से भर आया। वह चन्दनबाला के पास [illegible] तरह पश्चात्ताप करते हुए दु खी देखकर [illegible] आखिर मे तो यह कुलीन ओर [illegible] दु ख हो रहा हे। यदि एसे समय [illegible]

तो इनका कलेजा फट जायेगा। अर्थात् हृदयगति रुक जाने से सभव है इनकी मौत हो जायगी।

इस प्रकार विचार कर चन्दनबाला ने सतानिक को उठाकर कहा–पिताजी पाप का पश्चात्ताप करने से और दूसरे की जो हानि की है, उसकी पूर्ति करने से पाप कम हो जाता है। आपको अपने कार्यों के विषय मे अत्यधिक पश्चात्ताप है और आप मुझसे उद्धार करने के लिए कह रहे हैं, इसलिये मैं आपसे यह कहती हू कि आपने जिसका स्वत्व छीना है उसका स्वत्व उसे लोटा दीजिये तथा भविष्य मे इस प्रकार का पाप न करने की प्रतिज्ञा कीजिये। ऐसा करने पर फिर आप मे पाप न रहेगा किन्तु आप पवित्र हो जायेगे। मै यह नही कहती कि आप राजधर्म का पालन न करे। राजधर्म का पालन करना अपराधी को दण्ड देना और प्रजा की रक्षा करना तो राजाओ का कर्तव्य ही हे। जो राजा इस कर्त्तव्य का पालन नहीं करता वह पतित और पापी है। इसलिए में राजधर्म का पालन नहीं करने को नही कहती किन्तु यह कहती हू कि राज्य को अपने लिए न समझकर, स्वय को राज्य के लिए समझना। राज्य को अपने भोगविलास का साधन न मानना, स्वय को शासक और प्रजा को शासित समझने की भावना न रखना, किन्तु यह समझना कि मेरे पर राज्य का भार है और मैं उस भार को उठाकर, प्रजा की रक्षा करने वाला प्रजा को सुख पहुचाने वाला उसका एक सेवक हू। इस तरह की भावना रखने पर, राज्य पाप का कारण नही होता। उस दशा मे दूसरे का राज्य छीनने और दूसरो पर अत्याचार करने की इच्छा नही होती किन्तु यही इच्छा रहती है कि प्रजापालन और दीन–दु खी की रक्षा मे ही मेरी शक्ति का उपयोग हो। मेरे पिताजी ऐसी ही भावना रख कर चम्पा का राज्य करते थे। यही कारण है कि उन्होने अपने यहा सेना भी नहीं बढाई और आपने चढाई की तब युद्ध द्वारा जन–सहार करने की अपेक्षा वन जाना ही पसन्द किया।

चन्दनबाला का कथन सुनकर सतानिक कहने लगा कि हे सती! आपने आज जिस विवेक का उपदेश दिया, मेरे मे उस विवेक की ही कमी थी। कहावत हे कि–

यौवन धनसम्पत्ति प्रभुत्वमविवेकिता।।
एकैकमप्यनर्थाय किमुयत्र चतुष्टयम्।।

अर्थात यौवन धन–सम्पत्ति प्रभुत्व और अविवेक इनमे से प्रत्येक अनर्थकारी हे तो जहा ये चारो ही एकत्रित हो वहा के अनर्थ का तो कहना ही क्या हे?

[illegible] मुझे सलाहकार भी ऐसे ही मिले थे, कि जो मेरा अविवेक बढाते थे और मेरी दुर्भावना को प्रोत्साहन देते थे। आपने मुझे आज जो विवेक दिया है उसे पाकर मै प्रतिज्ञा करता हू कि भविष्य मे मै, स्वय को प्रजा का सेवक समझकर, उसके हित का ही काम करूगा। ऐसा कोई काम न करूगा, जिससे प्रजा का अहित हो। अब मै किसी का भी स्वत्व छीनने का प्रयत्न न करूगा। बल्कि मेरे द्वारा जिनका स्वत्व छीना गया है, मैं उन्हे उनका स्वत्व लोटा दूगा तथा उनसे अपने कृत्य के लिए हार्दिक क्षमा चाहूगा। महाराज दधिवाहन कहा है? इसका पता आज नही है, लेकिन में उनकी खोज कराऊगा, उनको सम्मान-पूर्वक पास बुलाऊगा। चम्पा का राज्य उन्हे लोटा दूगा, और चम्पा की जो क्षति हुई है उसकी पूर्ति करूगा। इस प्रकार में अब तक किये गये अपने पापो का प्रायश्चित्त करके, आगे से अपने जीवन भर इस तरह का कोई पाप न करूगा।

सतानिक की यह प्रतिज्ञा सुनकर, वहा उपस्थित सब लोग [illegible] करने लगे, और धन्य-धन्य कहकर कहने लगे कि आज इस सती ने महाराजा को भी पवित्र बना दिया। अपने पति की प्रतिज्ञा सुनकर मृगावती को भी [illegible] प्रसन्नता हुई, और चन्दनबाला भी आनन्दित हुई। उसने सतानिक से [illegible] कि आपने इस प्रतिज्ञा द्वारा स्वय को पवित्र बना लिया है इसके लिए मैं आपकी प्रशसा करती हू, लेकिन अभी एक बात की कमी और है। इस प्रतिज्ञा [illegible] ही आप अब तक का सब वेर भूल जाने तथा अब तक के [illegible] को क्षमा प्रदान करने की उदारता और कीजिये। आप [illegible] आपकी आज्ञा के विरुद्ध जिन-जिन ने जो-जो अपराध किये हैं [illegible] क्षमा-प्रदान करके निर्भय कर दीजिये। पुराने अपराधों के लिए [illegible] दण्ड मत दीजिये।

चन्दनबाला के कथन के उत्तर में सतानिक ने कहा [illegible] इस कथन को भी स्वीकार करता हू। [illegible] की स्त्रियो मे से किसी का सतीत्व नष्ट किया [illegible] महारानी धारिणी का मरना तथा [illegible] छोडकर शेष समस्त अपराधियो को [illegible] किन्ही स्त्रियो का सतीत्व नष्ट [illegible] सतीत्व नष्ट करना [illegible] अवश्य ही दण्ड [illegible] अपराधी को [illegible]

चन्दनबाला और सतानिक की बाते रथी भी सुन रहा था। चन्दनबाला ने सतानिक से जैसे ही रथी के कृत्यो का वर्णन किया था, वैसे ही रथी ने यह समझ लिया था, कि अब मेरी कुशल नही है। फिर सतानिक का निर्णय सुनकर तो, उसको यह निश्चय ही हो गया, कि अब मेरा जीवन नही है। इस पकार उसको भय तो हुआ, परन्तु चन्दनबाला ने अपने उपदेश से उसमे जो दृढता भरी थी, उसके कारण उसने विचार किया कि मैंने जो पाप किये हैं, उनका दण्ड मुझे मिलना ही चाहिए। अपराध को छिपाना या उनके विषय मे क्षमा चाहना ठीक नही हे। ऐसा करने से आत्मा वैसा पवित्र और निर्मल नही होता, जैसा पवित्र ओर निर्मल दण्ड भोगने से होता है।

रथी इस प्रकार विचार कर ही रहा था इतने ही मे चन्दनबाला ने सतानिक से कहा कि आपने कुछ अपराधियो के सिवा और सबको क्षमा कर दिया यह अच्छा किया लेकिन अब आप किसी भी अपराधी को दण्ड मत दीजिये किन्तु सभी को क्षमा कर दीजिये। जब आपके समस्त अपराध पश्चात्ताप से मिट सकते हे तब क्या उन अपराधियो को पश्चात्ताप न होगा? ओर उनके पाप न मिटेगे? यदि वे अपराधी दण्ड के पात्र हैं तो आप स्वय को भी दण्ड का पात्र समझिये और यदि आप अपने अपराधो के विषय मे पश्चात्ताप मात्र पर्याप्त समझते हें, तो फिर उनको भी क्षमा कर दीजिये। जिसके विषय मे अपराधी पश्चात्ताप कर चुका है, उस प्राचीन अपराध को लेकर किसी को दण्ड देने से वेर की वृद्धि होती है और एक बार का बधा हुआ वैर जन्म–जन्मान्तर तक चला करता है। इसलिए अब आप अब तक के सभी अपराधियो को क्षमा कर दीजिये।

इस कथन के उत्तर मे सतानिक कहने लगा कि आपका कहना बिल्कुल ही उचित हे। मुझे भी अपनी आत्मा को पवित्र बनाने के लिए दण्ड भोगना ही चाहिए ओर मेरे लिए आप जिस दण्ड की व्यवस्था करती हो, मैं वह दण्ड भोगने के लिए तेयार हू। इसी प्रकार जिन लोगो ने महान् अनैतिक अपराध किया है उनको भी दण्ड मिलना ही चाहिए।

सतानिक का कथन समाप्त होते ही रथी एकदम से उठ खडा हुआ ओर साहस पूर्वक आगे बढकर सतानिक से कहने लगा कि महाराज, चम्पा के राज–परिवार को कष्ट मे डालने का अपराधी में ही हू। मैंने ही कामवासना की प्रेरणा से यह भयकर अपराध किया हे। मुझ अधम से सतीत्व बचाने के लिए ही धारिणी ऐसी सती को प्राण त्यागने पडे। इस सती के बाजार मे बिकने तथा अन्य कष्ट भोगने का कारण भी में ही हू। महारानी धारिणी ने

मुझको बहुत समझाया था परन्तु मे उनके सौंदर्य पर ऐसा मुग्ध बना हुआ था कि मेरे समझ मे उनकी कोई बात नही आई। मेरे समीप उनका उपदेश गरम तवे पर गिरी हुई जल की बूद के समान रहा। इस कारण अत मे उस सती को प्राण त्यागने पडे। इसलिए आप मुझे कठोर से कठोर दण्ड दीजिये जिससे मेरी आत्मा पवित्र बने।

रथी का कथन सुनकर सतानिक के साथ ही ओर सब लोग दग रह गये। सब यही कहने लगे कि अपने भयकर अपराध को भी इस तरह मुक्त–हृदय से स्वीकार करने वाला हमारे देखने मे कोई नही आया। ओर सब लोग तो इस प्रकार आश्चर्य कर रहे थे लेकिन चन्दनबाला प्रसन्न हो रही थी। वह सोचती थी कि माता के उपदेश ने इस रथी पिता को कैसा पवित्र बना दिया है कि मृत्यु–दण्ड मिलने ऐसे अपने अपराध को भी स्वीकार कर रहे हैं ओर उसके लिए दण्ड माग रहे हैं।

इस प्रकार के विचार से प्रसन्न होती हुई चन्दनबाला सतानिक से कहने लगी कि–पिताजी अपराधी को दण्ड देने का उद्देश्य अपराध का बदला लेना नही हुआ करता है किन्तु अपराधी के हृदय मे उस अपराध के प्रति घृणा उत्पन्न करना होता है। यदि बदला लेने के लिए अपराधी को दण्ड दिया जाता हो तो ऐसा करने से न तो अपराधो मे ही कमी हो सकती है न अपराधी या दण्ड देने वाले मे पवित्रता ही आ सकती है। बल्कि बदला [illegible] से दण्ड देने वाला, स्वय भी अपराधी हो जाता है। इसलिए [illegible] उद्देश्य अपराधी मे अपराध के प्रति घृणा उत्पन्न करना होना चाहिए। [illegible] जब अपराधी को स्वय ही अपने अपराध के प्रति पश्चाताप हो और [illegible] हृदय मे अपराध के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई हो और वह [illegible] मानकर भविष्य मे वेसा अपराध न करने का निश्चय कर चुका [illegible] मे उसे दण्ड देने की कोई आवश्यकता नही रहती। [illegible] आपको ही दण्ड लेने की आवश्यकता है और न [illegible] देने की आवश्यकता है। इनको मेरी माता ने [illegible] माना है। अब इनको दण्ड देना माता का [illegible] न इनको सुधारने के लिए ही अपने प्राण [illegible] उस बलिदान ने इनका सुधार [illegible] अपराध स्वीकार किया है और [illegible] यही उचित है कि आप इनको [illegible] क्षमा कर दे और [illegible] पर रहते इनको कोई [illegible]

भी उसी प्रकार श्रद्धास्पद हैं, जिस प्रकार आप, ये सेठ पिता, और दधिवाहन पिता हैं।

रथी को अपराध स्वीकार करके दण्ड मागते देखकर सतानिक आश्चर्य तो कर ही रहा था, उसी समय चन्दनबाला के उपदेश ने उसमे एक नया जीवन उत्पन्न कर दिया। वह रथी के पास गया और उसको अपनी छाती से लगा कर कहने लगा, कि आज से तुम मेरे भाई हो। मैं तुम्हारे समस्त अपराध क्षमा करता हू।

सतानिक और रथी को आपस मे मिलते देखकर उपस्थित लोग जय-जयकार करते हुए कहने लगे, कि धन्य है अपराध स्वीकार करने वाले को! और धन्य है क्षमा देने वाले को! अब तक हमने न तो किसी को इस तरह अपराध स्वीकार करते ही देखा न ऐसे अपराधी को क्षमा प्रदान करते ही देखा।

जनता का कोलाहल शात होने पर, सतानिक चन्दनबाला से कहने लगा कि-हे सती! अब तो आप महल मे पधारिये! जो दोष था, वह तो मेरे मे ही था महल मे तो कोई दोष था नहीं। महल न तो उसमे बैठकर बुरे विचार करने का ही कहता हे न अच्छे विचार करने से रोकता ही है। उसमे बैठकर अपनी भावना के अनुसार अच्छा विचार भी किया जा सकता है, और बुरा विचार भी किया जा सकता है। अब तक मेरे मे जो दुर्भावना भरी हुई थी महल मे बैठकर मैं उसी भावना के अनुसार बुरे विचार करता था, लेकिन अब आपकी कृपा से मेरी भावना पवित्र हो गई हे, मेरा विकार निकल गया है, इसलिए अब उसी महल मे बैठकर पवित्र विचार करूगा। क्षेत्र, क्षेत्री के अनुसार हुआ करता है। उसे तो जेसा भी बनाया जावे, वह वैसा ही बन जाता है। क्षेत्री अच्छा हो तो क्षेत्र भी अच्छा हो जाता हे और क्षेत्री बुरा हो तो क्षेत्र भी बुरा हो जाता है। अब तक मैं स्वय ही बुरा था, इसलिये महल बुरा था, परन्तु अब मै पवित्र हो गया हू, तो महल भी अच्छा हो जावेगा। इसके सिवा, आप तो अपवित्र को भी पवित्र बना देती हैं। जब आप उस महल मे पधारेगी तब क्या वह महल पवित्र न हो जावेगा? अवश्य ही पवित्र हो जावेगा। इसलिये अब आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करके महल को पधारिये।

सतानिक के कथन के उत्तर मे चन्दनबाला कहने लगी कि आपका यह कथन तो ठीक हे वास्तव मे आपने सत्य को पहचान कर एकदम से अपना परिर्वतन कर लिया है। महल की दृष्टि से अब मुझे आपके यहा चलने मे कोई आपत्ति नही हो सकती परन्तु यहा से मेरा जाना धर्म-विरुद्ध होगा। मेरा यह शरीर इन सेठ पिता के यहा 20 लाख सोनेया मे बिका हुआ हे।

इसलिए यहा से आपके यहा जाने की बात तो दूर रही मे मरने के लिए भी स्वतन्त्र नही हू। मुझ पर जब तक इन सेठ पिता का ऋण है तब तक मैं कहीं जाने के लिए स्वतन्त्र नही हू। अब आप की ओर से तो किसी प्रकार की ऐसी कमी नही रही हे जिसके कारण मुझे महल म चलने म कोई आपत्ति हो परन्तु मुझे आपके यहा जाने से धर्म रोकता हे। स्वय पर ऋण होते हुए भी मेरा जाना विश्वासघात होगा ओर विश्वासघात भयकर पाप हे। विश्वासघात का पाप सभी पापो से बढकर हे। इसलिए मे आपके यहा चलने म असमर्थ हू।

चन्दनबाला का कथन समाप्त होते ही रथी कहने लगा—सती जी आप इसकी चिता मत करिये। आपने जो 20 लाख सोनेया मुझे दिलाए थे वे मेरे वहा ज्यो के त्यो रखे हे। मे अभी वे सोनेया लाकर इन सेठ को दिए देता हू जिससे आप पर कोई ऋण न रहेगा।

यह कह कर रथी सोनेया लाने के लिए अपने घर जाने लगा। लेकिन सेठ ने उसको रोक दिया। चन्दनवाला का कथन सुनकर उसको [illegible] वहुत खेद था। उसकी आखे सजल हो आई थी वह दीन स्वर म [illegible] से कहने लगा, कि हे सती! आपने यह क्या कहा कि म इनके यहा बिकी हुई हू। क्या आप मेरे यहा बिकी हुई हे? क्या म आपको खरीद सकता [illegible] सारे त्रिलोक की सम्पत्ति आपके मूल्य का एक अश भी नही है [illegible] केसे खरीद सकता हू? मुझ तुच्छ म आपको खरीदने की शक्ति [illegible] सकती ह? आप स्वय का मेरे यहा बिकी हुई न समझे। [illegible] 20 [illegible] सोनेया अवश्य दिये थे लेकिन भाई बनाकर ओर यह [illegible] स्पष्ट हो चुकी थी कि ये सोनेया उपहार स्वरूप हैं [illegible] इसके सिवा वे बीस लाख सोनेया भी मुझको [illegible] ने जो सोनयादि की वृष्टि की वह [illegible] इसलिए हे सती! आप यह न कहिये कि [illegible] हाथ विका हुआ हू। आपने मेरे इस घर का [illegible] का सुधार दिया तथा मुझको [illegible] महापुरुष के चरण आप ही की कृपा से [illegible] मुझे जन्म-जन्म के लिए खरीद लिया है [illegible] कि आप मेरे यहा बिकी हुई है [illegible] नही हो सकता क्योंकि [illegible] पालन करना मेरा [illegible]

[illegible]

पकार महाराज की बात मानकर आपका महल को पधारना विश्वासघात नही हो सकता। आप पसन्नता पूर्वक पधार सकती हे। मे अपने मुह से यह तो कदापि नही कह सकता कि आप जाइये। परन्तु यह अवश्य कहूगा कि आज आपका तीन दिन के पारणे का दिन है इसलिए आप मेरे यहा से भूखी न पधारे।

चन्दनबाला से यह कहकर धनावा सेठ सतानिक से कहने लगा कि आप स्वामी हैं और मै सेवक हू। सेवक के यहा स्वामी आगमन का कल्याण-कारण हे। मै स्वय तो आपको मेरे यहा बुलाने की शक्ति नही रखता, लेकिन आज इन सती की कृपा से आपका मेरे यहा पधारना हुआ हे जो मेरे लिए बहुत ही हर्ष की बात है। मेरा भाग्य ऐसा कहा था जो आप मेरे यहा पधारते। इन सती की कृपा से ही आपका पधारना हुआ है। आप, इन सती से महल मे चलने के लिए कहते हैं, इसमे मेरा क्या इनकार हो सकता है। आप मेरे स्वामी हैं इसलिए आप इन सती को ले जाने के अधिकारी हैं। मैं तो आपका सेवक हू। आपकी आज्ञा के विषय मे मुझे कोई आपत्ति नही हो सकती। फिर भी मेरी यह प्रार्थना अवश्य है कि आज इन सती का तीन दिन के तप के पारणे का दिन है इसलिये इनका पारणा यहा आप ही के हाथ से हो जाना चाहिए। मैं केवल इसी कार्य के लिए आपको नही बुला सकता था परन्तु जब आप पधार गये हे तब तो आप ही के हाथ से इन सती का पारणा होना चाहिये। यह सती मेरे यहा से भूखी जावे ऐसा कदापि नहीं हो सकता। मैं आपसे केवल यही चाहता हू कि आप साथ बैठकर सती को पारणा करा दीजिये।

धनावा सेठ की बात समाप्त होने पर चन्दनबाला बोली- पिताजी, आप पारणे के लिये व्यर्थ ही इतना अनुरोध करते हें। मे यहा से भूखी भी नही जा सकती ओर मोसाजी तथा मोसीजी की उपस्थिति मे अकेली भोजन भी नही कर सकती। ऐसा दशा मे आप इतना आगह करने का कष्ट क्यो करते है? आप भोजन की व्यवस्था कराइये मौसाजी सहित में भोजन करुगी।

चन्दनबाला का कथन सुनकर धनावा सेठ बहुत प्रसन्न हुआ। उसने भोजन की व्यवस्था की। सब व्यवस्था हो जाने पर सती चन्दनबाला सतानिक मृगावती रानी ओर उसकी स्त्री आदि सबने भोजन किया। इस प्रकार वहा बहुत ही हर्षपूर्ण समारोह रहा।

महल को

श्रेष्ठ आदमी, उच्च स्थिति मे होने पर भी छोटो को नही भूलते। वे चाहे जेसी सम्पत्ति पा जावे, चाहे जितना बढ जावे, ओर उनको चाहे जेसा सम्मान प्राप्त हो जावे, वे नम्र ही रहते हैं तथा अपने से छोटो पर वात्सल्य-भाव बनाये रखते हैं। वे जानते हैं कि इन छोटो से ही मेरा बडप्पन है। छोटो ने ही बडा बनाया हे। यदि ये छोटे न हो तो हम सब बडे भी नही हो सकते। इस प्रकार के विचार के कारण वे किसी भी समय छोटो की उपेक्षा नही करते किन्तु इस बात का सदा प्रयत्न करते रहते हैं कि मैं छोटो को अधिक से अधिक सुख-सुविधा पहुचा सकू। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए वे एक बार अपने सुखो तथा अपनी बडाई को भी त्याग देते हैं। महाराजा श्रीकृष्ण राज्य-चिन्ह से युक्त होकर हाथी पर बेठे हुए थे। उस समय उन्हे बडे-बडे नागरिक अभिवादन कर रहे थे ओर बडे-बडे राजा-महाराजा-वीर सरदार आदि साथ थे। फिर भी एक निर्बल वृद्ध पुरुष का ईंट उठाने का कष्ट करते देखकर उनसे न रुका गया।

उन्होने उस समय अपने पद-वेभव आदि किसी भी बात का विचार नही किया, किन्तु उस वृद्ध की ईंट उठाकर उसे कष्ट-मुक्त किया। इस प्रकार उच्च दशा मे होने पर भी श्रेष्ठ आदमी छोटो के प्रति स्नेह [illegible] उनको सुख-सुविधा पहुचाने का ध्यान रखते है तथा उनकी अपेक्षा [illegible]। तुच्छ वृत्ति के लोग ही बडे होकर छोटो को भूल जाते है। उनकी बुद्धि [illegible] वैभव आदि बडाई पाकर फिरती है। महान लोग तो बडाई पाकर और भी विनम्र हो जाते हैं। कहावत ही है कि -

भवति नम्रास्तरव फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्भूमिविलम्बिनो घना ।
अनुद्धता सत्पुरुषा समृद्धिभि, स्वभाव एवैष परोपकारिणाम ।।

अर्थात् परोपकारी सत्पुरुषो का यह स्वभाव ही होता है कि वे समृद्ध होने पर उद्धत नहीं रहते, किन्तु उसी प्रकार नम्र हो जाते हैं जैसे फल से लदे हुए वृक्ष और जल से भरे हुए बादल झुक जाते है।

चन्दनबाला के लिए भी यही बात थी। उसके हाथ से भगवान महावीर का पारणा हुआ। इस कारण इन्द्रादि देवो ने उसकी सेवा–स्तुति की थी। रानी और सामन्तो सहित राजा सतानिक उससे महल मे चलने को प्रार्थना कर रहा था फिर भी वह रथी, रथी की स्त्री, वेश्या धनावा सेठ तथा मूला आदि को नहीं भूली। उनकी उपेक्षा नही की किन्तु उनका उपकार मानकर उनके हित का ही प्रबन्ध किया। राजा सतानिक रथी को प्राण दण्ड से कम दण्ड नहीं दे सकता था लेकिन चन्दनबाला ने उन दोनो को भाई–भाई के सबध से जोड दिया। इसी प्रकार पारणा कर चुकने के पश्चात् सतानिक के महल मे जाते समय भी उसने मूला और धनावा सेठ से यही कहा कि हे माता! और हे पिता! मैंने इस घर मे बहुत सुख पाया है। इस घर मे रहती हुई मैं जैसे धर्म–कार्य कर सकी, वैसे धर्म–कार्य और कही रहती हुई नही कर सकती थी। यहा रहने से ही मुझको भगवान महावीर का दर्शन और उन्हे दान देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं आपकी बहुत ऋणी हू। मुझ पर आपका जो ऋण है उससे मैं कदापि मुक्त नही हो सकती। सो मै ही नही किन्तु सारा ससार आपका ऋणी है। ससार का कल्याण करने वाले भगवान महावीर का पारणा आपके यहा के अन्न से ही हुआ है। आपके कथनानुसार मै आपके यहा बिकी हुई न भी होऊ तब भी मेरे पेट मे आपके यहा का अन्न–जल है, और आपके आश्रय मे रहकर धर्म की वृद्धि की है, इसलिए आपकी ऋणी तो हू ही। आज मै इस घर से जा रही हू, परन्तु इस घर का मुझ पर जो उपकार है उसको मै कदापि विस्मृत नही कर सकती। आपसे भी मेरी यही प्रार्थना है कि मुझे विस्मृत मत करना किन्तु मुझ पर सदा ही कृपा रखना।

यह कहकर चन्दनबाला ने सेठ और मूला को प्रणाम किया। सेठानी सहित सेठ की आखो से आसू बह चले। दोनो ने चन्दनबाला को आशीर्वाद देकर उसे अपने गले से लगाया। रथी उसकी स्त्री वेश्या और सेठ के यहा के नौकर–चाकर सेठ के आश्रित तथा पडोस मे रहने वाले आदि सब लोगो से चन्दनबाला इसी प्रकार मिली। फिर सतानिक के यहा से आई हुई पालकी मे बैठकर राजा–रानी तथा अन्य लोगो से घिरी हुई राजमहल की ओर चली। जिस पालकी मे चन्दनबाला बैठी हुई थी उसके पीछे रथ मे सवार राजा–रानी थे। राज कर्मचारीगण चन्दनबाला की पालकी को चारो ओर से घेरकर भीड

से पालकी की रक्षा कर रहे थे। शेष सब लोग भी पालकी के आगे–पीछे तथा बराबर चल रहे थे। मार्ग मे सती चन्दनबाला की जय हो, भगवान महावीर का पारणा कराने वाली महाराजा दधिवाहन ओर महारानी धारिणी की पुत्री की जय हो, आदि वाक्य कहकर सब लोग सती चन्दनबाला की जय–जयकार करते जाते थे। इस प्रकार सती चन्दनबाला की पालकी समारोह–पूर्वक राजमार्ग से महल की ओर चली।

नगर मे पहले की सब खबरे तो फेल ही चुकी थी। चन्दनबाला राजमहल को जा रही हे यह खबर सुनकर नगर के प्राय सभी स्त्री–पुरुष सती का दर्शन करने के लिए दोड पडे। सब लोग कहते जाते थे कि अभागे को अच्छी वस्तु का योग नही मिलता। इसीके अनुसार जब सती बिक रही थी तब हम उसको नही ले सके। जो हुआ सो हुआ अब उसका दर्शन तो कर ले। उसके चरणो का स्पर्श करके शरीर को पवित्र तो बना ले। चन्दनबाला का दर्शन करने के लिए आने वाले लोग इसी प्रकार की बात करते हुए चन्दनबाला के चरण छूने को पालकी की ओर बढने लगे। जो राज–कर्मचारीगण चारो ओर से पालकी की रक्षा कर रहे थे दर्शनार्थी लोग उनका भी धकेलने लगे। राज–कर्मचारियो के लिए उन लोगो को रोकना कठिन हो गया। तब वे लोग धक्के देकर भीड को हटाने लगे। यह दृश्य देख कर सती से न रहा गया। उसने सोचा मेरे कारण इन लोगो की इस प्रकार अवज्ञा हो यह ठीक नही हे। ये सब मेरे भाई हैं। मुझ पर इनका भी अधिकार हे। इसलिए मुझे पालकी त्यागकर इन लोगो के साथ चलना ही ठीक हे जिससे राज–कर्मचारियो द्वारा किसी को कष्ट न हो।

इस प्रकार विचारकर सती चन्दनबाला पालकी से नीचे उतर पडी। सती को सहसा पालकी से उतरी देखकर लोगो को बहुत ही [illegible]। राजा–रानी आदि सब लोग कहने लगे कि सती किस कारण नीचे उतर पडी। सती को पालकी से उतरी देखकर राजा–रानी भी रथ से नीचे [illegible] सती ने किस कारण पालकी त्यागी यह जानने की चेष्टा करने [illegible] ने सबको सतोष देते हुए कहा कि–मैं किसी दूसरे कारण से [illegible] नहीं उतरी हू किन्तु इसलिए नीचे उतरी हू कि [illegible] चलू, जिससे राज–कर्मचारियो को भी कष्ट न करना [illegible] किसी की अवज्ञा भी न हो।

चन्दनबाला सब लोगो के साथ [illegible] लोग उसका दर्शन एव उसके चरणो का स्पर्श करके [illegible]

सब लोग जय–जयकार करते हुए जा रहे थे। उनके बीच मे सती चन्दनबाला चल रही थी। चलते–2 सती ने विचार किया कि इन सब लोगो को दो शब्द ऐसे सुना देना चाहिए जिससे ये लोग मेरे शरीर से ही प्रेम करने मे न रहे किन्तु आत्मा से सबध जोड सके। इस तरह विचारकर वह चलती–चलती एक ऊचे स्थान पर चढकर खडी हो गई। वहा खडी हुई सती का दर्शन सब लोगो को अच्छी तरह हो रहा था। सती को इस प्रकार खडी देखकर सब लोग भी सती की ओर मुह करके खडे हो गये। सभी लोग यह जानने के लिए उत्कठित थे कि सती इस प्रकार रुककर खडी क्यो हो गई? इतने ही मे चन्दनबाला ने सबको सबोधित करते हुए कहा कि आप लोग मेरे इस भौतिक शरीर को ही देखकर, और इसीसे प्रेम–सबध जोडकर न रह जाये किन्तु मेरे आत्मा से सबध जोडे। मेरे आत्मा से सबध किस तरह जोडा जा सकता है यह बताने के लिए मै यहा पर खडी हुई हू। मैं आप लोगो को जो कुछ कहू, उसे आप ध्यान देकर सुने।

चन्दनबाला का कथन सुनकर सब लोग इस विचार से बहुत ही प्रसन्न हुए कि हमको सती के पवित्र मुख की वाणी सुनने को मिलेगी। उपस्थित स्त्री–पुरुष शात भाव से खडे हो गये। सब लोग एकटक सती के मुख की ओर देखने लगे। उस स्थान पर बहुत से स्त्री–पुरुष एकत्रित थे, फिर भी स्तब्धता छाई हुई थी। सती चन्दनबाला ने अपनी वाणी द्वारा वह स्तब्धता भग की।

चन्दनबाला कहने लगी–मेरे कौशाम्बी निवासी उपस्थित भाइयो, एक दिन मैं इसी नगर के चोराहे पर खडी हुई बिक रही थी और आप सब लोगो से कह रही थी कि आप मुझे खरीद ले। मैं आपके गृह के सभी कार्य करूगी तथा मेरे लिए व्यय किय गये द्रव्य को व्यर्थ न जाने दूगी। मै बार–बार ऐसा कहती थी फिर भी आप लोगो को मेरे कथन पर विश्वास नही हुआ। आप लोगो मे से किसी ने भी मेरे बदले मे बीस लाख सोनैया खर्च करना उचित नही समझा। केवल एक ये माता जो पहले वेश्या कहलाती थी, परन्तु अब पवित्र जीवन बिताती हे, मुझे लेने के लिए तैयार हुई। इन्होने मेरे बदले 20 लाख सोनेया देना स्वीकार किया, लेकिन इनका उद्देश्य कुछ दूसरा था। ये मुझे वेश्या बनाकर मेरे द्वारा पुरुषो को कामाग्नि मे भस्म करना चाहती थी, और इस नीच उपाय द्वारा धनोपार्जन करना चाहती थी। मेने इस माता के साथ जाना अस्वीकार कर दिया। तब ये मुझे बलात् पकडकर ले जाने को तेयार हुई। आप लोगो मे से बहुत से लोग भी इन माता की सहायता के लिए

तेयार हुए थे। माता की सहायता करने को जो लोग तेयार हुए थे वे भी य
चाहते थे, कि यह वेश्या बन जावे तो अच्छा। उस समय मेरे कारण भयव
कलह होने की सम्भावना थी परन्तु प्रकृति ने उस कलह के अवसर को टा
दिया। ओर अब ये माता भी अपने उस समय के सहायको को घृणा की दृ
से देखती हे। अन्त मे इन सेठ पिता ने मेरे बदले 20 लाख सोनेया देकर मु
अपने यहा आश्रय दिया। इन सेठ पिता के आश्रय म रहकर मैंने धर्म की वृ
की, ओर आज आप लोग जो कुछ देख रहे हे यह सब इसी का परिणाम है

मतलब यह कि एक दिन मे स्वय बिक रही थी आप लोगो से मु
खरीदने का अनुरोध करती थी, किन्तु आप लोगा ने 20 लाख सोनेया
सामने मुझे तुच्छ समझा। लेकिन आज आप लोगो को इस बात का पश्चाता
हो रहा होगा, कि इस सती को हमने क्यो न खरीद लिया? ऐसा पश्चात्ता
किसी को तो इस विचार से होता होगा कि यदि हमने इसको खरीद लिय
होता, तो भगवान महावीर का पारणा हमारे यहा के अन्न से ही होता तथ
यह सब रचना हमारे ही घर होती। ओर किसी को इस विचार से पश्चाताप
होता होगा, कि यदि हमने इसके लिए 20 लाख सोनेया खर्च किये होते त
आज हमारे यहा साढे बारह करोड सोनेया की वृष्टि होती। इस तरह
पश्चात्ताप का कारण तो अपनी अपनी भावना के अनुसार भिन्न-भिन्न होगा
लेकिन पश्चात्ताप अवश्य होता होगा। जेसा पश्चाताप आज हो रहा है वेसा
ही पश्चात्ताप आपको फिर न करना पडे इसलिए आप अभी से सावधान हो
जावे, ओर मेरे कथन पर विश्वास करके जेसा मे कहती हू, वेसा करे।
कदाचित् आप लोग मेरे इस शरीर को खरीद भी लेते तब भी यह निश्चय नही
था, कि जिस लाभ से वञ्चित रहने के कारण आज आपको पश्चाताप हो रहा
हे वह लाभ आपको होता ही। क्योकि जब तक भगवान महावीर का अभिग्रह
पूरा न होता वे दान न लेते और दान न लेते तो स्वर्ण-वृष्टि भी न होती।
इसलिए मुझे खरीदने पर तो लाभ अनिश्चित था लेकिन इस समय मैं आपसे
जो कुछ कहूगी उस पर विश्वास करके उसके अनुसार कार्य करने पर लाभ
निश्चित ही है। मुझे खरीदने मे आपको द्रव्य खर्च करना पडता था इसी
कारण उस समय आप लोगो को मेरी बात पर विश्वास नही हुआ था परन्तु
जो बात मै इस समय बताती हू, उसके लिए द्रव्य न खर्च [illegible]
अविश्वास का भी कोई कारण नही हो सकता। फिर भी यदि आप लोग मेरे
कथन पर अविश्वास करेंगे और मेरे कथन के अनुसार कार्य न करेंगे तो
आपको जन्म-जन्मान्तर तक पश्चाताप करना होगा।

आप लोगो से मे यह कहती हू कि आप लोग [illegible]
जोडे। मेरे आत्मा से सबध जोडने पर आपको अवर्णनीय [illegible]
मेरे आत्मा से सबध जोडने के लिए आप यह देखे कि मेरे [illegible]
है? मुझे किन गुणो के कारण आप लोग आदर की दृष्टि से [illegible]
अनुसधान करे ओर उन्ही गुणो को आप भी अपनावे। [illegible]
आपके आत्मा का सबध जुड सकता है।

किन गुणो के कारण आप लोग मेरा आदर करते है [illegible]
गुण केसे आये? यह मे बताती हू। मेरी माता ने [illegible]
विशेषत जब मुझे ओर मेरी माता को ये रथी पिता रथ मे [illegible]कर जगल [illegible]
ले जा रहे थे उस समय माता ने मुझ को यह शिक्षा दी थी कि–

शाति–समर मे कभी भूलकर, धैर्य नही खोना होगा।
वज्र प्रहार भले सिर पर हो, किन्तु नही रोना होगा।।
अरि से बदला लेने का मन, बीज नही बोना होगा।
घर मे कान तूल लेकर फिर, तुझे नही सोना होगा।।
देश–दाग को रुधिर–वारि मे, हर्षित हो धोना होगा।
देश–कार्य की भारी गठरी, सिर पर रख ढोना होगा।।
आखे लाल भवे टेढी कर, क्रोध नही करना होगा।
बलि–देवी पर तुझे हर्ष से, चढकर कट मरना होगा।।
नश्वर है घर, देह, मौत से कभी नही डरना होगा।
सत्य मार्ग को छोड स्वार्थ–पथ पर न पैर धरना होगा।।
होगी निश्चित जीत धर्म की, यही भाव भरना होगा।
मातृ–भूमि के लिए हर्ष से, जीना या मरना होगा।।

माता ने यह शिक्षा मुझे हृदयगम करा दी। इतना ही नहीं किन्तु इस शिक्षा का क्रियात्मक आदर्श भी मेरे सामने रखा। मेरी माता वीर–पुत्री ओर वीर नारी थी। जब इन रथी पिता ने उससे अनुचित प्रस्ताव रखा उसको कटुवचन कहे तब यदि वह चाहती छल–बल से इनको मार सकती थी। लेकिन यदि वह ऐसा करती तो उसने मुझे जो शिक्षा दी थी वह थोथी होती। मुझ पर उस शिक्षा का प्रभाव न होता, किन्तु उसके कार्य का प्रभाव होता। परन्तु माता ने मुझे जो शिक्षा दी थी, उसी के अनुसार व्यवहार भी किया। उसने रथी पिता को अन्त तक अपना भाई ही माना इन्हे कल्याणकारी उपदेश ही दिया ओर इन पर जरा भी क्रोध नहीं किया। जब ये किसी भी तरह न माने तब उसने अपना बलिदान देकर इन पिता के हृदय की भावना ऐसी पलट दी कि ये मेरे रक्षक बन गये।

माता ने मुझे जो उपदेश दिया था मने उसी के अनुसार व्यवहार किया, इसीसे आज आप सब लोग मेरा सम्मान कर रहे हैं। माता के उपदेशानुसार व्यवहार करके मैंने हिसात्मक युद्ध के कारण देश पर जो दाग लगा था उसे धो डाला। ये सतानिक पिता अब तक हिसात्मक युद्ध के प्रवल समर्थक थे। इन्हे हिसात्मक युद्ध बहुत ही प्रिय था परन्तु आज इनको अपनी युद्ध–प्रियता पर खेद हे, युद्ध द्वारा की गई धन–जन की हानि के लिए पश्चात्ताप हे, ओर इन्होने पिता को बुलाकर उन्हे चम्पा का राज्य वापिस देने का निश्चय किया हे। इस तरह देश पर हिसा का जो दाग लगा था वह धुल गया, साथ ही इनका सुधार भी हुआ। इसी प्रकार इन रथी–पत्नी का मूला माता का, और जो पहले वेश्या कहलाती थी उन माता का भी सुधार हुआ। इन रथी पिता की पत्नी ने मुझको अनेक कटु शब्द कहे, मुझ पर मिथ्या कलक भी लगाये तथा मुझे बाजार मे भी बिकवाया, तब भी मैंने उन पर क्रोध नही किया, न बदला लेने की भावना रखी। इन वेश्या माता ने भी मेरे साथ केसा व्यवहार किया था, यह तो आप लोगो को मालूम ही हे। फिर भी मेने इन पर किचित भी क्रोध नही किया न मेरे मे यह भावना आई कि इनका अहित हो। वल्कि जव बन्दरो ने इनको पीडा पहुचाई तब इसके सहायक लोग तो भाग गये ओर मेने आगे बढकर इनकी सेवा की। पश्चात् इन मूला माता ने भी सन्देह के कारण मुझे कलक दिया, मेरा सिर मूडा मेरे हाथ–पाव मे हथकडी–वेडी डाली और मेरे शरीर के वस्त्र छीन केवल काछ लगाकर मुझे इस इच्छा से अधेरे भोयरे मे डाल दिया, कि यह इसी मे मर जावे। फिर भी मेरे हृदय मे न तो इनके प्रति क्रोध ही हुआ न इनसे वदला लेने की भावना ही हुई। इस प्रकार की सहनशीलता ओर अक्रोध आदि का ही परिणाम हे जो आप देख रहे ह।

तात्पर्य यह कि माता ने अपनी शिक्षा द्वारा मेरे मे जो गुण भरे थे उनके प्रताप से मैंने यह समझा कि सुख मिलने का उपाय हे दूसरे को सुख देना किसी पर क्रोध न करना किसी प्रकार की सेवा करने मे सकोच न होना बदले की भावना को न जन्मने दना ओर अपकार का भी उपकार करना। इन्हीं वातो स सुख प्राप्त हो सकता हे। आप प्रत्यक्ष देख रहे हे कि मेरे मे जो गुण थे, ता अपकार की दृष्टि स किये गये कार्य भी मेरे लिए उपकार रूप हो गये। रथी–पिता आर सेठ–पिता के यहा मेरे लिए जो कुछ किया गया यदि वह न किया जाता तो क्या भगवान महावीर का आदेश पूरा हो सकता था? आर उस दशा मे आज आप जो रचना देख रहे हैं वह हो सकती थी?

यह सब उन्हीं कार्यों का प्रताप है, जो करने वालो ने अपकार की दृष्टि से किये परन्तु मैंने जिन्हे उपकार रूप माना।

अब मैं आपसे यही कहती हू कि मेरे आत्मा से सबध जोडने के लिए आप उन्ही गुणो को अपनाओ जो माता की शिक्षा से मेरे मे आये हे। इन गुणो को अपनाने पर मेरे और आपके आत्मा का सबध जुडेगा, फिर आपको किसी प्रकार का पश्चात्ताप न करना पडेगा, किन्तु आप सदा ही सुखी रहेगे। आप लोग यदि अधिक बातो को ध्यान मे नही रख सकते तो केवल इतना ही ध्यान मे रखे कि दूसरे को सुख देने से ही स्वय को सुख प्राप्त होता हे। यदि आपने इतनी भी बात ध्यान मे रखी, और सबको सुख देने मे ही रहे, कोई आपको दु ख दे, तब भी आप उसको सुखी बनाने, सुख पहुचाने का ही उपाय करते रहे तो, फिर आपको सदा सुख ही मिलेगा, दु ख तो कभी होगा ही नहीं, तथा मेरे आत्मा से सबध जुड जावेगा।

चन्दनबाला का पूर्व इतिहास सहित उपदेशपूर्ण भाषण सुनकर सब लोग गद्गद् हो गये। कोई तो कहते थे कि वास्तव मे उस समय इस सती का महत्व न जानकर तथा धर्म की उपेक्षा करके हमने वेश्या का साथ दिया था। हम चाहते थे कि यह बहुत सुन्दर है इसलिए वेश्या हो जावे तो अच्छा। परन्तु आज हमको अपने उस कृत्य के लिए यह विचारकर पश्चात्ताप हे कि यदि यह सती वेश्या हो जाती तो ससार की क्या दशा होती? त्रिलोक का कल्याण करने वाले भगवान महावीर का जीवन कैसे रहता? जो हुआ सो हुआ अब से हम इस सती के उपदेशानुसार ही व्यवहार करेगे। कोई कहते थे कि वास्तव मे जब यह सती बिक रही थी, तब हमने इसके कहने पर विश्वास नही किया था और बीस लाख सोनैया को बहुत माना था। धन्य है धनावा सेठ को जिसने इस सती के लिए 20 लाख सोनैया व्यय करके अपने धन का सदुपयोग किया। हमे अपनी उस भूल के लिये खेद है, लेकिन अब सती के उपदेशानुसार कार्य न करने की भूल न करेगे।

इस प्रकार उपस्थित जनता सती का उपदेश सुनकर गद्गद् हो गई। सबके हृदय पर चन्दनबाला के उपदेश का बहुत अच्छा प्रभाव पडा और सभी ने यथाशक्ति उपदेशानुसार व्यवहार करने का निश्चय किया। यह देखकर सतानिक दग रह गया। वह सोचने लगा कि जो कार्य हजार तलवार से नही हो सकता था वह कार्य सती ने सहज ही कर डाला। धन्य हे इनको ओर इनके माता–पिता को।

सब लोगो को उपदेशामृत पान कराकर जनता से घिरी हुई सती चन्दनबाला सतानिक के महल को चली। सती का उपदेश सुनने से जनता

का हर्षोल्लास बहुत बढ गया था, इसलिए वह पहले से भी अधिक जोर से जयजय–नाद करती जाती थी। उसी जयध्वनि के मध्य चन्दनबाला ने सतानिक के महल मे प्रवेश किया। सतानिक ने भक्तिभाव पूर्वक चन्दनबाला का सत्कार किया, और उसे सिहासन पर बेठाया।

सिहासन पर बेठकर चन्दनबाला ने धनावा सेठ, मूला, वेश्या रथी आदि साथ आये हुए लोगो को प्रिय वचन कहकर विदा किया। सती का गुणगान करते हुए सब लोग अपने घर चले। सती आनन्द पूर्वक महल मे रहती हुई धर्माराधना करने लगी। मृगावती से उसकी धर्म–चर्चा हुआ करती जिसमे सतानिक भी भाग लिया करता। इस प्रकार जिस महल मे किसी समय पाप हत्या, अत्याचार की ही बाते हुआ करती थी, उसी मे चन्दनबाला के आने से धर्म–चर्चा होने लगी।

शत्रु से मित्र

शत्रुता या मित्रता का उद्गम स्थान हृदय है। हृदय मे जो भावनाए होती हैं उन्ही से शत्रुता या मित्रता की उत्पति होती है। जब हृदय मे किसी के प्रति अच्छे भाव होते हैं तब तो मित्रता का जन्म होता है, और जब बुरे भाव होते हैं तब शत्रुता का जन्म होता है। जिसके प्रति न अच्छे भाव होते है न बुरे भाव होते है उसके प्रति उदासीनता रहती है। ऐसे व्यक्ति के प्रति न तो शत्रुता ही रहती हे न मित्रता ही।

किसी के प्रति अच्छे और किसी के प्रति बुरे भाव धर्म को न समझने वाले अज्ञानी लोगो मे ही होते हैं। जिनमे राग द्वेष हे, उन्ही मे इस तरह का भेदभाव हुआ करता है। बल्कि जिसमे जितना भी अधिक राग–द्वेष है, उसमे इस प्रकार के भेद का भी उतना ही आधिक्य है। लेकिन जो ज्ञानी हैं, जिन्होने राग–द्वेष को जीत लिया हे, उनमे इस तरह का भेदभाव नही होता, किन्तु सबके प्रति सद्भाव ही रहता है। वे सभी का कल्याण ही चाहते ह। उनमे किसी के प्रति शत्रुता का जन्म ही नही होता है, सभी को मित्र मानते है। यह शत्रु हे यह मित्र है ओर यह न शत्रु है न मित्र हे, इस तरह का भेद अज्ञानियो मे ही रहा करता है। जिससे किसी प्रकार का स्वार्थ सधता है, उसे मित्र माना जाता है जिससे किसी स्वार्थ की हानि होती है, या जो स्वार्थ मे बाधक है, उसे शत्रु समझा जाता है और जिससे न तो स्वार्थ बनता है, बिगडता है, उसके प्रति उदासीनता रहती है। इस प्रकार शत्रुता ओर मित्रता का जन्म स्वार्थ–भावना से ही हे, और वह स्वार्थ–भावना भी सासारिक पदार्थों की। ज्ञानियो मे इस प्रकार की स्वार्थ–भावना नही रहती वे ससार के किसी भी पदार्थ की चाह नहीं करते, वे किसी को भी अपने स्वार्थ मे बाधक नहीं समझते इसलिए उनमे किसी के प्रति शत्रुता भी नहीं रहती किन्तु सबके प्रति मित्रतापूर्ण सबध ही रहता है।

शत्रु समझता था। जब से
उसके हृदय मे चम्पा के राज्य का लोभ जगा था तभी से वह चम्पा के राजा दधिवाहन को बाधक मानकर शत्रु समझता था और अपने इस शत्रु को जीतकर अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए ही उसने चम्पा पर चढ़ाई की थी। सतानिक को लोभ-ग्रस्त समझकर उसकी भावना जानकर दधिवाहन बिना युद्ध किये ही चम्पा का राज छोडकर जगल को चला गया था। दधिवाहन के चले जाने पर तो सतानिक के हृदय म उसके प्रति शत्रुता न रहनी चाहिए थी, परन्तु सेनापति आदि के कहने से उसको इस बात का भय था कि अपना राज्य पुन प्राप्त करने के लिए दधिवाहन किसी समय आक्रमण न करे। इस भय के कारण उसने दधिवाहन को मार डालने या बन्दी बनाने का उपाय भी किया किन्तु उसे इस प्रयत्न मे सफलता नही मिली। इसी बीच म उसे मृगावती और सती चन्दनबाला के उपदेश की फटकार लगी जिससे वह पर-द्रव्य-लोलुप न रहा और उसकी भावना एकदम बदल गई। वह समझ गया कि मेरा चम्पा का राज्य लेना तथा दधिवाहन को शत्रु मानना अनुचित है। मैंने चम्पा पर चढाई करके अन्याय किया हे। इन बातो का समझने के कारण ही उसने सबके सामने यह प्रतिज्ञा की कि मे दधिवाहन का पता लगाकर उन्हे वापस बुलाऊगा, उनसे क्षमा चाहूगा और उनका राज्य उन्हे लोटाकर चम्पा की जो हानि हुई हे उसकी पूर्ति करूगा।

इस निश्चय के अनुसार सतानिक ने अपने आदमियो को दधिवाहन की खोज मे भेजा। उसने उनसे कह दिया कि दधिवाहन जहा हो वहा से उन्हे सम्मान पूर्वक ले आओ। दधिवाहन को खोजते हुए सतानिक के आदमी दधिवाहन के पास जा पहुचे। उन्होने नम्रता पूर्वक दधिवाहन से कहा कि चलिये, आपको महाराजा सतानिक याद कर रहे हैं। यह सुनकर दधिवाहन कहने लगे कि क्या अभी सतानिक की दुर्भावना नही मिटी है? क्या चम्पा का राज्य पाकर भी उसको सन्तोष नही हुआ? मैं उसके लिए चम्पा का रा[illegible] छोडकर जगल म चला आया राजसी ठाठ के बदले यहा जगलो म [illegible] की तरह जीवन-निर्वाह करता हू, वन के फलो से अपना पेट भरता हू, फिर भी वह मेरे प्राण लेना चाहता है। क्या उसको मेरी ओर से भय बना हुआ [illegible] लोग जाकर सतानिक से कह दो कि वह मेरी ओर से किसी [illegible] भय न रखे। राज्य की इच्छा से युद्ध करने की [illegible] उत्पन्न नही हो सकती। यदि मुझे युद्ध करना होता तो [illegible] युद्ध न करके यहा क्या चला आता? मुझे युद्ध से [illegible]

ओर से भय क्यो रखता है, और मुझे बुलाकर व्यर्थ ही क्यो मेरी हत्या करना चाहता है?

दधिवाहन का कथन सुनकर सतानिक के आदमी कहने लगे कि आप विश्वास रखिये सतानिक ने आपकी हत्या करने के लिए आपको नही बुलाया है। सतानिक अब वह सतानिक नही रहा है जो पहले था अब उसका सर्वथा परिवर्तन हो गया है।

यह कहकर उन लोगो ने धारिणी के बलिदान–चन्दनबाला के बिकने उसके द्वारा भगवान महावीर का पारणा होने इन्द्रादि द्वारा उसकी महिमा सतानिक को उपदेश, और सतानिक का सुधार, उसकी प्रतिज्ञा आदि सब वृत्तान्त कह सुनाया। तत्पश्चात उन्होने कहा कि सतानिक ने अपनी पतिज्ञा के अनुसार चम्पा का राज्य देने के लिए ही आपको बुलाया हे। इसलिए आप किसी प्रकार का सन्देह मत रखिये और कौशाम्बी को पधारिये।

धारिणी की मृत्यु और मृत्यु का कारण जानकर दधिवाहन को बहुत ही दु ख हुआ। साथ ही चन्दनबाला का सब वृत्तान्त सुनकर प्रसन्नता भी हुई ओर यह विचार भी हुआ कि मैं अपनी पुत्री वसुमति–जो अब चन्दनबाला के नाम से प्रसिद्ध है उसको मुह केसे दिखाऊ। मैं उन माता–पुत्री को अरक्षित छोडकर जगल मे चला आया था इसी कारण धारिणी को सतीत्व की रक्षा के लिए मरना पडा ओर पुत्री को अनेक कष्ट भोगने पडे। ऐसी दशा मे मैं उसके सामने कैसे जाऊं? इस प्रकार के विचारो के कारण दधिवाहन को कौशाम्बी जाने मे सकोच होने लगा लेकिन सतानिक द्वारा भेजे गये आदमियो के बहुत समझाने–बुझाने पर दधिवाहन ने कौशाम्बी चलना स्वीकार किया।

सतानिक ने अपने आदमियो के साथ दधिवाहन के लिए जो वाहन भेजा था उस पर बैठकर दधिवाहन कौशाम्बी को चला। दधिवाहन आ रहे हैं इसकी सूचना सतानिक को हुई। सतानिक ने दधिवाहन के स्वागतार्थ नगर, महल आदि को सजवाया। फिर वह प्रतिष्ठित–प्रतिष्ठित पुरवासियो एव कर्मचारियो को लेकर दधिवाहन का स्वागत करने चला। नगर के और लोग भी सतानिक ओर दधिवाहन का मिलन देखने के लिए चले। कौशाम्बी के बाहर सतानिक ओर दधिवाहन की भेट हुई। दधिवाहन को देखते ही सतानिक ने ओर सतानिक को देखते ही दधिवाहन ने अपना–अपना वाहन त्याग दिया तथा पेदल ही एक दूसरे की ओर चले। समीप पहुचने पर सतानिक दधिवाहन के पेरो पर गिर पडा ओर कहने लगा कि मुझ पापी को क्षमा करो। मैंने आप ऐसे धर्मात्मा पर बहुत ही अत्याचार किया हे। मेरी लोभ–भावना के परिणामस्वरूप

ही आप ऐसे आदर्श प्रजापालक राजा को जगल की यातनाए भोगनी पडी हैं, सती धारिणी को प्राण त्यागने पडे हैं ओर आपकी पुत्री सती वन्दनबाला को अनेक कष्ट सहने पडे हे। मेने भयकर अपराध किये हैं। मे आपसे अपन सब अपराधो के लिए क्षमा चाहता हू। आप उदारतापूर्वक क्षमा प्रदान करके मेरा उद्धार करे।

सतानिक को इस प्रकार पश्चात्ताप करते देखकर दधिवाहन का हृदय भर आया। दधिवाहन ने सतानिक को उठाकर अपने गले से लगाया ओर उससे कहा कि जो होना था वह हुआ, अब उन बीती बाता को याद करना व्यर्थ हे, तुम मेरे सबधी ओर मित्र हो। आज अपना सबध तथा अपनी मित्रता पुन नवीनता को प्राप्त हुई हे जो चिरस्थाई रहेगी। इसलिए आप किसी तरह का खेद न करे, किन्तु प्रसन्न हो।

सतानिक को इस प्रकार धेर्य देकर दधिवाहन ने उसका खेद मिटाया। सतानिक सम्मानपूर्वक दधिवाहन को लेकर महल की ओर चला। साथ ही जनता जय-जयकार करती जा रही थी। नगर म यह बात प्रसिद्ध हो चुकी थी कि जिस सती के हाथ से भगवान महावीर का पारणा हुआ है उस सती के पिता महाराज दधिवाहन आज पधार रहे हैं। यह समाचार फैलने से नगर की समस्त जनता राजमार्ग की ओर उमड पडी ओर उसके दोनो किनार खडी हाकर महाराजा दधिवाहन की प्रतीक्षा करने लगी। महाराजा दधिवाहन क आन पर उनका दर्शन करक सब लाग प्रसन्न होकर धन्य-धन्य तथा जय-जय की ध्वनि करन लग।

इस प्रकार क समाराह क साथ महाराजा दधिवाहन सतानिक क महल के समीप आय। सतानिक का भव्य महल [illegible] म पूरी तरह सजा हुआ था ओर जन्म स महलो म रहने वाले दधिवाहन [illegible] दिना तक जगल म भी रह चुक थ इसलिए दधिवाहन को [illegible] देखकर प्रसन्नता हानी चाहिए थी फिर भी दधिवाहन [illegible] मे बहुत सकाच हा रहा था। वह यह सोचते थे कि [illegible] जिस म अपना मुह कस दिखाऊगा? इस सकोच के [illegible] बडी कठिनाई स आग की ओर बढता था।

दधिवाहन जस-तस सतानिक के [illegible] आदरपूर्वक दधिवाहन का सिहासन पर [illegible] किया।

महल की दासियो ने चन्दनबाला को दधिवाहन के आने की सूचना दी। चन्दनबाला के स्थान पर यदि कोई दूसरी कन्या होती तब तो वह दधिवाहन का मुह भी नही देखना चाहती, अथवा उसकी यह कहकर भर्त्सना करती कि तुम पिता होकर भी मुझको और मेरी माता को छोडकर जगल को भाग गये। लेकिन चन्दनबाला को दधिवाहन के वन जाने का कारण धारिणी ने भी समझाया था, तथा चन्दनबाला स्वय भी जानती थी कि किस ध्येय को सामने रखकर पिता ने युद्ध नही किया और वे वन को चले गये। इस जानकारी के कारण उसके हृदय मे दधिवाहन के विषय मे कोई प्रतिकूल विचार नही हुआ। दधिवाहन का आगमन सुनकर वह प्रसन्न ही हुई। वह सोचती थी कि मुझे माता ने जो शिक्षा दी थी, उस शिक्षा के अनुसार कार्य करने मे कहा तक सफल हुई हू, यह बात तो पिता से ही मालूम होगी। में तो समझती हू कि माता ने मुझे जो शिक्षा दी थी, उसके अनुसार व्यवहार करने से ही आज मौसा और पिता का मिलन हुआ है, तथा ये दोनो मित्र बन सके है।

इस प्रकार विचारती और प्रसन्न होती हुई चन्दनबाला दधिवाहन के सामने आई। उसने दधिवाहन का नम्रतापूर्वक अभिवादन किया। चन्दनबाला को प्रणाम करती देखकर दधिवाहन रो पडा। वह रोता हुआ चन्दनबाला से कहने लगा कि हे सती! तू किस दुष्ट को प्रणाम कर रही है। मै ही पापी हू, जो तुझको ओर तेरी माता को अरक्षित छोडकर जगल मे चला गया था, तथा जिसके परिणामस्वरूप तेरी माता को अपना सतीत्व बचाने के लिए प्राण त्यागने पडे और तुझको बाजार मे बिककर अनेक कष्ट भोगने पडे। यद्यपि मे कायरतावश जगल को नही गया था, किन्तु जन–हत्या न हो, इस उद्देश्य से गया था तथा मुझको यह विश्वास भी था कि तुम दोनो अपनी–2 रक्षा करने मे समर्थ हो फिर भी मेरे लिए तो यह आवश्यक कर्त्तव्य था कि मै तुम्हारी रक्षा का प्रबन्ध करता। मेने अपने इस कर्त्तव्य का पालन न करने का पाप किया हे इसलिए में अपराधी हू, ओर इस योग्य नही हू कि तुझसी सती मुझे प्रणाम करे। मुझे यही आश्चर्य हो रहा है कि तुझ जैसी सती मेरी पुत्री केसे हुई? यह वैसी ही आश्चर्य की बात हे, जेसी आश्चर्य की बात अरण्ड मे आम लगने की हो सकती है। वस्तुत में इस योग्य नही हू कि तुम्हारा पिता कहलाऊ।

दधिवाहन को इस प्रकार अधीर देखकर चन्दनबाला उसे सान्त्वना देने लगी। वह कहने लगी–पिताजी आप ऐसे धीर–वीर के लिए इस प्रकार

का विलाप अशोभनीय हे। आपने जो कुछ किया वह किसी उच्च आदर्श को दृष्टि मे रखकर किया ओर उसका परिणाम केसा अच्छा हुआ—इसका विचार करो। यदि आप जनहत्या से घृणा करके वन को न जाते ओर युद्ध करते अथवा मुझको अथवा मेरी माता को वन मे साथ ले जाते या किसी दूसरी जगह भेज देते तो जो रचना हुई हे क्या वह रचना हो सकती थी? यदि माता ने अपने प्राण न दिये होते, तो उन्होने मुझे जो उपदेश दिया था, क्या वह उपदेश चिरस्थायी हो सकता था? ओर क्या जिन रथी ने पितावत मेरी रक्षा की, वे सुधर सकते थे? उनसे मेरी रक्षा हो सकती थी? इसी प्रकार क्या मेरे हाथ से भगवान महावीर का पारणा हो सकता था? कदाचित् ये सब बाते हो भी जाती, तब भी आपकी ओर मोसाजी की शत्रुता तो बनी ही रहती वह तो न मिटती। आपने युद्ध नही किया, ओर मुझ तथा माता को छोडकर चले गये इसी का यह सब प्रताप हे। यदि आप हमको छोडकर वन न भी जाते तो भी क्या हमारी रक्षा कर सकते थे? क्या कोई किसी की रक्षा मे समर्थ है? वास्तव मे कोई किसी की रक्षा नही कर सकता केवल धर्म ही सबकी रक्षा करने मे समर्थ हे। दूसरे तो निमित मात्र हैं। आपके चले जाने से मुझे किसी प्रकार का कष्ट नही हुआ। जिसे आप या दूसरे लोग कष्ट समझते हैं वह कष्ट नही किन्तु भगवान महावीर का आह्वान करने देश पर लगे हुए हिसात्मक युद्ध का कलक मिटाने, ओर राज्य—लोभ के कारण आप मे ओर मोसाजी मे जो वरभाव उत्पन्न हो गया था उसे नष्ट करके उसके स्थान पर मित्रता स्थापित कराने के लिए तपस्या थी। इसलिए मेरे विषय मे किसी प्रकार का खेद अनावश्यक हे। रही माता के मरने की बात सो किन्तु यदि माता के मरण पर भली प्रकार विचार करेगे तो आपको किसी प्रकार का खेद न होगा, अपितु प्रसन्नता होगी।

यह कहकर चन्दनबाला ने धारिणी की मृत्यु का आद्योपान्त वर्णन दधिवाहन को सुनाया। यह कह करके वह फिर दधिवाहन से कहने लगी कि—पिताजी माता की मुत्यु कभी तो होती ही फिर क्या इस प्रकार का पण्डित—मरण कुछ बुरा हे जो आप उनकी मृत्यु के विषय मे किसी प्रकार की चिता करे।

इस प्रकार चन्दनबाला ने अपनी ओजपूर्ण वाणी से दधिवाहन [illegible] का समस्त खेद मिटा दिया। साथ ही सतानिक और दधिवाहन [illegible] स्थापित करा दी। इतने ही मे रथी भी वहा आ गया। वह [illegible] मे पडकर उनसे कहने लगा कि आपकी सती पत्नी की मृत्यु का कारण [illegible]

ही हू। इसलिए आप जो भी उचित समझे, मुझे दण्ड दीजिये। चन्दनबाला ने दधिवाहन को रथी का परिचय करा कर अपना तथा धारिणी का उससे क्या सबध है यह बताया तथा सतानिक द्वारा उसे अभय किये जाने का वृत्तान्त भी कहा। चन्दनबाला द्वारा कहा गया सब वृत्तान्त सुनकर दधिवाहन ने भी रथी को अपने गले से लगाया ओर सात्वना देकर उससे कहा कि आज से तुम मेरे भाई हो इसलिए किसी प्रकार का भय मत करो। इस प्रकार चन्दनबाला ने रथी और दधिवाहन मे भी बन्धुत्व स्थापित करा दिया।

दधिवाहन को कुछ दिन विश्राम लेने देकर, एक दिन चन्दनबाला ओर मृगावती की उपस्थिति मे सतानिक ने दधिवाहन से कहा कि महाराज, इस सती के प्रताप से ही मेरा ओर आपका पुन मिलन ओर मित्र-भाव स्थापित हुआ है। यदि यह सती न होती तो ऐसा न होता। कदाचित मेरे बदले आप विजयी हुए होते तब भी वेर तो बना ही रहता। इस सती के प्रताप से ही मुझको अपनी सब बुराइया मालूम हुई हैं ओर में यह समझ पाया हू कि जिसमे प्रजा-पालन की भावना हे, जो अपना हित नही देखता, किन्तु प्रजा का हित देखता हे ओर प्रजा के हित के ही कार्य करता है, वही राजा हे। जिसमे यह बात नही हे वह राजा होने के योग्य नहीं हे। यह ज्ञात होने से मे इस बात को जान सका हू कि वास्तव मे राजा होने के योग्य आप ही हें। में राजा होने के योग्य नहीं हू। यह बात दूसरी है कि आगे चलकर आपकी कृपा से मेरे मे भी ऐसी योग्यता आ जावे परन्तु मेरे अब तक के कार्य यह बताते हें कि मैं राज्य करने योग्य नही हू। इसलिए मैने निश्चय किया है कि अपना राज्य आपको सोंपकर में आपके समीप रहता हुआ इन बातो का ज्ञान प्राप्त करूगा कि राज्य किस तरह किया जाता है ओर प्रजा का हित किन-किन कार्यों से होता है। चम्पा का राज्य तो आप ही का है, वहा का राज्य आपको सोपकर राज्याभिषेक किया ही जावेगा, लेकिन मेरी इच्छा है कि चम्पा के राज्य का राज्याभिषेक करने के साथ ही कोशाम्बी का भी राज्य भी आप ही को सोंप दू। आप कोशाम्बी का भी राज्य करे और आपके राज्यकाल मे चम्पा की प्रजा जिस आनन्द का अनुभव कर चुकी हे तथा अब करेगी उस आनन्द का अनुभव कोशाम्बी की प्रजा को भी करावे।

जिस महल मे बेठकर जो राजा सतानिक किसी दिन दधिवाहन से चम्पा का राज्य छीनने का विचार करता था उपाय सोचता था और चम्पा पर चढाई करने का निश्चय किया था, उसी महल मे वही सतानिक, दधिवाहन

को चम्पा का राज्य लोटाने के साथ ही कोशाम्बी का राज्य भी देना चाहता हे। इस प्रकार के परिवर्तन का कारण सती चन्दनबाला के प्रताप से दुर्भावना मिटकर सद्भावना का आना हे।

सतानिक की बात सुनकर दधिवाहन ने प्रसन्न होते हुए उससे कहा—राजन् आप चम्पा का राज्य मुझे लोटाना चाहते हैं यह जानकर मेरे को प्रसन्नता नही हुई लेकिन आपके हृदय का जो परिवर्तन हुआ हे उससे मुझे अवश्य ही अत्यधिक प्रसन्नता हे। आप मे पहले चाहे जो बुराई रही हो लेकिन अब में आप मे कोई बुराई नही देखता। आपका यह दृष्टिकोण जो राज्य के विषय मे पहले था अब बदल गया हे। उस दृष्टिकोण के बदलने से आप प्रजापालक ओर धर्मात्मा नरेश सिद्ध होगे तथा प्रजा भी प्रसन्न रहेगी एवं सुख—समृद्धि होगी। में अब वृद्ध हुआ हू। दीर्घकाल तक वन मे रहने के कारण मेरे मे पहले की सी शक्ति भी नही रही हे। अब तो मेरी यही इच्छा हे कि में अपना जीवन परमात्मा के भजन मे लगाऊ। वेसे तो में चम्पा का राज्य छोड सकता या न छोड सकता लेकिन आपकी कृपा से मेरे सिर पर स यह बोझ भी उतर गया हे। में नही चाहता कि जो बोझ मेरे सिर पर से सहज ही उतर गया हे उसे मे फिर उपने सिर पर लू। लेकिन आप तो मेरे सिर पर दुगना बोझ लादना चाहते हैं। आप मुझे क्षमा करिये ओर जिस तरह अभी दोना जगह का राज्य कर रहे हे उसी तरह करते रहिये। मुझे अब राज्य के [illegible] डालिय।

दधिवाहन ओर सतानिक दोना ही एक दूसरे स राज्य [illegible] अनुरोध करने लगे। सतानिक कहता था कि मेने राज्य का उद्देश्य [illegible] उतमोत्तम—भोग भोगना ही समझ रखा था। इस उद्देश्य के कारण [illegible] केसा कष्ट भोगना पडता हे आदि बाता की ओर मेरा किचित भी [illegible] था। सती की कृपा से अब वह मेरी भावना बदली अवश्य हे [illegible] सस्कारो के कारण अभी इस भावना के पुन जागृत होने का भय हे [illegible] अधीनता मे कुछ दिन तक रहने स मेरी इस प्रकार की [illegible] नष्ट हो जावगी ओर उस दशा मे मेरा राज्य करना [illegible] दोनो जगह के राज्य का भार अपने पर [illegible] आपकी आज्ञानुसार सब काम करने के लिए सदा तैयार [illegible] आप ही कीजिये।

सतानिक तो दधिवाहन से इस प्रकार [illegible]

सतानिक से कहता था कि आप [illegible]

मे बुरी भावना थी तब तक आपने उसके अनुसार कार्य किया परन्तु अब आपकी भावना बदल गई है इसलिए आपसे उस तरह के कार्य नही हो सकते। मैं वृद्ध हू इसलिए आप मुझे राज्य के झगडे मे मत डालिये।

राज्य के विषय मे दोनो की बाते सुनकर, मृगावती और चन्दनबाला प्रसन्न हो रही थी। वे सोचती थी कि जिस राज्य के लिए युद्ध करके महान जन-हत्या की जाती है उस राज्य को ये दोनो आज उसी प्रकार एक दूसरे की ओर फेक रहे हैं, जैसे गेद खेलने वाले लोग एक दूसरे की ओर गेद फेंका करते है। यह सब धर्म समझने का ही प्रताप है।

सतानिक ओर दधिवाहन के पारस्परिक अनुरोध का अन्त न देखकर चन्दनबाला कहने लगी, कि-आप दोनो, आज इस प्रकार एक दूसरे को राज्य सौंपना चाहते है- यह तो प्रसन्नता की बात है, लेकिन जो भार दो आदमियो से उठने योग्य है जिसे उठाने मे एक आदमी को कठिनाई हो सकती है, उस भार को किसी एक पर ही डालना ठीक नही हो सकता। राज्य प्रजा की रक्षा करने और उसे सुख-सुविधा पहुचाने के लिए ही है। इसके सिवा राज्य का कोई उद्देश्य नही है। और यदि कोई व्यक्ति दूसरा उद्देश्य समझता है तो वह पथभ्रष्ट है। राज्य को अपने भोगोपभोग के लिए मानकर राज्य करना एक बात है और प्रजा की सेवा के लिए राज्य करना दूसरी बात है। जो व्यक्ति राज्य को स्वय के भोगोपभोग के लिए समझता है, वह अपना राज्य दूसरे को देने की इच्छा नही कर सकता हा, दूसरे का राज्य हडपना अवश्य चाहेगा। लेकिन आप दोनो मे राज्य को स्वय के भोगोपभोग के लिए मानने की भावना नही है किन्तु प्रजा की सेवा की भावना है। इस भावना से राज्य करने मे किसी प्रकार की बुराई नही है, अपितु ऐसा करना क्षत्रियो का कर्त्तव्य है। इसलिये यदि आप लोग मेरी बात माने, तो मैं आपसे यही कहती हू कि दोनो जगह के राज्य का भार किसी एक पर मत डालिये, किन्तु स्वय के राज्य का भार स्वय ही उठाइये और आपने मेरे मे जो भावना देखी है उसी भावना के अनुसार राज्य कीजिये।

सती का यह कथन सुनकर दोनो चुप हो गये। न तो सतानिक ही और कुछ कह सका न दधिवाहन ही। इस विषय मे ओर कोई बात न करके सतानिक ने दधिवाहन, मृगावती चन्दनबाला तथा और लोगो की सम्मति से, दधिवाहन को चम्पा का राज्याभिषेक किये जाने का दिन नियत किया और राज्याभिषेक की तैयारी करने की आज्ञा दी। साथ ही, चम्पा को भी इसकी सूचना भेज दी।

दधिवाहन के राज्याभिषेक के उपलक्ष्य मे कोशाम्बी नगरी सजाई गई। जगह–जगह मगलोत्सव होने लगा। नियत तिथि समीप जानकर चम्पा के बहुत से लोग कोशाम्बी आये। दधिवाहन से मिलकर उन्हे वैसी ही प्रसन्नता हुई जेसी प्रसन्नता बछडे को अपनी माता से मिलने पर होती है। दधिवाहन ने उन सबकी कुशल पूछकर उनका उचित सत्कार किया। अन्त मे नियत तिथि के दिन समारोह–पूर्वक दधिवाहन को चम्पा का राजा बनाया गया। स्वय सतानिक ने दधिवाहन को राजमुकुट पहनाया। तत्पश्चात अपने दुष्कृत्या का वर्णन करके सतानिक ने उनके विषय मे पश्चात्ताप किया ओर दधिवाहन की प्रशसा करते हुए कहा कि मेने आज इन सुयोग्य तथा सज्जन नरेश का राज्य इन्हे लोटाकर अपने दुष्कृत्या का यत्किचित प्रायश्चित किया है। यह सब इन सती का ही प्रताप है। इन सती की कृपा से ही मेरे हृदय का परिवर्तन हुआ हे तथा यह सब रचना हुई है।

इस प्रकार सतानिक ने एक महत्वपूर्ण उद्घोषणा की व उद्बोधन दिया जिसे सुनकर सब लोग प्रसन्न हुए तथा सती चन्दनबाला दधिवाहन ओर सतानिक की प्रशसा करके उन्हे धन्यवाद देने लगे। सतानिक के भाषण के उत्तर मे दधिवाहन ने भी सक्षिप्त भाषण देकर सतानिक को हृदय-परिवर्तन के लिए बधाई दी एव उसकी प्रशसा की। इस प्रकार राज्याभिषेक–महोत्सव समाप्त हुआ तथा दधिवाहन ओर सतानिक आनन्द से कोशाम्बी मे रहने लगे।

उच्च ध्येय

किसी भी व्यक्ति को–जो पहले चाहे केसे भी आचरण का रहा हो–जो श्रेष्ठ आचरण रुच जाता है, वह किसी श्रेष्ठ आचरण की श्रेष्ठता को हृदय से स्वीकार लेता है तब वह उस श्रेष्ठ आचरण को अपनाता ही हे। यदि कोई व्यक्ति किसी श्रेष्ठाचरण की श्रेष्ठता को मुख से तो स्वीकार करता हे, लेकिन उसे अपनाता नही हे तो उसके लिए यही कहा जायेगा कि या तो उसकी आत्मा दुर्बल हे अथवा वह केवल ऊपर से ही श्रेष्ठाचरण को श्रेष्ठ कहता हे हृदय से उसकी श्रेष्ठता नहीं स्वीकारता। यदि उसकी आत्मा दुर्बल न हो तो वह स्वय द्वारा आचरित बुरे आचरण से परास्त न हो गया हो उससे अत्यधिक प्रभावित न हो तो जिसे वह श्रेष्ठ मानता है, उसको न अपनाकर अश्रेष्ठाचरण मे कदापि नही रह सकता। और जो व्यक्ति केवल ऊपर से ही श्रेष्ठता स्वीकार करता हे हृदय मे उसके विपरीत भाव रखता है, वह व्यक्ति तो पाखण्डी है। उसके विषय मे तो कुछ कहना ही नही हे।

जब दुराचारी व्यक्ति भी श्रेष्ठाचरण की श्रेष्ठता स्वीकार कर लेने पर दुराचरण को त्याग कर श्रेष्ठाचरण को ही अपनाता है, श्रेष्ठाचरण की उपेक्षा नही करता तो जो श्रेष्ठाचार की श्रेष्ठता भी मानता है और उसको अपनाए हुए भी हे वह श्रेष्ठाचरण को कब तक त्याग सकता है? ससार मे बहुत से ऐसे दुर्बल हृदय लोग भी होते हे जो श्रेष्ठाचार की श्रेष्ठता को मानते हुए और उसका अनुगमन करते हुए भी उसे त्याग देते है। लेकिन ऐसे लोग अपवाद–स्वरूप हें, इसलिये यहा उनका वर्णन नही है। यहा तो उन वीरात्मा के विषय मे कहा जाता हे, जो पत्थर की लकीर की तरह अपने निश्चय पर दृढ रहते हे।

चन्दनबाला को उसकी माता ने बचपन से ही ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी थी। उसने चन्दनबाला मे विवाह की भावना को जन्मने ही नही दिया था।

उसका विचार था कि मेरी पुत्री ब्रह्मचारिणी रहकर स्त्री–पुरुषा के सामने एक उच्चतम आदर्श रखे। उसने इस विचार से चन्दनबाला को ब्रह्मचर्य की ही शिक्षा दी थी ओर चन्दनबाला के हृदय मे भी माता की शिक्षा पूर्णत स्थान कर चुकी थी, उसको अपनी माता की शिक्षा पर किचित भी सन्देह या अविश्वास नही था। ब्रह्मचर्य का पालन न करने पर ससार मे केसी–केसी घटनाए घटती हे, इस बात को भी वह धारिणी की मृत्यु के समय रथी के यहा वेश्या के व्यवहार से ओर धनावा सेठ के यहा भली प्रकार जान चुकी थी। इस कारण माता की शिक्षा पर उसका विश्वास ओर भी बढ गया था। पश्चात् भगवान महावीर का दर्शन करने से तो उसमे ओर भी अधिक पवित्रता आ गई थी। इस कारण वह ब्रह्मचर्य को छोडकर विवाह–बन्धन मे पडना केसे स्वीकार कर सकती थी? फिर भी लोकिक रीति के अनुसार कन्या का विवाह करने के विषय मे माता–पिता को चिन्ता होना स्वाभाविक ही हे। इसीलिए दधिवाहन को चन्दनबाला के विवाह की चिता हुई ही।

एक दिन सतानिक ने देखा कि महाराजा दधिवाहन किसी गम्भीर विचार मे पडे हुए हैं। यह देखकर सतानिक दधिवाहन के पास गया। उसने दधिवाहन की विचारमग्नता भग करके दधिवाहन से कहा कि महाराज आज आप किस विचार मे पडे हुए थे? मैंने इतने दिनो मे आपको आज की तरह विचारमग्न कभी नही देखा। यदि मुझ से गुप्त रखने योग्य न हो तो मै जानना चाहता हू कि आप किस विचार मे पडे हुए थे?

सतानिक का यह प्रश्न सुनकर उत्तर मे दधिवाहन ने कहा कि–आपसे छिपाने योग्य कोई बात नही हे बल्कि जिस विषय मे मै विचार कर रहा था वह विषय आपके लिए भी विचारणीय हे। मैं यही सोचता था कि चन्दनबाला विवाह के योग्य हो गई हे, अत इस विषय मे क्या करना चाहिए? यद्यपि मुझे यह मालूम हे कि चन्दनबाला को उसकी मा ने ब्रह्मचर्य की ही शिक्षा दी है। इस विषय मे चन्दनबाला की माता से मेरी अनेक बार बातचीत भी हो चुकी हे लेकिन उस बातचीत को बहुत समय बीत चुका है। उस समय चन्दनबाला छोटी थी, ओर अब बडी हुई हे। अब वह अपने विषय मे किसी प्रकार का निर्णय करने की अधिकारिणी हो चुकी है। इसलिए उस समय की बातचीत के आधार पर इस समय भी चन्दनबाला से किसी प्रकार की बातचीत न करना अनुचित हे। आज चन्दनबाला की माता नहीं है परन्तु उसकी मौसी तो [illegible] हे। माता ओर मोसी समान ही है इसलिए इस विषय मे आप [illegible] प्रकट कीजिए ओर चन्दनबाला की मासी को [illegible]

ठीक जान पडे, उसके अनुसार कार्य करना चाहिए। मेरी समझ मे तो चन्दनबाला का विवाह बडे समारोह से करना चाहिए, जिसमे अपना अब तक का सब खेद भी मिट जावे, और वह भी सुखी हो।

दधिवाहन का कथन सुनकर सतानिक प्रसन्न हुआ। उसने दधिवाहन के कथन का समर्थन किया और मृगावती को बुलाकर उसे सब बातो से परिचित किया। मृगावती ने भी यह कहकर दोनो की बातो का समर्थन किया कि वास्तव मे अब चन्दनबाला विवाह के योग्य हो गई हे, इसलिए उसका विवाह कर देना ही उत्तम है। इस प्रकार तीनो इस निश्चय पर तो आए कि चन्दनबाला का विवाह करना, लेकिन चन्दनबाला से स्वीकृति लेने का प्रश्न शेष रह गया। इसके लिए दधिवाहन ने मृगावती से कहा कि विवाहादि कार्यो के विषय मे स्त्रिया जिस चातुरी से काम लेती हें वेसी चातुरी पुरुष नहीं दिखा सकते, और यह बात कन्या के विवाह से अधिक सबध रखती है। इसलिए चन्दनबाला से विवाह करने की स्वीकृति लेने का भार आप अपने पर लीजिये। चन्दनबाला से आप ही जैसा उचित समझे, वैसा कहिए। यदि आप चाहेगी तो हम दोनो भी आपके कथन का समर्थन करने के लिए आपके साथ रहेगे परन्तु उससे बातचीत करने का विशेष भार तो आप ही पर होगा।

दधिवाहन की इस बात का भी सतानिक ने अनुमोदन किया। मृगावती ने भी चन्दनबाला से बातचीत करने का भार अपने पर लिया। अन्त मे यह निश्चय हुआ कि अपन तीनो अमुक समय मे चन्दबाला के पास चले और उससे बातचीत करके विवाह करना स्वीकार करावे।

निश्चित समय पर मृगावती, सतानिक और दधिवाहन, चन्दनबाला के पास गये। इन तीनो का आगमन जानकर चन्दनबाला को प्रसन्नता हुई। उसने हर्ष सहित तीनो को प्रणाम करके योग्य आसन पर बैठाया। फिर हाथ जोडकर उनसे कहने लगी कि आज मेरा अहोभाग्य है, जो आप तीनो का एक साथ आगमन एव दर्शन हुआ। मे जानना चाहती हू कि आप लोगो ने किस उद्देश्य से पधारने का कष्ट किया हे? यदि आप लोगो की इच्छानुसार में कोई काम कर सकी तो स्वय को बडी सद्भागिन समझूगी।

चन्दनबाला का कथन सुनकर तीनों को बहुत प्रसन्नता हुई। चन्दनबाला के कथन के उत्तर मे मृगावती कहने लगी कि पुत्री तुम सब प्रकार से योग्य हो। तुमने जो वचन कहे हें वे तुम्हारे योग्य ही हें। तुमसे हमे ऐसे ही वचनो की आशा थी। हम जिस उद्देश्य से आये हें तुम्हारे वचनो से उसके पूरा होने की भी पूर्ण आशा हो चुकी हे। तुम्हारी कृपा से ही इन दोनो का मिलना हुआ

हे ओर ये मित्र बन सके हैं। अब हमारी एक इच्छा ओर हे हमे विश्वास हे तुम हमारी आशा को भी पूरी करोगी।

मृगावती की बात सुनकर चन्दनबाला बोली कि मातृभगिनी आपने मेरी प्रशसा मे जो कुछ कहा हे, वह आपका बडप्पन हे। बडे लोग छोटा की इस तरह बडाई किया ही करते हैं इसलिए आपके कथन के उत्तर म मुझे कुछ कहने की जरुरत नही हे। मुझे आप जो आज्ञा देगी वह भी धर्मयुक्त ही होगी। क्योकि, माता अपनी पुत्री को अधर्मयुक्त कोई आज्ञा नही दे सकती ओर जो आज्ञा धर्मयुक्त है उसका पालन करने मे मुझे कोई आपत्ति नही हो सकती।

चन्दनबाला का कथन समाप्त होने पर मृगावती कहने लगी कि हम लोग जिस धर्म का पालन कर रहे हे हमारा कथन भी अवश्य ही उस धर्म के अनुसार होगा। हम इस समय गृहस्थ्यधर्म का पालन कर रहे हैं। इसलिए हमारी बात भी उसके अनुकूल ही होगी। सतान वयस्क ओर योग्य होने पर उसका विवाह करना धर्म हे। इस धर्म की प्रेरणा से ही मे तुमसे यह कहने के लिये आई हू कि तुम्हारा शरीर विवाह के योग्य हो गया हे। इस अवस्था के हो जाने पर भी यदि कन्या अविवाहित रहती हे तो उसके माता-पिता आदि पर अपवाद लगाया जाता हे। तुम्हारे प्रताप से ओर सब आनन्द तो हुआ ही हे, अब हमारी इच्छा तुम्हारे विवाहोत्सव का आनन्द लेने की हे। परन्तु हमारी इस इच्छा की पूर्ति तुम्हारी स्वीकृति के आश्रित हे। गार्हस्थ्य धर्म के अनुसार, सन्तान की स्वीकृति के बिना उसका विवाह करना अपराध हे पाप हे। सन्तान अपने हिताहित का विचारकर सकने योग्य हो जावे तब उसकी स्वीकृति लेकर उसकी इच्छानुसार ओर अनुरूप वर या कन्या से उसका विवाह किया जा सकता हे। जब तक सन्तान अपने हिताहित के विषय मे विचार नही कर सकती, तब तक उससे ली गई स्वीकृति भी प्रमाण [illegible] हो सकती ओर हिताहित के विषय मे विचार करने योग्य [illegible] स्वीकृति न लेना भी अनुचित हे। तुम योग्य हो अपने हिताहित [illegible] करने मे पूर्ण समर्थ हो इसीलिये हम तीनो तुमसे स्वीकृति [illegible] हे। हमारा विश्वास हे, कि तुम स्वीकृति देकर [illegible]

इतना कहकर मृगावती चुप हो गई। [illegible] लगे कि रानी ने जो कुछ कहा हे वह अक्षरश [illegible] विवाहोत्सव देखने की बहुत उत्कण्ठा हे। [illegible] दधिवाहन कहने लगे कि—पुत्री वेसे तो तू [illegible]

हमारे बिना कहे ही सब बाते जानती–समझती हे। फिर भी हम अपना कर्त्तव्य पूरा करने के लिए तुझसे कुछ कहते हैं। कन्या के विवाह के विषय मे माता सब बातो पर जिस तरह विचार कर सकती है, उस तरह से पिता विचार नही कर सकता। आज तेरी माता नही है, लेकिन तेरी मोसी तो मौजूद हे। मोसी और माता समान ही मानी जाती हैं। बल्कि कई अश मे तो मौसी माता से भी बढकर है। इसलिये तुझे इनकी आज्ञानुसार कार्य करना उचित है। इनने जो कुछ कहा है वह तेरे हित को दृष्टि मे रखकर ही कहा हे इनके कथन से में भी पूर्णत सहमत हू। मेरी भी यह प्रबल इच्छा है कि किसी योग्य पुरुष के साथ तेरा विवाह करके अपने कर्त्तव्य का पालन करू ओर विवाहोत्सव देखकर अपने हृदय को प्रसन्न करू। इसलिए महारानी मृगावती के कथनानुसार विवाह करना स्वीकार करके हम सबकी अभिलाषा पूर्ण कर।

यह कहकर दधिवाहन भी चुप हो गये। तीनो चन्दनबाला के मुह की ओर देखने लगे कि यह क्या उत्तर देती है। तीनो की बातो को चन्दनबाला स्वाभाविक प्रसन्नता के साथ सुनती रही, और उनकी बात समाप्त होने पर कहने लगी कि आप तीनो का कथन योग्य ही है। माता के समान मौसी को और पिता के समान मौसा को मेरे विवाह की चिता होना स्वाभाविक है तो जो पिता है उनको चिता क्यो नही होगी? साधारण लोगो को भी अपनी युवती कन्या देखकर उसके विवाह की चिता होती है इसलिए आप लोगो को मेरे विवाह की चिता हो इसमे कोई आश्चर्य की बात नही। इस प्रकार की चिता करना गृहस्थो का कर्त्तव्य ही है। साथ यह भी कर्त्तव्य है कि सतान की स्वीकृति लिए बिना उसका विवाह न करे, इसीलिए जब तक सन्तान अपने हिताहित का विचार करने योग्य नही हो जाती, तब तक उसका विवाह नहीं किया जाता है। इस प्रकार आपका कथन और मुझसे स्वीकृति चाहना अनुचित नही हे। मैं विवाह करने को बुरा भी नहीं कहती हू। गृहस्थय जीवन बिताने के लिए विवाह करना एक आवश्यक बात हे। आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने भी विवाह किया था। मेरे हाथ से दान लेने की कृपा करने वाले भगवान महावीर ने भी विवाह किया था। और तो ओर जिनसे मेरा जन्म हुआ है उन माता–पिता ने भी विवाह किया था। इसलिए मैं विवाह–प्रथा की निदा नही कर सकती किन्तु यह स्वीकार करती हू कि जिनमे ब्रह्मचर्य–पालन की क्षमता नही हे उनके लिए विवाह करना आवश्यक है, लेकिन यह स्वीकार करती हुई भी में यही कहूगी कि श्रेष्ठ तो ब्रह्मचर्य ही है। ब्रह्मचर्य–पालन की शक्ति न होने पर भी में ब्रह्मचर्य स्वीकार करने को नहीं कहती परन्तु इस

शक्ति के होते हुए भी ब्रह्मचर्य न पालकर विवाह करना ऊपर से नीचे गिरना है। मेरी माता ने मुझको जन्म से ही ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी है। इस कारण मेरी नस–नस मे ब्रह्मचर्य समाया हुआ है। मैं ब्रह्मचर्य के सामने विवाह को हेय समझती हू। मेरे लिए आप लोग आदरणीय हैं और आप लोगो की आज्ञा पालनीय है। फिर भी आप लोगो के कहने से मैं ब्रह्मचर्यपूर्ण जीवन त्यागकर वैवाहिक जीवन मे नही पड सकती। न आप ऐसे सुयोग्य माता–पिता अपनी पुत्री को ब्रह्मचर्य के उच्च ध्येय से गिरा कर वैवाहिक जीवन मे डालना चाहेगे। इसलिए आप अपनी आज्ञा के विषय मे पुन विचार करे मेरा विश्वास है कि आप लोग भी मेरे ब्रह्मचर्य के विचार को ही प्रोत्साहन देगे। इसके सिवा मे विवाह करू भी किस पुरुष के साथ। किस पुरुष के लिए तेल–उबटन लगाऊ। ससार मे विवाह के समय तेल चढाया जाता है। कन्या पर जिस पुरुष के नाम का तेल चढाया जाता है वह कन्या ससार मे केवल उसी पुरुष को शुभ मानती है, दूसरे पुरुषो को शुभ नहीं मानती। लेकिन मैं तो इस प्रकार के शुभाशुभ से ही निकल चुकी हू। मेरे लिए कोई अशुभ रहा ही नही, फिर मैं किसी एक पुरुष के नाम का अपने पर तेल चढाकर अन्य पुरुषो को अशुभ कैसे मान सकती हू? आप लोगो को मैंने अपने अनुभव मे आई हुई सब बात सुनाई ही हैं। शुभाशुभ के झझट से न निकलने पर क्या होता है यह बताया ही है। इस प्रकार के अनुभव के पश्चात् भी मे शुभाशुभ मे कैसे रह सकती हू। विवाह के समय जिस पुरुष के नाम का उबटन चढाया जाता है स्त्री को उस पुरुष की दासी होकर रहना, उसी के हित का विचार करना और उसकी प्रसन्नता मे ही प्रसन्न रहना होता है। यह स्त्रियो का साधारण धर्म है। जो पतिव्रत धर्म के नाम से प्रसिद्ध है। जो स्त्री विवाह–बधन मे बधकर भी पतिव्रत धर्म का पालन नही करती, वह पतित मानी जाती है। वास्तव मे है भी ऐसा ही। प्रत्येक कार्य के नियमोपनियम का पालन तो करना ही चाहिए। इसी के अनुसार जब विवाह किया है, तो पतिव्रत धर्म का पालन करना ही चाहिए। फिर तो पति से जो उचित या अनुचित विरोध रखता है उसका मुह भी न देखना चाहिए। रावण राम का शत्रु था इसलिए सीता ने उसका मुह भी नही देखा। रावण तो अन्यायी अत्याचारी था। लेकिन यदि पति अन्यायी अत्याचारी हो, और वह किसी सज्जन पुरुष से अनावश्यक ही विरोध [illegible] पतिव्रत धर्म के अनुसार स्त्री को भी उस सज्जन से विरोध रखना [illegible] है। मुझसे यह कैसे हो सकता है कि किसी को [illegible] मानू। मेरे लिए तो ससार के सभी पुरुष [illegible]

कल्याण चाहती हू। विवाह करने के पश्चात् मैं सभी का हित और कल्याण नही चाह सकती। ऐसी दशा मे किस पुरुष के नाम का तेल–उबटन चढाऊ? किसकी पत्नी बनकर केवल उसी का हित चाहू?

एक बात ओर है। मेरी माता ने शाति–समर विषयक जो शिक्षा दी, मैंने उसके अनुसार कार्य करके तो माता का उद्देश्य पूरा कर दिया, परन्तु जिस उद्देश्य को पूरा करने के लिए माता ने मुझे बचपन से ही ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी थी अभी वह उद्देश्य मैंने पूरा नही किया है, और बिना ब्रह्मचर्य के वह उद्देश्य पूरा भी नही हो सकता। माता ने ससार मे फेली हुई पुरुषो की उच्छृखलता और स्त्रियो की पतितावस्था देखकर, मुझे उनमे साम्यभाव फैलाने के उद्देश्य से ही ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी थी। मैंने माता के इस उद्देश्य को अपने जीवन का लक्ष्य बनया है। ऐसी दशा मे मैं विवाह करना केसे स्वीकार कर सकती हूं?

चन्दनबाला का कथन सुनकर मृगावती, सतानिक ओर दधिवाहन साश्चर्य प्रसन्न हुए। मृगावती कहने लगी कि हम दोनो ब्रह्मचर्य को बुरा नही समझते। विवाह करने की अपेक्षा ब्रह्मचर्य–पालन करना श्रेयस्कर है। हम भी ब्रह्मचर्य को आदर की दृष्टि से देखते हैं, लेकिन ब्रह्मचर्य का पालन करना कोई सरल कार्य नहीं है। जलती हुई अग्नि पी जाना और भुजाओ से तैर कर समुद्र को पार करना तो सरल भी हो सकता है। ब्रह्मचर्य का पालन करना इससे कठिन है। ब्रह्मचर्य की कठिनाई को दृष्टि मे रखकर ही, हम आपसे विवाह करने का अनुरोध करते हैं। जैसे कोई बालक स्वय की शक्ति से परे का काम करना चाहे तो मा–बाप उसको वह कार्य करने से रोकते हैं, उसी तरह तुम्हे भी हम ब्रह्मचर्य–पालन से रोकते हैं। बहुत से लोग क्षणिक आवेश मे पडकर ब्रह्मचर्य पालन की प्रतिज्ञा तो कर डालते हैं, लेकिन फिर काम प्रकोप से पराजित होकर भ्रष्ट हो जाते हें। ऐसे लोग स्वय का भी अहित करते हैं और जनता का भी अहित करते हैं। तुम्हारे द्वारा ऐसा करने का समय आवे और कुल को कलक लगे, यह हम नही चाहते। इसलिए भी हम तुमसे विवाह करने को ही कहते हैं।

सतानिक ओर दधिवाहन ने भी मृगावती की बात को पुष्ट किया। वे भी कहने लगे कि वास्तव मे तुम यह नही जानती कि ब्रह्मचर्य का पालन करने मे किन किन ओर केसी कठिनाइयो का सामना करना होता है। उन कठिनाइयो से भय खाकर, बडे बडे ऋषि–मुनि भी पतित हो जाते हैं तो तू तो आखिर कन्या ही हे। हमारे निष्कलक वश मे उत्पन्न हुई कन्या द्वारा

ब्रह्मचर्य की ओट मे दुराचार का सेवन नितात लज्जास्पद बात होगी। इसलिए तुम ब्रह्मचर्य–पालन का साहस मत करो। किन्तु विवाह करना स्वीकार कर लो। विवाह करने के पश्चात भी यदि तुम नीतिपूर्वक जीवन व्यतीत करोगी तो गृहस्थाश्रम मे पाले जाने वाले ब्रह्मचर्य का पालन कर सकोगी।

तीनो की बातो के उत्तर मे चन्दनबाला कहने लगी कि वास्तव मे ब्रह्मचर्य का पालन करना सरल नही है। किन्तु आपने जैसा बताया उससे भी ज्यादा कठिन है, ओर मैं भी ब्रह्मचर्य को कठिन समझकर ही स्वीकार कर रही हू। ब्रह्मचर्य की ओट मे अब्रह्मचर्य का सेवन न हो, इसकी चिन्ता करना उचित ओर आवश्यक हे। ऐसा करने वाले लोग अपने साथ ही दूसरे लोगो को भी डुबाते हैं। परन्तु मेरी ओर से आप इस प्रकार का भय मत करिये। मुझे जन्म से ही ब्रह्मचर्य की शिक्षा दी गई हे। मैंने ब्रह्मचर्य को ही अपना मुख्य आचरण बना रखा है। विषय–विकार का वातावरण मेरे समीप आने भी नही दिया गया है, न मैंने ही अपने मन को उस ओर जाने दिया है। इसलिये मुझमे ब्रह्मचर्य–पालन की क्षमता हे, और अब तो भगवान महावीर का दर्शन करने से मेरी यह शक्ति ओर बढ गई है। मेरी बुद्धि ओर मेरी वाणी भगवान महावीर की तपाग्नि मे पडकर पवित्र हो गई हे। अव उसमे किसी प्रकार का विकार रहा ही नही हे। इसलिए आप मेरे ब्रह्मचर्य–पालन के विषय म किसी भी प्रकार का सन्देह न करे। मैं किसी भी समय ब्रह्मचर्य से पतित नही हो सकती। देव दानव यक्ष राक्षस आदि कोई भी मुझको ब्रह्मचर्य से पतित करने म समर्थ नही हो सकता। म महारानी धारिणी की पुत्री हू। महान सकट के समय भी अपने [illegible] की रक्षा किस तरह की जा सकती हे वह उपाय भी माता ने मुझे बता दिया है। इसलिए आप इस विषय म किंचित भी चिन्ता न कर।

चन्दनबाला का कथन सुनकर तीना ही को बहुत प्रसन्नता हुई और वे चन्दनबाला का धन्यवाद दकर कहन लग कि आपकी इस पवित्र [illegible] की जितनी भी प्रशसा की जाव कम हे। हम स्वय ही यह [illegible] कि आप पवित्र भावना स अपवित्र भावना म नही जा सकती [illegible] अपना कर्त्तव्य पूरा करन क लिए ही आपसे विवाह की स्वीकृति [illegible] और ब्रह्मचर्य पालन स राका था। हम अपने इस कार्य के लिए [illegible] चाहत ह।

इस प्रकार चन्दनबाला का धन्यवाद देकर [illegible] हे सती! वस ता मरे म धर्म के प्रति पहले से ही श्रद्धा [illegible] बात सुनकर वह श्रद्धा और बढ गई है [illegible]

विषय-भोग का अनुभव किये बिना ही उनको त्याग दिया, लेकिन मैं उनका अनुभव करके भी उन्हें अब तक नहीं त्याग सकी। सच्ची बात तो यह है कि अब तक मेरे सामने आपकी तरह ब्रह्मचर्य का आदर्श रखने वाला कोई न था। आज आपके मुख से ब्रह्मचर्य-पालन का निश्चय सुनकर मुझको भी यह विचार हुआ है कि मैं ससार के विषय-भोग मे कब तक पडी रहूगी। इसलिए आज से मैं आपको पुत्री के बदले गुर्वी (गुरुवानी या गुरुणी) मान कर यह निश्चय करती हू कि आज से मैं भी ब्रह्मचर्य का ही पालन करूगी। विषय-भोग मे न रहूगी, और जिस मार्ग को आप अपनावेगी, उसी मार्ग को मैं भी आदर्श मानूगी।

मृगावती का निश्चय सुनकर सतानिक को भी प्रसन्नता हुई। वह कहने लगा कि महारानी के इस निश्चय का मैं भी समर्थक हू। इतना ही नहीं, किन्तु यह भी निश्चय करता हू कि आज से मैं भी ब्रह्मचर्य का पालन करूगा। अब अब्रह्मचर्य मे कदापि न रहूगा।

सतानिक ओर मृगावती की प्रतिज्ञा सुनकर, चन्दनबाला ओर दधिवाहन ने उन दोनो को धन्यवाद दिया। फिर दधिवाहन कहने लगा कि वैसे तो जब से मेरा विवाह महारानी धारिणी के साथ हुआ था, तभी से मैं नीति पूर्वक जीवन-व्यतीत करता रहा हू, लेकिन आज यह प्रतिज्ञा करता हू, कि मैं आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करूगा। कभी भी अब्रह्मचर्य की ओर पाव न जाने दूगा।

दधिवाहन के इस निश्चय की चन्दनबाला, मृगावती और सतानिक ने सराहना की। इस प्रकार चन्दनबाला से विवाह की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए आये हुए सतानिक-मृगावती और दधिवाहन, चन्दनबाला के निश्चय से स्वय भी ऐसे प्रभावित हुए कि उनने भी ब्रह्मचर्य-पालन की प्रतिज्ञा कर ली। प्रसन्न होते हुए वे तीनो चन्दनबाला के समीप से अपने-अपने स्थान को गये।

दधिवाहन और सतानिक प्रेमपूर्वक रहने लगे। चम्पा की प्रजा बार-बार दधिवाहन के पास आकर उससे चम्पा चलने का अनुरोध करने लगी। वहा के लोग दधिवाहन से कहते कि चम्पा की प्रजा से आपका बिछुडना बहुत दिनो से हुआ है। यदि आपका पता न होता या आप न आते तब तो दूसरी बात थी लेकिन अब आपको आया जानकर और यह जानकर कि आप पुन हमारे स्वामी हुए हैं चम्पा के लोग आपके दर्शन करने के लिए लालायित हैं। इसके सिवा राजा के दूर रहने पर प्रजा की रक्षा भी पूरी तरह नहीं हो सकती। इसलिये अब आप चम्पा पधारने की कृपा करे।

चम्पा के लोग दधिवाहन से इस तरह का अनुरोध अनेक बार कर चुके थे, परन्तु सतानिक के प्रेम से बन्धे हुए दधिवाहन का यह साहस नही होता था कि वह सतानिक से विदा मागे। कुछ ही दिनो मे सतानिक को चम्पा की प्रजा का अनुरोध ज्ञात हुआ, इससे उसने विचार किया कि चम्पा की प्रजा का अनुरोध उचित ही हे। वास्तव मे अब महाराजा दधिवाहन का चम्पा जाना ही अच्छा हे। इस प्रकार विचारकर उसने दधिवाहन से कहा कि महाराज आपके वियोग से चम्पा की प्रजा दु खी हे। अब उसको अधिक समय तक दु खी रखना अनुचित हे। वेसे तो में स्वय भी आपसे अलग नही होना चाहता, परन्तु जब अपने सिर पर प्रजा की रक्षा का भार हे, तब प्रेमवश कर्त्तव्य की उपेक्षा करना ठीक नही। प्रजा की पूर्ण रक्षा तभी की जा सकती हे जब उसके समीप रहा जावे, ओर वह बिना किसी कठिनाई के अपना दु ख–दर्द सुना सके। इसलिए आपसे अलग होने की इच्छा न होने पर भी अब मे आपका चम्पा पधारना ही ठीक समझता हू। में आपको अकेले ही चम्पा नही भेजना चाहता हू। में स्वय भी आपके साथ चलना चाहता हू। वहा चम्पा की प्रजा से अपने अपराधो की क्षमा मागकर में अपने पाप का यत्किचित प्रायश्चित करूगा ओर तब कोशाम्बी को वापस लोट आऊगा।

सतानिक का कथन सुनकर दधिवाहन मुस्कराये। उन्होने सतानिक को उत्तर दिया, कि आप जेसा भी ठीक समझे वेसा ही करिये। में तो आपके प्रेम मे ऐसा बधा हू कि चम्पा की प्रजा का बहुत अनुरोध होने पर भी आपसे यह न कह सका कि में चम्पा को जाऊ।

सतानिक ने चम्पा जाने की तेयारी कराई। सतानिक ओर दधिवाहन ने चन्दनबाला के पास जाकर उससे कहा कि–आप भी चम्पा पधारिये ओर जो राजमहल बहुत दिनो से सूना पडा हे उसे सुशोभित करिये तथा महल के दास–दासी ओर चम्पा की प्रजा को आनन्दित करिये। सतानिक ओर दधिवाहन के कथन के उत्तर मे चन्दनबाला ने कहा कि मैं अभी यहीं रहना चाहती हू। मेरा विचार इस समय चम्पा जाने का नही हे। यहा मुझे भगवान का दर्शन हुआ हे इसलिए अभी मे यही रहना चाहती हू। आप [illegible] से चम्पा जाइये। चम्पा मुझे प्रिय हे। वह मेरी जन्मभूमि हे। मेरा यह शरीर वहा के जलवायु ओर पृथ्वी से बना हे इसलिए चम्पा का मुझ पर [illegible] उपकार हे। फिर भी मेरे लिए अभी चम्पा चलने का अवसर नहीं [illegible] मैने भगवान महावीर का मार्ग अपनाने का निश्चय किया हे [illegible]

भगवान महावीर को केवल ज्ञान प्राप्त होगा, तब मैं सयम स्वीकार करूगी और उस समय चम्पा आऊगी।

चन्दनबाला ने अपने उत्तर से दधिवाहन और सतानिक को सन्तुष्ट कर दिया। वे दोनो चन्दनबाला से चम्पा चलने के लिए विशेष अनुरोध न कर सके। दोनो का उचित अभिवादन करके चन्दनबाला ने उन्हे अपने स्थान से विदा किया।

दधिवाहन को लेकर सतानिक राजसी ठाठ–बाठ के साथ चम्पा को चला। जिस चम्पा पर एक दिन वह चढाई करके गया था अब वही चम्पा दधिवाहन को सौंपने के लिए जा रहा है। हमारे महाराजा दधिवाहन आ रहे हैं यह समाचार सुनकर चम्पा की प्रजा को अत्यन्त हर्ष हुआ। उसने दधिवाहन के स्वागत की पूरी तरह तैयारी की। चम्पा के राज्य म प्रवेश करते ही प्रजा दधिवाहन का स्वागत करने लगी। मार्ग मे प्रजा द्वारा किया गया स्वागत स्वीकार करते हुए दधिवाहन और सतानिक ने समारोह पूर्वक राजमहल मे प्रवेश किया। जो राजमहल बहुत दिनो से सूना था, वह राजमहल दधिवाहन के आने से जयनाद और हर्षध्वनि से गूज उठा। सतानिक ने राजमहल मे पहले से ही सब तैयारी करा रखी थी। राजमहल को पूर्ववत् सजा दिया और उसमे आवश्यक व्यवस्था भी करा दी थी। राजमहल मे पहुच कर उसने महाराजा दधिवाहन को राज्यासन पर बैठाया और स्वय सामने खडा रहा। दधिवाहन को राज्यासन पर बैठा देखकर प्रजा को बहुत ही आनन्द हुआ। उसने जयध्वनि से महल को कपित कर दिया। प्रजा के शात होने पर सतानिक ने पहले की तरह दधिवाहन की प्रशसा और अपने दुष्कृत्यो का वर्णन करके अपने व्यवहार के लिए चम्पा की प्रजा से क्षमा मागी। चम्पा की प्रजा के प्रतिनिधि ने भी सतानिक के भाषण का उचित उत्तर दिया। पश्चात दधिवाहन ने खडे होकर कौशाम्बी तथा सतानिक की प्रशसा की और इस प्रकार शिक्षाजनो का कर्त्तव्य पूरा किया।

दधिवाहन राज कार्य करने लगा। दधिवाहन के समीप रहता हुआ सतानिक उसकी कार्य–व्यवस्था देखकर शिक्षा लेने लगा। कुछ दिन चम्पा मे रहकर वह कौशाम्बी को वापस लौट आया। दोनो नरेश आनन्दपूर्वक दोनो जगह का राज्य करने लगे और प्रजा को सुख देने लगे।

दीक्षा और केवलज्ञान

श्रेष्ठ लोग ससार–व्यवहार त्याग कर अकर्मण्य नही बनते, किन्तु एक दूसरे ही व्यवहार मे पडते हैं। ससार–व्यवहार त्यागकर वे जिस व्यवहार को अपनाते हैं, वह परलौकिक व्यवहार कहलाता है। वे ससार–व्यवहार को पारलौकिक के लिए ही त्यागते हैं शरीर को सुख देने एव अकर्मण्य बनकर बेठे रहने के लिए नही त्यागते। ससार–व्यवहार त्याग कर वे इस बात के प्रयत्न मे लगते है कि जिससे फिर ससार–व्यवहार मे न पडना पडे। इसके सिवा जब तक ससार–व्यवहार मे थे, तब तक स्वय का, कुटुम्ब का समाज का, अथवा देश का ही हित देखते थे। इसी के लिए प्रयत्नशील रहते थे परन्तु ससार–व्यवहार से निकलने के पश्चात् वे प्राणीमात्र का हित देखते हैं और जिस तरह ससार के समस्त प्राणियो का हित हो, वैसा ही प्रयत्न करते हैं। ससार–व्यवहार मे रहते हुए वे अपने अथवा अपने प्रियजनो के लिए किसी दूसरे जीव का अहित भी कर डालते थे लेकिन ससार–व्यवहार से निकलने के पश्चात् किसी भी दशा मे किसी भी कारण से किसी भी जीव का अहित नहीं करते, किन्तु उसी मार्ग को अपनाते हैं जिसको अपनाने से किसी भी जीव का अहित न हो, अपितु सभी जीवो का हित हो। इसके लिए वे [illegible] मार्ग को अपनाते हैं, उसका नाम सयम है। श्रेष्ठ लोग सयम को अपनाने के लिए ही ससार–व्यवहार त्यागते हैं, अकर्मण्य बनने शरीर को आराम देने [illegible] विषय–भोग मे आने वाली बाधा को हटाने के लिए [illegible] नहीं त्यागते।

चन्दनबाला ने भी ससार–व्यवहार [illegible] निश्चय किया और भगवान को केवलज्ञान [illegible] की इसलिए वह भगवान महावीर के केवलज्ञान [illegible] वह इस बात के लिए उत्सुक थी कि भगवान [illegible] और कब मैं उनके पास [illegible]?

चन्दनबाला के हाथ से मिले हुए अन्न से पारणा करके भगवान महावीर उत्कृष्ट चरित्र का पालन करते हुए विचरने लगे। भगवान महावीर का सयम पालते हुए—छद्मस्थपन मे—बारह वर्ष ओर तेरह पक्ष वीत गये। छद्मस्थावस्था की अन्तिम रात को भगवान महावीर जभृका नगरी के वाहर ऋजुबालिका नदी के तट पर, श्याम गृहपति के खेत के पास, शालि वृक्ष के नीचे गोदुहासन मे विराजे हुए थे। उन्होने अष्टम गुण स्थान मे पहुचकर शुक्ल ध्यान का अवलम्बन लिया था। उस समय भगवान महावीर ने कर्म के आवरणो को नष्ट करके बारहवे गुणस्थान तक का उल्लघन कर तरहवे गुणस्थान मे प्रवेश किया। तेरहवे गुणस्थान मे प्रवेश करते ही महानिर्मल ओर प्रतिपूर्ण केवलज्ञान प्रकट हुआ। भगवान महावीर को केवलज्ञान प्राप्त हुआ है यह जानकर इन्द्रादि देव केवलज्ञान महोत्सव करने के लिए उपस्थित हुए। उन्होने केवलज्ञान महोत्सव किया। समवसरण की रचना हुई। भगवान महावीर ने धर्मोपदेश दिया, लेकिन उस समवसरण मे मनुष्य ओर तिर्यक् आदि नही थे इस कारण भगवान का यह उपदेश सार्थक नही हुआ।

यहा से विहार करके भगवान महावीर निष्पापा नगरी पधारे। वहा भगवान का दूसरा समवसरण हुआ और इन्द्रभूति आदि 11 गणधरो ने अपने 4400 शिष्यो के साथ भगवान के पास सयम स्वीकार किया।

भगवान महावीर को केवलज्ञान होने का समाचार सारे ससार मे फेल गया। चन्दनबाला ने भी भगवान को केवलज्ञान होने का समाचार सुना। यह समाचार सुनकर चन्दनबाला प्रसन्न हुई। उसने सतानिक, मृगावती आदि से कहा मैं इसी समाचार की प्रतीक्षा मे ठहरी हुई थी। अब भगवान को केवलज्ञान प्राप्त हो चुका हे, इसलिए मैं इस ससार मे एक क्षण भी नही ठहर सकती। अब मैं शीघ्र ही भगवान के दर्शन करने ओर उनसे सयम स्वीकार करने के लिए जाना चाहती हू। इसलिए आप लोग मुझे विदा दीजिए।" चन्दनबाला का कथन सुनकर मृगावती ओर सतानिक प्रसन्न हुए। दोनो ने उसे धन्यवाद दिया ओर उससे कहा कि—हे सती! तूने सयम स्वीकार करने से पहले ही अनेक जीवो को सन्मार्ग पर लगाया है, तो अब तो भगवान महावीर के पास सयम ले रही हे इसलिए अवश्य ही तेरे द्वारा बहुत से जीवो का उपकार ओर उद्धार होगा। इसलिए हम तेरे को इस उत्तम कार्य से नही रोकना चाहते किन्तु यही कहते हैं कि तेरी जेसी इच्छा हो तू वेसा ही कर। इस प्रकार कहकर दोनो ने प्रसन्न मन से चन्दनबाला को विदा दी। चन्दनबाला को विदा देते समय मृगावती ने यह ओर कहा कि—हे सती! इच्छा तो मेरी भी

यही हे कि में भी भगवान महावीर की शरण मे जाकर सयम स्वीकार करू परन्तु इस समय ऐसी परिस्थिति नहीं हे जिससे मेरी यह इच्छा पूर्ण हो लेकिन मुझे विश्वास हे कि समय पाकर में भी सयम स्वीकार करूगी। यह कहते–कहते मृगावती की आखो मे आसू भर आये। चन्दनबाला ने उसको धेर्य बन्धाया ओर उससे कहा कि 'आपकी यह भावना अवश्य सफल होगी आप घबराइए मत।

सारे नगर मे यह समाचार फेल गया कि सती चन्दनबाला सयम स्वीकार करने के लिए भगवान महावीर की शरण मे जा रही हे। यह समाचार सुनकर धनावा सेठ, रथी, उसकी स्त्री ओर मूला आदि लोग राजमहल मे एकत्रित हो गये। चन्दनबाला ने सबका योग्य आदर–सत्कार करके उन्हे धर्मपालन का उपदेश दिया, ओर फिर सब लोगो से घिरी हुई वह समारोह–पूर्वक कौशाम्बी से बाहर आई। नगर से बाहर आकर सती चन्दनबाला ने सब लोगो से विदा ली तथा भगवान महावीर के समवसरण मे जाने के लिए रवाना हुई।

मार्ग मे जनता को भगवान महावीर की वाणी से लाभ उठाने का उपदेश देती हुई सती चन्दनबाला भगवान महावीर के समवसरण मे उपस्थित हुई। भगवान का दर्शन करके सती चन्दनबाला बहुत प्रसन्न हुई। [illegible] स्थान पर बेठकर उसने भगवान की भव तारिणी वाणी सुनी ओर फिर भगवान से प्रार्थना की कि हे प्रभो! ससार के जीव जन्म–जरा–मरण रूपी आग की ज्वाला से तप्त हो रहे हे तथा दुख पा रहे हैं। मे ससार के इस दुख से [illegible] आपकी शरण आई हू। कृपा करके मुझे ससार के दुख से [illegible]।

चन्दनबाला की प्रार्थना सुनकर भगवान ने उसे सयम की दीक्षा दी। भगवान महावीर के पास दीक्षा लेने वाली स्त्रियो मे से चन्दनबाला [illegible] पहली थी इसलिए भगवान ने उन्हे साध्वी–सघ की [illegible]।

समय पाकर मृगावती भी चन्दनबाला की शिष्या [illegible] काली, महाकाली सुकाली आदि राजघराने की [illegible] चन्दनबाला के समीप सयम स्वीकार किया। चन्दनबाला [illegible] के सघ की नायिका होकर जनता का [illegible] साध्वी–वश मे एक राजकन्या द्वारा दिये गये [illegible] अच्छा प्रभाव पडता होगा ओर उस आदर्श से [illegible] होगा यह तो अनुमान से ही जाना जा सकता [illegible] वह पूर्व कथनानुसार चन्दना को गई [illegible]

जनता को भी अवश्य ही अत्यधिक प्रसन्नता हुई होगी, और उसे त्याग का महत्व समझ पडा होगा।

केवलज्ञानी भगवान महावीर विचरते हुए और जनता का कल्याण करते हुए कौशाम्बी पधारे। वहा भगवान का समवसरण हुआ। अपनी शिष्याओ सहित सती चन्दनबाला का भी कोशाम्बी आगमन हुआ। एक दिन सती चन्दनबाला की आज्ञा लेकर सती मृगावती भगवान का दर्शन करने के लिए भगवान के समवसरण मे आई। वहा भगवान के दर्शन करने के लिए सूर्य और चन्द्र भी आये हुए थे। सूर्य और चन्द्र समवसरण म बेठे हुए थे इस कारण सध्या हो जाने पर भी यह नही जान पडा कि अब दिन नहीं रहा है किन्तु सध्या हो गई हे। अभी दिन है यह समझकर मृगावती रात हो जाने पर भी भगवान के समवसरण मे ठहरी रही। लेकिन जेसे ही सूर्य–चन्द्र भगवान के समवसरण से अपने–अपने स्थान को गये वेसे ही अधेरा हो गया। सूर्य–चन्द्र के हटते ही यह स्पष्ट जान पडने लगा कि अब दिन नही हे, किन्तु रात हो गई हे। रात हो गई है यह जानकर मृगावती को बहुत चिन्ता हुई। वह सोचने लगी कि रात के समय स्थान से बाहर न रहना, हम साध्वियो के लिए एक आवश्यक नियम है लेकिन भ्रम मे पड जाने के कारण आज मुझसे इस नियम का पालन नही हुआ। नियम भग होने से मेरी गुर्वी (गुरुवानी या गुरुणी) मुझे उपालम्भ देगी।

इस प्रकार चिन्ता से घबराई हुई सती मृगावती स्थान पर आई। उसने सती चन्दनबाला को वन्दन–नमस्कार किया। मृगावती को सामने खडी देखकर सती चन्दनबाला उसे उपालम्भ देती हुई कहने लगी कि आप ऐसी कुलीन साध्वी भी यदि नियमोपनियम का पालन न करेगी ओर रात होने पर भी अपने स्थान से बाहर रहगी तो फिर साधारण कुल मे निकली हुई साध्वियो से नियमोपनियम–पालन की आशा केसे की जा सकती है? सूर्यास्त हो जाने पर भी आपने स्थान से बाहर रहकर अच्छा नही किया। आपको इस समय तक स्थान से बाहर न रहना चाहिए था।

सती चन्दनबाला ने सती मृगातवी को इस प्रकार उपालम्भ दिया। यदि सती मृगावती चाहती तो यह कह सकती थी कि मैंने जानबूझ कर तो नियम–भग किया नही हे आदि लेकिन सती मृगावती ने सती चन्दनबाला द्वारा दिये गये उपालम्भ का कोई उत्तर नही दिया, किन्तु सब उपालम्भ चुपचाप सुनती रही ओर अपनी भूल के लिए पश्चात्ताप करती हुई, यह सोचती रही, कि चाहे कुछ भी हो नियमोपनियम का पालन करने के लिए मुझे समय का

ध्यान रखना चाहिए था। आचार्या मुझे जो उपालम्भ दे रही है वह इसी उद्देश्य से कि किसी भी सती द्वारा मर्यादा–भग न हो।

समय होने पर सब सतिया अपने–अपने स्थान पर सो गई। सती चन्दनबाला भी सो गई, लेकिन सती मृगावती मन ही मन पश्चात्ताप करती रही, इस कारण उसे नीद नही आई। पश्चात्ताप करते–करते सती मृगावती के परिणाम की धारा बढी। उनने क्षपक श्रेणी पर आरूढ हो ध्यान की तीव्रता द्वारा घनघातिक कर्मों को नष्ट कर दिया और इस कारण उन्हे पूर्ण केवलज्ञान तथा केवल दर्शन प्राप्त हुआ।

अन्धेरी रात का समय था। सब सतिया सोयी हुई थी। उस समय सती मृगावती ने एक काला साप जाते देखा। वह साप उसी ओर जा रहा था जिस ओर सती चन्दनबाला सोयी हुई थी। सती चन्दनबाला का हाथ साप के मार्ग मे था। आचार्या के हाथ को साप के स्पर्श से बचाने के लिए सती मृगावती ने साप के मार्ग से सती चन्दनबाला का हाथ हटा दिया। हाथ उठ जाने से साप तो बिना स्पर्श किये ही चला गया लेकिन सती चन्दनबाला को नीद खुल गई। सती चन्दनबाला ने जागकर ओर पूछताछ द्वारा यह जा[illegible] कि ये सती मृगावती हे, सती मृगावती से प्रश्न किया कि क्या आप अब [illegible] जाग रही हें? ओर आपने मुझे क्यो जगाया? आचार्या के इस प्रश्न के [illegible] मे सती मृगावती ने नम्रता पूर्वक कहा कि–अभी एक काला साप इस ओर [illegible] हे। आपका हाथ उसके मार्ग म था इस कारण मैने आपका हाथ [illegible] किया। लेकिन मेरे इस कार्य से आपकी निद्रा भग हो गई इसके लिए आप[illegible] क्षमा चाहती हू। मुझसे आपकी निद्रा भग करने का अपराध हुआ है। [illegible] यह अपराध क्षमा करे।

यह सुनकर चन्दनबाला ने मृगावती से प्रश्न किया कि [illegible] हे ओर इधर म तो अधिक अन्धेरा हे फिर भी आपको [illegible] पडा? चन्दनबाला के इस प्रश्न के उत्तर म सती मृगावती [illegible] आपकी कृपा का परिणाम हे। आपकी कृपा [illegible] हे। जब आप एसी आचार्या की कृपा होती है [illegible] जाते ह। फिर तो प्रकाश हो या न हो [illegible] अपराध की उपेक्षा नही की किन्तु मुझे उपालम्भ दे[illegible] नष्ट हो गया ओर इसी कारण से अन्धेरे [illegible] यदि आप मेरे अपराध की उपेक्षा करती [illegible] पाप भी नष्ट न होता।

चन्दनबाला–आपके इस कथन से तो यही जान पडता है कि आपको कोई ज्ञान हुआ है। वास्तव मे ज्ञान हुए बिना ऐसा हो भी नहीं सकता। लेकिन यह बताइये कि आपको जो ज्ञान हुआ है वह पूर्ण है या अपूर्ण?

मृगावती–आपकी कृपा होने पर भी अपूर्णता केसे रह सकती है?

चन्दनबाला–तब तो आपको केवलज्ञान हुआ है। मुझ यह मालूम नहीं था इसी कारण मुझसे आपकी अवज्ञा हुई। आप मेरा अपराध क्षमा करे

इस प्रकार कहकर सती चन्दनबाला अपनी शिष्या सती मृगावती को वन्दन करने लगी और सती मृगावती चन्दनबाला को वन्दन करने लगी। केवलज्ञानी की अवज्ञा करने के अपराध का पश्चात्ताप करने से सती चन्दनबाला ने भी क्षपक श्रेणी पर आरूढ हो घातिक कर्म नष्ट कर दिये इससे उन्हे भी केवलज्ञान प्राप्त हो गया।

केवलज्ञान होने के पश्चात भी सती चन्दनबाला ओर सती मृगावती विचरती हुई जनता का कल्याण करती रही। सती चन्दनबाला की 36 हजार साध्वियो मे से 1400 साध्वियो को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। अन्त मे समय–समय पर सती चन्दनबाला सती मृगावती ओर अन्य केवलज्ञान प्राप्त करने वाली 1400 सतिया अघातिक कर्म नष्ट करके, शरीर त्याग कर सिद्ध, बुद्ध एव मुक्त हुई।

अप्रासगिक न होगा। कार्य की श्रेष्ठता बताने के लिए कारण की व्याख्या बताना ठीक ही है। इसलिए सक्षेप मे धारिणी के उन कार्यो पर भी प्रकाश डाला जाता हे जो चन्दनबाला के जीवन को उच्च बनाने के लिए आदर्श रूप थे और जो दूसरे लोगो का जीवन उच्च बनाने मे भी कारण रूप हो सकते है।

धारिणी राजरानी थी फिर भी उसने विषय–विलास को महत्व नहीं दिया। उसने स्वय को तथा दधिवाहन को अनेतिकता की ओर कभी जाने नहीं दिया। वह स्वय भी नीति मार्ग पर स्थिर रही ओर उसने अपने पति को नीति मार्ग पर ही स्थिर रखा। अपनी पुत्री चन्दनबाला को भी उसने ऐसी ही शिक्षा दी। उसे ब्रह्मचर्य का ही पाठ पढाया। विषय–विलास के वातावरण से उसको सदा ही बचाती रही। जब दधिवाहन जगल चला गया ओर चम्पा लूटी जाने लगी तब भी वह घबराई नही। उस समय उसने चन्दनबाला को धैर्य तथा साहस रखने की शिक्षा दी। जब सतानिक का रथी महल मे घुस आया उस समय धारिणी का कोई रक्षक नहीं था। फिर भी वह दुखित नही हुई किन्तु निर्भयता पूर्वक उसके रथ मे बैठ गई, ओर रथ को ही पाठशाला बनाकर चन्दनबाला को शान्ति–समर और व्यवहार–क्षेत्र मे कार्य करने की शिक्षा दी।

यहा तक तो उसने चन्दनबाला को प्राय शिक्षा ही शिक्षा दी थी। ऐसा कोई क्रियात्मक आदर्श नही रखा था जिसके रखने मे स्वय को कोई असाधारण कष्ट उठाना पडा हो। लेकिन जगल मे रथ से उतरने के पश्चात से शरीर त्यागने तक के उसके कार्य चन्दनबाला के लिए विशेष रूप से क्रियात्मक आदर्श थे।

रथी ने धारिणी के सामने जो अनुचित प्रस्ताव रखा था, धारिणी ओर उसके पति को जो कटुवचन कहे थे उनके कारण प्रत्येक स्त्री को क्रोध, ओर अपनी विवशता पर दुख होना स्वाभाविक हे परन्तु धारिणी ऐसी साधारण स्त्रियो मे से न थी। यद्यपि पति के विषय मे कहे गये कटुवचन उसे असह्य अवश्य हुए फिर भी इस कारण अथवा अनुचित प्रस्ताव के कारण उसने रथी पर क्रोध नही किया किन्तु उसको अपना भाई मानकर सुमार्ग पर लाने का ही प्रयत्न करती रही। ऐसे कठिन समय मे स्त्री–स्वभावानुसार धारिणी के हृदय मे दधिवाहन के विरुद्ध कोई न कोई विचार हो सकता था। वह सोच सकती थी कि पति ने मुझे ओर पुत्री को अरक्षित छोडकर अपने कर्त्तव्य की अवहेलना की हे लेकिन धारिणी ने पति के कर्त्तव्याकर्त्तव्य की ओर ध्यान भी नही दिया। उसने तो केवल अपना कर्त्तव्य देखा ओर उसकी रक्षा का ही

प्रयत्न किया। उसने पहले तो रथी को सुधारने उसे सुमार्ग पर लाने और इस प्रकार स्वय के सतीत्व की रक्षा करने के लिए उपदेश से काम लिया। रथी को बहुत समझाया उसे सब तरह से कायल किया। लेकिन जब कामान्ध रथी के सामने वह सब प्रयत्न निष्फल हुआ और धारिणी ने जान लिया कि अब मुझ पर यह बलात्कार करेगा तब उसने शरीर त्यागकर सतीत्व की भी रक्षा की ओर रथी को भी सुधार दिया।

इस प्रकार धारिणी ने अपने कार्य तथा जीवन ओर मरण के द्वारा चन्दनबाला के साथ ही ससार के लोगो को अनेक शिक्षा दी। उसने बता दिया कि पत्नी–जीवन मातृ–जीवन ओर भगिनी–जीवन को किस प्रकार निभाना चाहिए तथा पत्नी माता, ओर बहन का क्या कर्तव्य है? उसने यह भी बता दिया कि विपत्तिकाल मे शील की रक्षा किस प्रकार की जा सकती है ओर उस समय केसे धेर्य एव साहस की आवश्यकता है। इन सबके सिवा उसने उपदेश को सार्थक बनाने के लिए केसे त्याग की आवश्यकता है तथा उपदेशक पर केसी जवाबदारी है? यह भी बताया है।

चन्दनबाला रूपी कार्य के धारिणी रूपी कारण मे ये विशेषताए थी। जिसके कारण मे विशेषता होगी उस कार्य मे विशेषता होना स्वाभाविक है। इस प्रकार धारिणी के प्रताप से ही चन्दनबाला मे विशेषताए थी। धारिणी ने चन्दनबाला को जो शिक्षा दी थी ओर क्रियात्मक आदर्श द्वारा जिसे [illegible] करा दी थी उस शिक्षा के प्रताप से ही चन्दनबाला को कार्य करने मे [illegible] या थकावट नही हुई अपनी पूर्व–स्थिति का विचार करके [illegible] न रथी की स्त्री या मूला द्वारा किये गये दुर्व्यवहार पर [illegible] उसमे बदला लेने की भावना ने ही स्थान पाया। [illegible] दुर्व्यवहार करता था चन्दनबाला उसको भी प्रसन्न [illegible] बनाने ओर उसका भी हित करने मे रहती थी। रथी को [illegible] से चन्दनबाला को बचने का प्रस्ताव किया था [illegible] उसे घर से निकालने तक को तैयार हो गया था [illegible] समझाकर शात किया तथा उसकी [illegible] के लिए बाजार बेचने का [illegible] चन्दनबाला को खरीद [illegible] उस पर जब [illegible] भाग गये लेकिन चन्दनबाला [illegible] और उसको [illegible]

[illegible]

जो अपशब्द कहे उन्हे भी उसने धैर्यपूर्वक सहा तथा मूला की इच्छानुसार उसका सन्देह मिटाने के लिए बाल कटवाकर हथकडी-बेडी डलवाकर उस अधेरे भोयरे मे पडकर परीक्षा दी। जहा से तीन दिन के बाद जीवित निकलने की कोई आशा नही हो सकती उस भोयरे मे पडकर भी वह घबराई नहीं न उसे कुछ दु ख ही हुआ किन्तु वहा भी उसने धर्माराधना ही की फिर जब सेठ ने उसे भोयरे से निकाला तब भी उसने सेठ से मूला के विरुद्ध कोई शिकायत नही की।

इस प्रकार की सहनशीलता धैर्य ओर धर्म-भावना का ही यह परिणाम था कि चन्दनबाला का दान लेने के लिए भगवान महावीर जैसा तपस्वी ओर महापुरुष पात्र मिला। भगवान महावीर का जो कठिन अभिग्रह था वह सती चन्दनबाला से ही पूरा हुआ। उसने त्रिलोक के जीवो का कल्याण करने वाले भगवान महावीर को अन्नदान क्या दिया था जीवनदान दिया था। फिर भी चन्दनबाला को किसी प्रकार का गर्व या अभिमान नहीं हुआ। इन्द्रादि देवो द्वारा की गई स्तुति या सोनेया-वृष्टि उसमे उच्छृखलता पेदा न कर सकी। वह पहले ही की तरह विनम्र बनी रही। वेश्या, रथी उसकी स्त्री ओर मूला के साथ उसने पहले से भी अधिक नम्रता का व्यवहार किया। बल्कि उन सबको भगवान को दान देने का सुयोग प्राप्त होने का कारण मानकर अपने पर उनका उपकार माना ओर स्वय को उनका ऋणी बताया। रथी ओर सेठ के यहा उसने अनेक कष्ट अनुभव किये थे फिर भी सतानिक के यहा का बुलावा आने पर वह राजमहल या राजसी सुखो पर नही ललचाई, किन्तु जिस राजमहल मे पाप का ही विचार होता था, उसमे जाने से स्पष्ट इन्कार कर दिया। सतानिक ओर मृगावती के आने पर भी, वह इस निश्चय से नही डिगी। अपने इस निश्चय पर दृढ रहकर तथा सतानिक का ध्यान उसके समस्त दुष्कृत्यो की ओर खींचकर, उसने सतानिक को भी पवित्र बना दिया।

साधारण मनुष्य जब तक विवश ओर शक्तिहीन हे, तब तक तो सब कुछ सुनता-सहता रहता है ऊपर से विनम्र रहता हुआ भी हृदय मे बदले की भावना को प्रज्ज्वलित करता रहता हे ओर जब उसकी विवशता मिट जाती हे वह शक्ति सम्पन्न हो जाता हे तब अपने साथ दुर्व्यवहार करने वाले से, बदला लिये बिना नहीं रहता। बल्कि कोई-कोई व्यक्ति उस समय किये गये बडे से बडे सद्व्यवहार को तो विस्मृत कर देता है, उसको तो आगे नहीं लाता ओर किसी छोटीसी बुराई को याद करके उसका बदला लेता हे। सज्जन

लोग ऐसा नही करते। वे किसी भी समय तथा किसी भी दशा मे किये गये भारी स भारी दुर्व्यवहार को भी वदला लेने की भावना से कदापि याद नही करते न उसको आगे रखकर किसी सद्व्यवहार को ही छिपाते है। बल्कि अपने साथ किए गए दुर्व्यवहार को भी वे उपकार मानते है ओर उस दुर्व्यवहार करने वाले के साथ भी सद्व्यवहार ही करते हे। चन्दनबाला के विषय म यह कहा जा सकता हे कि वह विवश होकर सब कष्ट सहती रही शक्तिहीन थी इसीसे बदला न ले सकी ओर नम्रता दिखाती रही। लेकिन सतानिक के सुधरने के पश्चात तो वह विवश या शक्तिहीन नही रही थी। उस समय यदि वह चाहती तो रथी ओर उसकी स्त्री आदि से भली प्रकार बदला ले सकती थी। वह उन सबको पूरी तरह दण्ड दिला सकती थी। परन्तु उसमे वदला लेने या दण्ड देने की भावना तो तब हो सकती थी जब उसने उन सबका अपराध माना होता। उसने किसी का कोई अपराध ही नही माना था। इससे चन्दनबाला मे दण्ड देकर बदला लेने की भावना नही हुई। बल्कि जिस रथी का सतानिक कठोर दण्ड देना चाहता था उसे भी उसने अभयदान दिलाकर सतानिक का भाई बना दिया।

सतानिक के सुधर जाने पर ओर उसके प्रार्थना करने पर भी चन्दनबाला ने उस समय तक सेठ के यहा से जाना स्वीकार नही किया जब तक कि सेठ ने स्वीकृति नही दे दी। उसने सतानिक की प्रार्थना का [illegible] दिया कि मै इनके यहा बिकी हुई हू, इसलिए आने मे स्वतन्त्र नही हू। [illegible] वह चाहती तो सेठानी के दुर्व्यवहार को न कहकर भी यह कह सकती थी कि मेरे कारण साढे बारह क्रोड सोनैया की वृष्टि हो चुकी है [illegible] सोनैया का मेरे पर कोई कर्ज नही रहा। परन्तु चन्दनबाला [illegible] कि मेरे द्वारा यदि कोई लाभ होता है तो वह [illegible] अधिकार का है। मैने उन्ही का अन्न दान [illegible] के कारण मै ऋण-मुक्त नही हो सकती है।

सरक्षक यदि कष्ट [illegible]

[illegible]

दधिवाहन को बहुत कुछ उपालम्भ दे सकती थी। कह सकती थी कि [illegible]
राज्य लेने के लिये तो आ गये, परन्तु कष्ट के समय मुझको और [illegible]
को छोडकर चले गये थे, जिससे ऐसी-ऐसी दुःखद घटना हुई और [illegible]
चन्दनबाला अपने पिता को इस प्रकार का कोई उपालम्भ देती तो [illegible]
के पास उन उपालम्भो का कोई उत्तर भी न था। लेकिन चन्दनबाला [illegible]
न थी। वह जानती थी कि वास्तव मे कोई दूसरा रक्षक नही हो सकता अपनी
रक्षा आप ही की जा सकती हे। जो स्वय अपनी रक्षा नहीं कर सकता उसकी
रक्षा कोई भी नही कर सकता। ऐसी दशा म में पिताजी को उपालम्भ क्या
दू? इनका अपराध ही क्या हे? इस प्रकार के विचार से चन्दनबाला ने
दधिवाहन को किचित् भी उपालम्भ नही दिया। बल्कि जब स्वय दधिवाहन
खेद ओर पश्चात्ताप करने लगा तब चन्दनबाला ने, अपने उपदेश से उसको
धैर्य दिया।

कष्ट सहने के बाद मनुष्य सुख पाने की इच्छा करता हे। एसे बहुत
कम व्यक्ति देखे गए होगे जिनने कष्ट तो सहे लेकिन फिर जो सुख प्राप्त
हो रहे थे उन्हे त्याग दिया। बल्कि अधिकाश आदमी सुख की आशा से ही
कष्ट उठाते हें। यह बात दूसरी हे, कि कोई इहलोकिक सुख के लिए ओर
कोई पारलोकिक सुख के लिए कष्ट उठावे, परन्तु दुःख उठाने का उद्देश्य सुख
प्राप्त करना ही रहता है। राजमहल छूटने के बाद चन्दनबाला ने भी अनेक
कष्ट उठाये थे। उसको दासी की तरह सब कार्य करने पडे थे। साथ ही
बहुत-सी अनर्गल बाते भी सुननी सहनी पडी थीं। इस प्रकार के कष्ट सहने
के बाद उसके हृदय मे सासारिक-सुख भोगने की इच्छा हो सकती थी
लेकिन उसने दधिवाहन सतानिक ओर मृगावती के अनुरोध पर भी विवाह
करने से इन्कार कर दिया तथा ब्रह्मचर्य पालने की ही इच्छा प्रकट की।
साधारण आदमी मे इतने कष्ट सहने के बाद-सयम को अच्छा समझने पर
भी-कुछ दिन सासारिक सुख भोगने की भावना हो सकती है, परन्तु चन्दनबाला
के हृदय मे इस प्रकार की भावना को स्थान भी नहीं मिला। सयम लेने के
पश्चात् चन्दनबाला ने सयम के नियमोपनियम पालने-पलवाने के विषय मे
उपेक्षा असावधानी या मूर्खता नही की। ससार-व्यवहार के नाते मृगावती
चन्दनबाला की मोसी थी। फिर भी जब भगवान के समवसरण से वह रात
हो जाने पर आई तब चन्दनबाला ने उसे बहुत उपालम्भ दिया। इस सासारिक
सबध का उसने कोई विचार नही किया। उसका लक्ष्य यही रहा कि नियमो
के पालन मे किचित् भी शिथिलता न होनी चाहिए। यदि नियमो के पालन
मे शिथिलता होगी तो साध्वी-समाज पवित्र न रह सकेगा। इस उच्च ध्येय

श्री जवाहर विद्यापीठ, भीनासर
– एक परिचय –

स्थानकवासी जैन परम्परा मे आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा एक महान् क्रातिकारी सत हुए हैं। आषाढ शुक्ला सवत 2000 को भीनासर मे सेठ हमीरमलजी बाठिया स्थानकवासी जन पौषधशाला मे उन्होने सथारापूर्वक अपनी देह का त्याग किया। उनकी महाप्रयाण-यात्रा के बाद चतुर्विध सघ की एक श्रद्धाजलि सभा आयोजित की गई जिसमे उनके अनन्य भक्त भीनासर के सेठ श्री चम्पालाल जी बाठिया ने उनकी स्मृति मे भीनासर मे ज्ञान–दर्शन–चारित्र की आराधना हेतु एक जीवन्त स्मारक बनाने की अपील की। तदन्तर दिनाक 29 4 1944 को श्री जवाहर विद्यापीठ के रूप मे इस स्मारक ने मूर्त रूप लिया।

शिक्षा–ज्ञान एव सेवा की त्रिवेणी प्रवाहित करते हुए सस्था ने अपने छह दशक पूर्ण कर लिए हैं। आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा के व्याख्यानो से सकलित, सम्पादित ग्रथो को 'श्री जवाहर किरणावली' के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है। वर्तमान मे इसकी 32 किरणो का प्रकाशन सस्था द्वारा किया जा रहा है इसमे गुफित आचार्यश्री की वाणी को जन–जन तक पहुचाने का यह कीर्तिमानीय कार्य हे। आज गौरवान्वित है गगाशहर–भीनासर की पुण्यभूमि जिसे दादा गुरु का धाम बनने का सुअवसर मिला और ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलाल जी म सा की कालजयी वाणी जन–जन तक पहुच सकी।

सस्था द्वारा एक पुस्तकालय का सचालन किया जाता है जिसमे लगभग 5000 पुस्तके एव लगभग 400 हस्तलिखित ग्रथ हैं। इसी से सम्बद्ध वाचनालय मे दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक–कुल 30 पत्र–पत्रिकाये उपलब्ध करवाई जाती हैं। प्रतिदिन करीब 50–60 पाठक इससे लाभान्वित होते है। ज्ञान–प्रसार के क्षेत्र मे पुस्तकालय–वाचनालय की सेवा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और क्षेत्र मे अद्वितीय है।

महिलाओ को स्वावलम्बी बनाने हेतु सस्था द्वारा सिलाई बुनाई, कढाई–प्रशिक्षण–केन्द्र का सचालन किया जाता हे जिसमे योग्य अध्यापिकाओ द्वारा महिलाओ व छात्राओ को सिलाई बुनाई कढाई व पेन्टिग कार्य का प्रशिक्षण दिया जाता हे। इससे वे अपने गृहस्थी के कार्यो मे योगदान दे सकती हे ओर आवश्यकता पडने पर इस कार्य के सहारे जीवन मे स्वावलम्बी भी बन सकती हे।

सस्था के सस्थापक स्वर्गीय सेठ श्री चम्पालाल जी [illegible] की जन्म–जयन्ती पर प्रत्येक वर्ष उनकी स्मृति मे एक व्याख्यानमाला का आयोजन किया जाता हे जिसमे उच्च कोटि के विद्वानो को बुलाकर प्रत्येक वर्ष अलग–अलग धार्मिक सामाजिक विषयो पर प्रवचन आयोजित किए जाते हे।

उपरोक्त के अलावा प्रदीप कुमार जी रामपुरिया स्मृति पुरस्कार के अन्तर्गत भी प्रतिवर्ष स्नातकस्तरीय कला विज्ञान एव वाणिज्य सकाय म बीकानेर विश्वविद्यालय मे प्रथम व द्वितीय स्थान प्राप्त करने वाले विद्यार्थिया को नकद राशि प्रशस्ति–पत्र एव प्रतीक [illegible] सम्मानित किया जाता हे एव स्नातकोत्तर शिक्षा म बीकानेर [illegible] म सर्वाधिक अक प्राप्त करने वाले एक विद्यार्थी को [illegible] पुरस्कार क रूप मे प्रशस्ति–पत्र [illegible] प्रतीक–चिह्न देकर सम्मानित किया जाता ह।

विद्यापीठ द्वारा ठण्डे मीठे जल की प्याऊ का [illegible] किया जाता ह। जनसाधारण क लिए इसको [illegible] इस प्रकार अपन बहुआयामी कार्यो से श्री [illegible] प्रगति–पथ पर अग्रसर हे।